ISSN No : 2583-3855

अनुस्वार

साहित्य एवं कला की त्रैमासिक पत्रिका

वर्ष : 3 मूल्य : 150/- अंक : 10 अप्रैल-जून 2023

सलाहकार मंडल

सलाहकार संपादक
डॉ. प्रेम जनमेजय
डॉ. एस.एस.मुद्गिल
डॉ. सुशील कुमार त्रिवेदी

प्रबंध संपादक
डॉ. मनोरमा

कार्यकारी संपादक
कामिनी

मुख्य संपादक
डॉ. संजीव कुमार

प्रकाशक एवं स्वामी
डॉ. संजीव कुमार

प्रकाशकीय/संपादकीय कार्यालय : 'अनुस्वार', सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301 गौतमबुद्ध नगर (दिल्ली एनसीआर)
मुद्रण कार्यालय : बालाजी ऑफसेट, (न्यू-एम-28), 1/11844, उल्धनपुर, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032
वितरण कार्यालय : इंडिया नेटबुक्स प्रा. लि., सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301 गौतमबुद्ध नगर (दिल्ली एनसीआर)

© **स्वत्वाधिकार :** मुख्य संपादक : डॉ. संजीव कुमार

आवरण चित्र : शुभ्रामणि
आवरण एवं पुस्तक सज्जा : विनय माथुर

मूल्य : सामान्य प्रति : 150 रुपये
वार्षिक मूल्य : 600 रुपये
द्विवार्षिक मूल्य : 1000 रुपये
आजीवन सदस्यता : 6000 रुपये

भुगतान के लिए :
IndiaNetbooks Pvt. Ltd.
RBL Bank, Noida
A/c No : 409001020633
IFSC : RATN0000191
Paymtm No : 9893561826

नोट : भुगतान करने के उपरान्त रसीद के साथ अपना पता और फोन नं. हमें 9873561826/9810066431 पर व्हाट्सअप करें।

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन का कोई भी हिस्सा, किसी भी रूप में या किसी भी प्रकार से इलेक्ट्रॉनिक, मशीनी या फोटोकॉपी या रिकॉर्डिंग द्वारा प्रतिलिपित या प्रेषित नहीं किया जा सकता।

डॉ. संजीव कुमार, सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301 गौतमबुद्ध नगर (दिल्ली एनसीआर) द्वारा स्वयं के स्वामित्व में प्रकाशित बालाजी ऑफसेट, (न्यू-एम-28), 1/11844, उल्धनपुर, नवीन शाहदरा-110032, से मुद्रित।

संपादक : डॉ. संजीव कुमार

अनुक्रम

मुख्य संपादक की ओर से	डॉ. संजीव कुमार	5
आवरण कथा	शुभ्रामणि	7
कलाक्षेत्रे		
बोलती आँखें	सिद्धेश्वर	7
आपके पत्र...पिछले अंक पर		9
चिंतनधारा		
शख्सियत जिनका कहना है : गिरीश पंकज के साथ एक दिन	डॉ. संजीव कुमार	15
व्यंग्य जीने की एक प्रविधि है मेरे लिए	गिरीश पंकज	20
व्यंग्य कला को अनेक शिल्पों और शैलियों से निखारने में निपुण	डॉ चित्त रंजन कर	26
गिरीश पंकज : व्यंग्यकार बनाम उपन्यासकार	रविन्द्र गिन्नौर	30
कलम हुए हाथ	संजय द्विवेदी	35
निर्मल लेखन स्वच्छ व्यक्तित्व	अख्तर अली	37
लेखकीय ईमानदारी, घटनाओं पर तीखी दृष्टि	द्वारिकाप्रसाद अग्रवाल	38
वर्तमान राजनीति के चेहरे को बेनकाब करता :		
व्यंग्य उपन्यास स्टिंग ऑपरेशन	रमेश तिवारी रिपु	41
गिरीश : व्यंग्य के निर्मल पंकज	दिलीप कुमार तेतरव	43
मेरी सृजन यात्रा सर्वश्रेष्ठ प्रदेय की आस में सृजनरत हूँ	गिरीश पंकज	45
व्यंग्य में महिला हस्तक्षेप	विवेक रंजन श्रीवास्तव	49
मंटों के कलम की जरूरत	राजेन्द्र वर्मा	54
दुनिया इधर-उधर	देवेन्द्र नाथ सिन्हा	59
संवाद		
भाषा और संस्कृति एक दूसरे के पूरक हैं : गिरीश पंकज	आलोक सक्सेना	61
कथा-कहानी		
मैं अपने सपने बेचती हूँ	सुशांत सुप्रिय	65
जूही के फूल	किशोर दिवसे	70
देवास की वीरा	जया आनंद	72
आज खाने में क्या बना लूँ	मेघा राठी	77
मुकम्मल जहाँ	मीनू त्रिपाठी	79
मिर्ची के रंग		
चटपटा व्यंजन धोखा	सरोजनी प्रीतम	83
पांडेय जी गए कश्मीर	लालित्य ललित	85

बेगम जी के उपवास की दुश्वारियां	अशोक गौतम	87
भोजन के लिए हेल्पलाइन नम्बर	गिरीश पंकज	89

बाल साहित्य

दादाजी का चश्मा	गिरीश पंकज	91
एक स्कूल मोरों वाला	प्रकाश मनु	93
अपने भीतर झाँकों	दिविक रमेश	98

स्वास्थ्य साहित्य

अमृत तुल्य आयुर्वेदिक औषधि सितोपलादि चूर्ण	गोवर्धन दास बिन्नान	100

विधि साहित्य

महिला गरिमा का गोरव : समान नागरिक संहिता	संतोष खन्ना	102

कविता/ग़ज़ल 107

गिरीश पंकज की कविताएँ, प्रतिभा सिंह की कविताएँ, के.पी. सक्सेना की ग़ज़लें, गिरीश पंकज की कविता, जगदीश चंद चौहान की कविताएँ, कर्नल प्रवीण त्रिपाठी की कविताएँ, डॉ. संजीव कुमार की कविताएँ, डॉ. प्रणव भारती की कविताएँ, डॉ. दामोदर खड़से की कविताएँ।

साहित्य समाचार

कविता ही सामान्य जन को सर्वाधिक प्रभावित करती आ रही हैं	डॉ. संजीव कुमार	117
इंडिया नेटबुक्स एवं बीपीए फाउंडेशन द्वारा वार्षिक समारोह का आयोजन	रणविजय राव	118
खुली धूप में नाव का यात्री : रवींद्रनाथ त्यागी	प्रेम जनमेजय	120

पुस्तक समीक्षा

चैलेंजेस ऑफ यूनिवर्सिटीज (विश्वविद्यालयों की समस्याओं के समाधान)	विवेकानंद त्रिपाठी	121
कंडी पहाड़ी संस्कृति के जन जीवन की अप्रतिम झलक : कोहकनी	डॉ. ज्ञानप्रकाश 'पीयूष'	125
मैंनेजमेंट गुरु कबीर : ज्ञान और भक्तिपूर्ण प्रबंधकीय चिंतन	विजय कुमार तिवारी	127
सींग उग आने का डर	वीरेन्द्र नारायण झा	132

पुनश्च

डॉ. संजीव कुमार के कविता संग्रह "कोणार्क" के बहाने	दिनेश माली	135
"मन बंजारा" समूह की वाराणसी यात्रा एवं साहित्यिक कार्यक्रम	दीपा स्वामिनाथन भंवरलाल जाट/स्नेहा देव	148

अंततः

हिंदी साहित्य में जुड़ने जा रहा है नया अध्याय	प्रेम जनमेजय	135

मुख्य संपादक की ओर से

प्रिय पाठको,

पिछले एक वर्ष में अनुस्वार को आप से जो प्यार और सम्मान मिला है, और आपका जो सहयोग या अवदान प्राप्त हुआ है उससे अनुस्वार की टीम का उत्साहवर्धन हुआ है। आपका यह प्रेम हमें जीवतंता देता है। विगत संयुक्तांक श्रीमती संतोष श्रीवास्तव की चिंतनधारा पर केंद्रित था। वह एक ऐसी साहित्यकार हैं, जिनकी बहुमुखी प्रतिभा उनकी साहित्यिक रचनाधर्मिता एवं साहित्यिक क्रियाकलापों में स्पष्ट झलकती हैं। 'विश्व मैत्री मंच' की संस्थापिका के रूप में उनकी विशद संगठनात्मक क्षमता के प्रमाण पर्याप्त हैं। अंततः उन पर केंद्रित अंक पर जो प्रतिक्रिया प्राप्त हुई; वह सराहनीय है।

अनुस्वार का 10वाँ अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है। पिछले कुछ समय से सामाजिक, राजनैतिक/आर्थिक एवं राजनीतिक परिवेश में कई उतार-चढ़ाव देखने को मिले हैं। जहाँ हम इन परिवर्तनों के संबंध में समाचारों को देखते हैं तो एक विशेष प्रकार का दृष्टिकोण भी देखने में आता है। साहित्यिक हलके में साहित्य की उपादेयता का आकलन एवं प्रभाव को भी नकारा नहीं जा सकता।

संप्रति 'अनुस्वार की विशिष्ट व्यक्तित्व' शृंखला में इस बार प्रसिद्ध व्यंग्यकार श्री गिरीश पंकज के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर आधारित है। जैसा कि आप जानते हैं अनुस्वार के प्रत्येक अंक में किसी न किसी विशिष्ट व्यक्तित्व के बारे में प्रस्तुति की जाती है। गिरीश जी की पुस्तकों का उनके पाठकों को हमेशा आकर्षण रहा है। उनकी नयी कृतियों की प्रतीक्षा सबको रहती है। उनकी लगभग 100 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। अनेकों सम्मानों से विभूषित सहज एवं सरल व्यक्तित्व साहित्यकार गिरीश जी के बारे में पाठकों को उनके बारे में जानना समीचीन लग रहा है।

इंडिया नेटबुक्स के बारे में कुछ विशेष उल्लेख जरूरी लगते हैं। हाल ही में इंडिया नेटबुक्स ने जवाहर लाल नेहरू, बाल साहित्य अकादमी द्वारा संकलित 60 बाल साहित्य की पुस्तकों का संयुक्त उपक्रम में प्रकाशन किया है। यह एक जबरदस्त प्रयोग हुआ है।

'अनुस्वार मंच' अपने क्रिया-कलापों में संलग्न रहा है और अनेकों कार्यक्रमों के द्वारा पुस्तक चर्चा ऑनलाइन कार्यक्रम एवं गोष्ठियाँ सफलतापूर्वक आयोजित की गईं। जैसा कि आप जानते हैं कि पत्रिका के अनुस्वार मंच के साथ-साथ 'अनुस्वार प्रवासी संगमन' की स्थापना की गई थी, जिसके अंतर्गत इंडिया नेटबुक्स के सहयोग से प्रवासी भारतीयों के लिए, उनके द्वारा लिखी गई कविताओं का एक साझा संकलन 'पंछी मेरे देश के' नाम से प्रकाशित किया जा चुका है, जो प्रतिभागी रचनाकारों को 50 प्रतिशत छूट के साथ उपलबध है। www.indianetbooks.com (shipping का क्रेता के द्वारा ही देय होगी।)

'अनुस्वार प्रवासी संगमन' की तर्ज पर ही 'अनुस्वार बाल संगमन' का भी गठन किया गया है, जिसका उद्देश्य बच्चों में साहित्य के प्रति रूचि बढ़ाना और अच्छे साहित्य का सृजन करना। इसके साथ ही 'बाल गोष्ठियों' के आयोजन का भी प्रस्ताव है। संगमन के संयोजक एवं सभापति के पद पर डॉ. दिविक रमेश आसीन होंगे।

अनुस्वार पत्रिका ने 'इंडिया नेटबुक्स' और 'बीपीए फाउंडेशन' के साथ संयुक्त रूप से 12 मार्च को 50 से अधिक साहित्यकारों को सम्मानित किया है। 2022 का 'वेदव्यास शिखर सम्मान' श्रीमती चित्रा मुद्गल को दिया गया, और 'वागेश्वरी सम्मान' श्री प्रताप सहगल को। अतिथियों से भरे हाल में यह आयोजन 100 से अधिक साहित्यकारों की उपस्थिति में सम्पन्न हुआ। हम पुस्तकों के सृजन, प्रकाशन, वितरण आदि कार्यों के साथ लेखकों की समस्याओं के आलोक में आवश्यक सहायता करने के लिए भी कटिबद्ध हैं। इसी शृंखला में इस पत्रिका का प्रणायन हुआ था। हमें खुशी है कि इस साहित्यिक पत्रिका के साथ शीघ्र ही हम एक अन्य पत्रिका का भी प्रकाशन करने जा रहे हैं जो कानून संबंधी विषयों को प्रस्तुति करेगी और उसका नाम 'विधि नायक' होगा।

गत वर्ष हमने एक विशिष्ट शृंखला "कवि के मन से" प्रारंभ की थी जिसमें 7 कवियों की रचनाओं का संकलन एक साथ प्रस्तुत किया है। शृंखला में श्री प्रताप सहगल, शशि सहगल, रामदरश मिश्र, डॉ. संजीव कुमार, कुसुम अंसल, दिविक रमेश एवं प्रमोद त्रिवेदी जैसे कवियों को प्रस्तुत किया गया था। संप्रति दूसरी शृंखला में सुरेश ऋतुपर्ण, राजकुमार कुम्भज, बसंत परिहार, सुरेश ढींगरा, इला कुमार, विनोद शाही एवं अग्नि शेखर की कविताओं को प्रस्तुत किया गया है।

काव्य के बाद कहानी अर्थात कथा साहित्य पर भी हमारी नजर थी, और उसके लिए 'कथामाला' शृंखला भी प्रारंभ की गई है। इसमें विशेष कहानीकारों की महत्त्वपूर्ण रचनाओं को जिन्हें कथाकार स्वयं चयन करते हैं। कथामाला की पहली पुस्तक श्रीमती चित्रा मुद्गल की थी और उसी शृंखला में इसके अतिरिक्त ममता कालिया, नासिरा शर्मा, मधु कांकरिया, संतोष श्रीवास्तव आदि प्रतिभागी हैं। आशा है पाठकों को यह शृंखला भी पसंद आएगी।

इंडिया नेटबुक्स ने 'व्यंग्य कोश' तैयार करने के लिए भी प्रयास किया है। जिसके अंतर्गत वरिष्ठ और अनुभवी व्यंग्यकारों के आलेख प्रस्तुत किए जाएँगे। जो व्यंग्य के विभिन्न पक्षों से संबद्ध होंगे। यदि आप व्यंग्य के किसी पक्ष पर अपना आलेख प्रस्तुत करना चाहें, तो अभी भी आपके पास समय है और आप उसे 31 अक्टूबर 2023 तक भेज सकते हैं।

अनुस्वार के साहित्यिक परिदृश्य में अनेक साहित्यिक गतिविधियाँ होती हैं। हमारा अन्य साहित्यिक संस्थाओं के साथ जुड़ने और यथासंभव साहित्यिक अवदान के लिए तत्पर रहने का सिलसिला भी जारी है। हमें आपको सूचित करते हुए प्रसन्नता है कि आपके मुख्य संपादक को विगत त्रैमासिकी में जवाहरलाल नेहरू बाल साहित्य सृजन एवं प्रेरणा सम्मान जेएलएन बाल अकादमी द्वारा प्रदान किया गया। इसके अतिरिक्त विक्रम यूनिवर्सिटी से 'सारस्वत सम्मान', 'बाल्मीकि शिखर सम्मान', 'मैथिलीशरण गुप्त सम्मान' और 'महाकवि बाणभट्ट' सम्मान से भी नवाजा गया है, जो हमारे लिए गर्व का विषय है। मैं श्री प्रेम जनमेजय को अनुस्वर के अंकों के अतिथि संपादन के साथ-साथ मार्गदर्शन करने के लिए उनको धन्यवाद देता हूँ और आभार प्रकट करता हूँ।

अंततः अनुस्वार का यह अंक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है, आपके सुझाव/एवं मार्गदर्शन की हमें सदैव अपेक्षा रहेगी। आशा है कि 'अनुस्वार' का अंक अपनी अपेक्षाओं पर खरा उतरेगा।

डॉ. संजीव कुमार
9873561826

आवरण-कथा

हम जानते हैं कि आदि काल में दंड एक उपकरण के रूप में व्यक्तिगत व्यवसायगत एवं औद्योगिक कार्यों के लिए करता है किन्तु पिछली तीन शताब्दियों में चक्र (Wheel) ने एक अमूल पूर्ण क्रांति लाई है। वर्तमान शताब्दी में चक्र के साथ-साथ संग्रणीकीय प्रतिमानों के साथ विभिन्न प्रक्रियाएँ हमारे जीवन का अंग बनी। वर्तमान चित्र में इन्हीं का अंतरसंबंध दर्शाया गया है।

शुभ्रामणि : एक परिचय

शुभ्रामणि एक अमूर्त कलाकार हैं। उनकी प्रेरणा किसी विचार, प्रकृति, वस्तु, भावना या किसी उद्देश्य में छिपी होती है। रंगों और आकारों के माध्यम से उसे कलात्मक रूप में अभिव्यक्त करना उसे एक ऐसी स्वतंत्रता प्रदान करता है, जो कई बार शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त नहीं की जा सकती है। अमूर्त कला एक ऐसा माध्यम है जिसमें कलाकार को रंगों के सहारे नए-नए आयाम, नए-नए चित्र बनाने का अवसर मिलता है और हर बार उसकी कला एक अनोखापन लेकर उभरती है। ऐसा ही कुछ नया करने का एहसास और प्रयास शुभ्रामणि की कला का आधार है। एक सलाहकार कम्पनी में काम करते हुए एक कुशल गृहिणी के साथ-साथ अपने खाली समय का सदुपयोग वह अपनी कलात्मक एवं काव्यात्मक अभिव्यक्तियों के द्वारा करती हैं। वह जहाँ एक कलाकार हैं, वहीं एक कवयित्री भी।

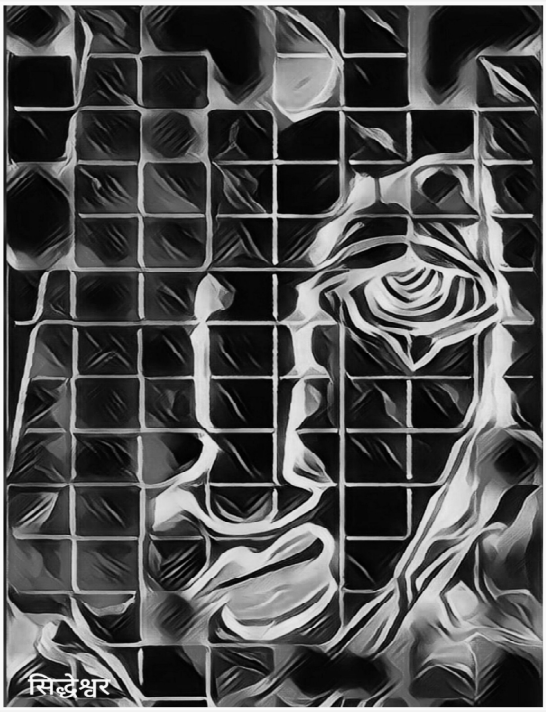

चित्र-कथा

बोलती आँखें

एक नदी आँखों में से दुनिया भर की झंझावटों को झेलती हुई नारी अपने जीवन से मरहूम रहती है। अधिकांश नारियाँ, जीवन धारा में बहती हुई नदी को अपनी आँखों में समेटे, खामोश जुबां से अपनी अभिव्यक्ति दे रही होती हैं। जीवन की इस शतरंजी दुनिया में सुहागिन होते हुए भी विरहिनी बनी रहती हैं और जीवन में बहती हुई नदी को, अपनी आँखों की भाषा बन खामोश जुबां से अपने अंतर्मन की व्यथा को कह रही होती हैं।

नाम : सिद्धेश्वर जन्मतिथि : 20/06/1959, जन्म स्थान : पटना (बिहार)
शिक्षा : स्नातक (कला) विशिष्टता के साथ, सम्प्रति : अवकाश प्राप्त, मुख्य टिकट निरीक्षक (पूर्व मध्य रेल) अवकाश प्राप्ति के पश्चात् स्वतंत्र लेखन, लेखन की विधाएँ : कविता/कहानी/लघुकथा/लेख/चिंतन/बाल कविता/भेंटवार्ता/डायरीनामा और बाल कहानी/विशेष अभिरुचि : कलाकृति (रेखाचित्र), अब तक (2022)' एक हजार से अधिक पत्र-पत्रिकाओं में, दो हजार से अधिक साहित्य की लगभग सभी विधाओं की रचनाएँ प्रकाशित, दो हजार से अधिक रेखाचित्र राष्ट्रीय स्तर की पत्र-पत्रिकाओं में और पुस्तकों के आवरण पर प्रकाशित, प्रकाशित कृतियाँ : 1. बूँद-बूँद सागर (लघुकथा संग्रह, पुरस्कृत) 2. इतिहास झूठ बोलता है (कविता संग्रह, पुरस्कृत) 3. ढलता सूरज : ढलती शाम (कहानी संग्रह, पुरस्कृत) 4. उपन्यास अंशः दहशत जदा, लघुकथा कलश काव्य पुस्तिका 1. भीतर का सच (लघुकथा संग्रह) एक उपन्यास प्रकाशनाधीन, कलाकृतियों पर एक पुस्तक प्रकाशनाधीन, संपादित पुस्तकें : आदमीनामा (बिहार के लघुकथाकारों की पहली पुस्तक) 1. उत्कर्ष (पुरस्कृत लघुकथाएँ), टूटते जुड़ते संदर्भों के बीच (कविता संग्रह) 1. गजल यात्रा (गजल संकलन) 2. शताब्दी की कविताएँ (काव्य संकलन), 3. सोच विचार (मासिक पत्रिका, का बिहार ब्यूरो चीफ) संपादक और प्रकाशक : अवसर साहित्यधर्मी पत्रिका (त्रैमासिक) संस्थापक अध्यक्ष : भारतीय युवा साहित्यकार परिषद का संस्थापक अध्यक्ष अवसर प्रकाशन का प्रकाशक।
सम्पर्क : सिद्धेश्वर सिद्धेश सदन अवसर प्रकाशन, (किड्स कार्मल स्कूल के बाएं)/पोस्ट : बीएचसी, द्वारिकापुरी, रोड नंबर : 02 हनुमाननगर, कंकड़बाग, पटना 800026 (बिहार)।

आपके पत्र...पिछले अंक पर

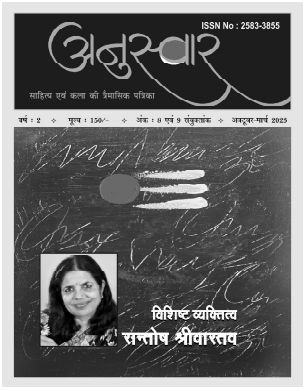

अनुस्वार का अक्टूबर मार्च 2023 का अंक जो आपने मेरे व्यक्तित्व कृतित्व पर निकाला है, उसके लिए मैं आपकी आभारी हूँ तथा उन सभी लेखकों को धन्यवाद देना चाहती हूँ पूर्णिमा ढिल्लन, गिरीश पंकज जी, हीरालाल नागर जी, रूपेंद्र राज तिवारी, सुषमा मुनींद्र, पुष्पा भारती दीदी, जया केतकी शर्मा, सरस दरबारी, विनीता राहुरीकर और बीएल आच्छा की जिन्होंने अपना बहुमूल्य समय देकर मेरे कृतित्व और व्यक्तित्व पर लिखा। डॉक्टर सत्यवीर सिंह की भी आभारी हूँ उन्होंने मेरा साक्षात्कार लिया और कई प्रश्नों से मुझे रूबरू करवाया।

मुख्य संपादक की ओर से लिखा हुआ संपादकीय बहुत ही जानकारी से भरा हुआ है और इसमें मेरे विषय में जो कुछ भी लिखा है उसके लिए मैं तहेदिल से शुक्रगुजार हूं। इस तरह लेखकों पर विशेषांक निकाल कर आप बहुत महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। बधाई एवं शुभकामनाएं।

संतोष श्रीवास्तव, भोपाल

प्रख्यात लेखिका संतोष श्रीवास्तव के व्यक्तित्व कृतित्व पर केंद्रित अनुस्वार का अक्टूबर मार्च 2023 का अंक संग्रहणीय है। इसमें संतोष जी के व्यक्तित्व से हम परिचित हुए। कृतित्व से तो पहले से ही परिचित थे। उनका जो साक्षात्कार लिया गया है उससे भी बहुत सारी उनके विषय की जानकारियाँ प्राप्त हुईं। मंजे हुए लेखक की कलम से लिखा संपादकीय महत्वपूर्ण है। पत्रिका के लिए ढेर सारी बधाइयां और शुभकामनाएं।

ज्योति पटेल, मुम्बई

अनुस्वार का आठवाँ नवाँ संयुक्त अंक के मुखपृष्ठ ने ही मन मोह लिया और हम विवश हो गए शुभ्र मणि जी की आवरण कथा पढ़ने के लिए। सभी स्तंभ बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। कलाक्षेत्रे, चिंतन धारा, संवाद, कथा कहानी, मिर्ची के रंग, छोटी-छोटी बूंदे, स्वास्थ्य साहित्य, तथा सभी समीक्षाएं कविता एवं गजल पूरा अंक पठनीय है। मैं चर्चित लेखिका संतोष श्रीवास्तव को बधाई देता हूं कि उनके साहित्य और उनके विषय में इतनी महत्वपूर्ण जानकारियां अनुस्वार ने हमें दीं। शुभकामनाएँ

अभिषेक पाठक, इंदौर

छोटी-छोटी बूंदों में दिस इज अमेरिका अनीता कपूर ने बहुत बढ़िया लिखा है। डॉक्टर संजीव कुमार की कविताएँ भी अच्छी लगी। मिर्ची के रंग के सभी व्यंग्य रोचक है। मेरी प्रिय लेखिका संतोष श्रीवास्तव पर केंद्रित अंक बहुत ही महत्वपूर्ण बन पड़ा है। खासकर आलोक भट्टाचार्य का उनके व्यक्तित्व पर लिखा लेख "दुख की परिभाषा बदली है संतोष ने" संतोष जी के व्यक्तित्व का जैसे आईना ही है। मुख्य संपादक को बहुत-बहुत बधाई। शुभकामनाएँ

कमल निशा, रायपुर

अनुस्वार के संतोष श्रीवास्तव पर केंद्रित अंक में "संतोष श्रीवास्तव की कहानियों में मूल्य बोध आसमानी आंखों का मौसम" जया केतकी शर्मा का लेख पठनीय है। संतोष श्रीवास्तव का कहानी संग्रह "आसमानी आंखों का मौसम" मैंने पढ़ा है। बहुत ही सटीक समीक्षा की है जया जी ने हर कहानी की। संतोष जी के कृतित्व और व्यक्तित्व पर लिखे हुए अन्य लेखकों के लेख भी जानकारी से युक्त हैं। पत्रिका के लिए शुभकामनाएं।

डॉ. मंजुला श्रीवास्तव, रायपुर

चर्चित लेखिका संतोष श्रीवास्तव पर केंद्रित अनुस्वार के अंक में पुष्पा भारती द्वारा लिखी समीक्षा निर्बाध, निर्व्याज, अनन्त प्रेम है बहुत अच्छी लगी। डॉ. संजीव कुमार की कविताएं भी बहुत अच्छी हैं। कुल मिलाकर अनुस्वार स्तरीय लगी। शुभकामनाएं।

प्रभा वर्मा, गुड़गांव

आदरणीय संपादक जी

मुख्य संपादक की ओर से जो आपका लेख है उसमें आपने लिखा है अनुस्वार हमारी रूचि की सामग्री प्रकाशित करेगा साथ ही शोध हेतु सामग्री भी हमारे उपयोग के लिए पहुंचाने का प्रयास करेगा। यह बहुत ही सुखद खबर है जैसा कि आपने वरिष्ठ लेखिका संतोष श्रीवास्तव के व्यक्तित्व और कृतित्व पर लेख प्रकाशित किये हैं, यह हमारे बहुत ही काम के हैं। मैं संतोष श्रीवास्तव पर ही शोध कार्य कर रही हूँ। पत्रिका के सुनहरे भविष्य के लिए अनेकों शुभकामनाएँ प्रेषित है। धन्यवाद

वंदना वाईसे, पुणे, महाराष्ट्र

अनीता कपूर की कहानी नई सरहद का अनुभव पढ़कर मुझे ज़किया जुबेर की कहानी जो विभोम स्वर में छपी थी याद आ गई। दोनों की थीम लगभग समान है। लेकिन अच्छी कहानी है। मिची के रंग बहुत अच्छा कॉलम चल रहा है और छोटी-छोटी बूंदे भी। संतोष श्रीवास्तव पर जितनी भी सामग्री प्रस्तुत की है वह बहुत ज्यादा उपयोगी है।
धन्यवाद, शुभकामनाएं

रमेश मंत्री, यवतमाल, महाराष्ट्र

बहुत बढ़िया कविताएँ और गजलें। पुस्तक समीक्षा आप तीन देते हैं, मेरा सुझाव है चार देना शुरू कर दीजिए। क्योंकि इन दिनों बहुत पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं और हमें सारी पुस्तकों की जानकारी बिना समीक्षा पढ़े नहीं मिलती है।

संतोष श्रीवास्तव के साहित्य पर केंद्रित इस विशेषांक में उनके कविता संग्रह तुसे मिलकर पर हीरालाल नागर जी ने "जंग अभी जारी है" बहुत सुंदर समीक्षा लिखी है।
पत्रिका के उज्जवल भविष्य के लिए शुभकामनाएं

अरुण नागर, कुरुक्षेत्र, हरियाणा

वरिष्ठ साहित्यकार व सुपरिचित कथाकार संतोष श्रीवास्तव जी पर केंद्रित अनुस्वार का अक्टूबर-दिसम्बर 2023 अंक साहित्यिक दृष्टि से कई अर्थों में एक महत्वपूर्ण व संग्रहणीय अंक है। अंक न केवल उनकी पुस्तकों की विस्तृत जानकारी देता है वरन उनकी साहित्यिक साधना का भी परिचय देता है। उनकी कृति लौट आओ दीपशिखा पर लिखी सुषमा मुनीन्द्र जी की समीक्षा उपन्यास की तह तक जाती है। वरिष्ठ साहित्यकार गिरीश पंकज जी ने उनके विषय में सटीक ही लिखा है कि वे शुद्ध सात्विक बोध की लेखिका है। यह अंक एक साहित्यिक यात्रा की तरह है जिसमे पाठक विभिन्न पड़ावों पर रुकता हुआ इसका आनंद लेते हुए रसास्वादन करता चलता है। इसके लिए सम्पादक हार्दिक बधाई के पात्र हैं।

मास्को में दीवाली पढ़कर दूर देश में अपना त्यौहार मनाते देख हर्ष हुआ। सोनागाछी का महाप्रसाद रचना उत्कृष्ट लगी।

एक पठनीय सुंदर अंक के लिए हार्दिक बधाई।

विनीता राहुरीकर, भोपाल

अनुस्वार पत्रिका का अक्टूबर दिसम्बर 2023 का संयुक्तांक काफी पहले प्राप्त हो गया था।

संतोष श्रीवास्तव जी के विशिष्ट व्यक्तित्व को रेखांकित करता यह अंक अच्छा लगा।

चिंतन धारा के अंतर्गत पूर्णिमा ढिल्लन, आलोक भट्टाचार्य, गिरीश पंकज जी, हीरालाल नागर जी भूपेंद्र राज तिवारी, सुषमा मुनींद्र जी, जया केतकी जी, सरस दरबारी विनीता राहुरीकर आदि के सारे आलेख पढ लिए।

उनके संपूर्ण लेखन पर केंद्रित यह अंक विशिष्ट है।

आदरणीय संपादक जी विशिष्ट व्यक्तित्व पर इसी तरह के परिशिष्ट निकालते रहेंगे। पाठकों को अच्छा लगेगा।

इसके अलावा डॉक्टर पद्मा पाटील, राजेंद्र मोहन शर्मा आदि के लेख अच्छे लगे।

मुख्य संपादक संजीव कुमार जी का संपादकीय वक्तव्य सारगर्भित है।

पूरी संपादकीय टीम बधाई की पात्र है।

डॉ. प्रमिला वर्मा सोलापुर महाराष्ट्र

इंडिया नेटबुक्स द्वारा प्रकाशित नई पुस्तकें

India NetBooks Pvt. Ltd.
Head Office : C-122, Sector-19, Noida-201301
Gautam Budh Nagar, (Delhi NCR)
Phone : +91-1204123384, Mob : 9873561826
E-mail : indianetbooks@gmail.com

Associate Company :
India Netbooks LLC
3726 Hunters Point Street
San Antonio TX 78230 USA
Phone : +919873561826
E-mail : inbllcusa@gmail.com

डॉ. संजीव कुमार, सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301 गौतमबुद्ध नगर (दिल्ली एनसीआर) द्वारा स्वयं के स्वामित्व में प्रकाशित बालाजी ऑफसेट, (न्यू-एम-28), 1/11844, उल्धनपुर, नवीन शाहदरा-110032, से मुद्रित।

संपादक : डॉ. संजीव कुमार

व्यंग्यश्रीः गिरीश पंकज

व्यंग्य की दुनिया में एक सितारे की तरह चमकने वाले रचनाकार हैं। साहित्य भूषण और साहित्य विभूषण जैसी उपाधियों से अलंकृत व्यंग्यश्री गिरीश पंकज न केवल व्यंग्य के लिए वरन साहित्य की अन्य विधाओं में निरन्तर काम करने के लिए एक ऑलराउंडर साहित्यकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

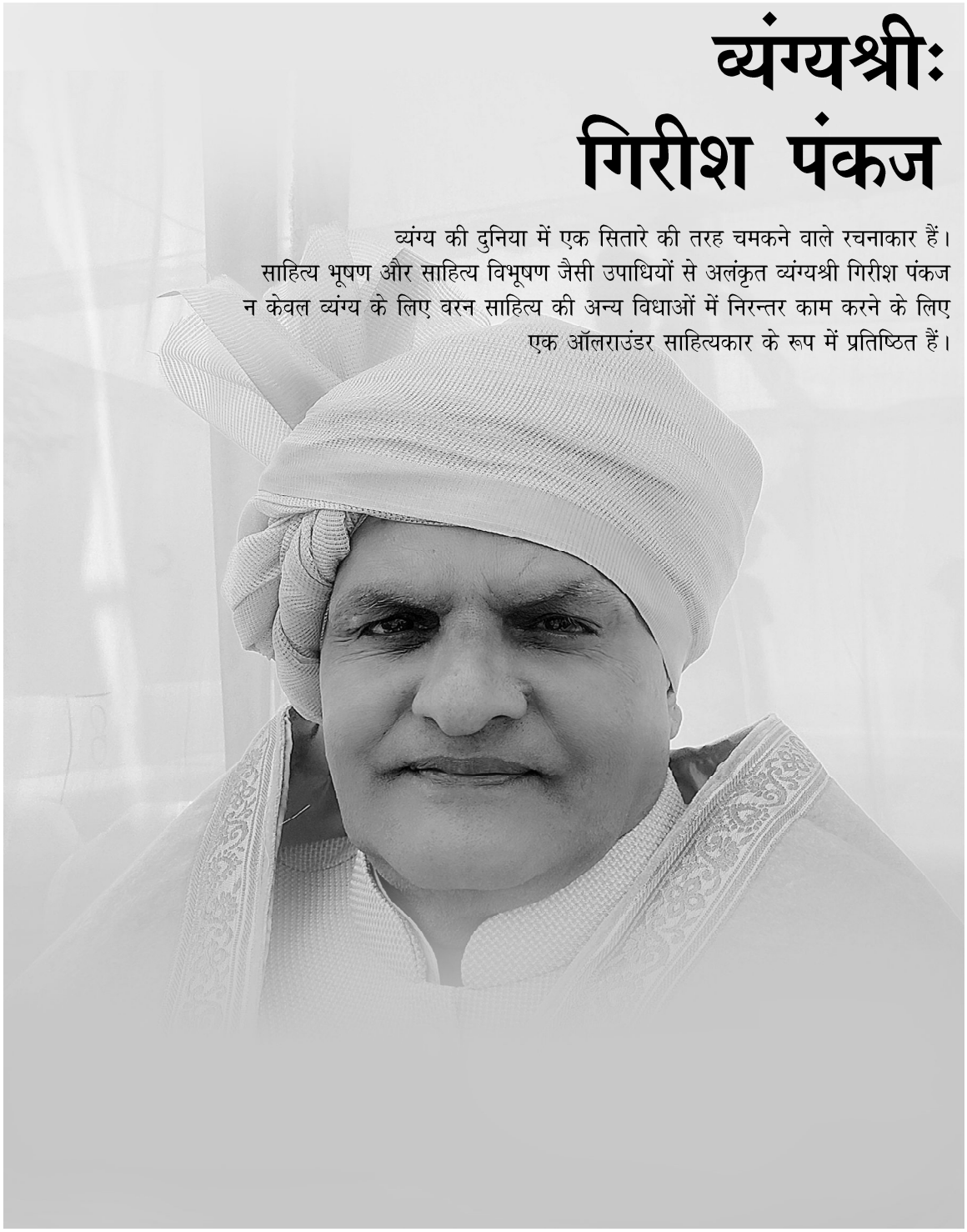

चाहें गद्य की बात करें या पद्य की बात करें और गद्य में भी चाहें कहानी की बात करें या उपन्यास की संस्मरण की बात करें या व्यंग्य की, और पद्य में चाहें कविता की बात करें या दोहों की, ग़ज़ल की बात करें या गीतों की और बाल साहित्य को लीजिए तो बाल कथाओं की बात करें या बाल गीतों की हर विधा में उनकी उपस्थिति मजबूती के साथ दर्ज है।
उन्हें साहित्यकार कहें या व्यंग्यकार, कहानीकार कहें या गीतकार, पत्रकार कहें या क्या???
एक साहित्य का महारथी भी कह सकते हैं व्यंग्यश्री गिरीश पंकज को...

पं. बृजलाल द्विवेदी स्मृति
अखिल भारतीय साहित्यिक पत्रकारिता
सम्मान समारोह 2023

व्यंग्यश्री

चिंतनधारा

शख्सियत जिनका कहना है : "जिसमें करुणा का स्पंदन वह सच्चा साहित्य"
गिरीश पंकज के साथ एक दिन : डॉ. संजीव कुमार

गिरीश पंकज साहित्य की दुनिया में एक ऐसा चर्चित नाम है, जिन्होंने अनेक विधाओं में समृद्ध साहित्य लेखन किया है। फिर चाहे वह व्यंग्य हो, उपन्यास हो, कहानी लघुकथा हो, बाल साहित्य हो, नवसाक्षर साहित्य हो, गीत-ग़ज़ल हो अथवा नाटक आदि। उनका समग्र प्रदेय पाठकों को आकर्षित करता रहा है। यही कारण है कि लगभग दो दर्जन छात्रों ने उनके साहित्य पर शोध कार्य किये। अनेक सम्मानों से भी ये विभूषित हुए। शताधिक पुस्तकों के इस सहज सरल व्यक्तित्व के धनी लेखक से मेरी पहली मुलाकात बिलासपुर के एक साहित्यिक आयोजन में हुई थी। तब हमने अपने प्रकाशन का नया-नया काम शुरू किया था। मैंने इन से आग्रह किया कि आप भी अपनी कोई पांडुलिपि दीजिए, तो इन्होंने 'व्यंग्य शतक' प्रदान किया। उल्लेखनीय बात यह है कि इसमें शामिल इनकी वसंत वाली रचना तमिलनाडु विश्वविद्यालय के कोर्स में शामिल है। दो बार ऐसा संयोग हुआ कि जब वे दिल्ली आए तो हमारे घर पर ही रुके तो उनके मुद्दों पर टुकड़ों-टुकड़ों में चर्चा भी होती रही। पिछली बार मैंने पूछ लिया कि साहित्य से आप का तात्पर्य क्या है? क्या है इसकी परिभाषा? तो पंकज जी ने फौरन उत्तर दिया कि साहित्य का अर्थ मेरे लिए एक ऐसी प्रविधि है, जिसके माध्यम से हम समाज में नवाचार कर सकते हैं। भटके हुए व्यक्ति को राह दिखा सकते हैं। साहित्य मेरे लिए क्या है, इसे बताने के लिए मैं अपना एक मुक्तक पेश करना चाहता हूँ, जिसमें मैं कहता हूँ, जिसमें जन गण मन का वंदन वह सच्चा साहित्य। जिसमें करुणा का स्पंदन वह सच्चा साहित्य।

आजादी का अर्थ नहीं हम हो जाएँ निर्वस्त्र,
जिस में नैतिकता का बंधन वह सच्चा साहित्य।

मुक्तक सुनाने के बाद वह बोले, जो साहित्य मनुष्य को नर से नारायण बना, अनैतिकता से नैतिकता की ओर ले जाए, अंधेरे से प्रकाश की ओर ले जाए मेरे लिए साहित्य की परिभाषा यही है। और सबसे बड़ी बात, साहित्य शब्द में ही उसकी परिभाषा ध्वनित होती है। जो सबके हित के साथ है, वह साहित्य है। इस परिभाषा को आत्मसात करके मैं अपना लेखन करता हूँ।

गिरीश जी की बात से असहमत होने का सवाल ही नहीं था। एक लेखक के नाते मेरा भी यह सोचना है। मैंने फिर उनको छेड़ दिया। प्रश्न था कि आप व्यंग्य के साथ ही अनेक विधाओं में लेखन कर रहे हैं। मगर सर्वाधिक आनंद किस विधा में लिखते हुए मिलता है। इस प्रश्न पर वे मुस्कुराए और कहने लगे, संजीव जी, यह बहुत सुंदर सवाल है। इसका उत्तर क्या दिया जाए, सोचना पड़ रहा है। वैसे सच कहूँ तो व्यंग्य मेरी पहली पसंद है। लेकिन मन के भावों को अभिव्यक्त करने के लिए अन्यान्य विधाओं का भी सहारा लेता रहता हूँ। भावनाओं के अनुरूप विधा मेरे साथ जुड़ जाती है। कभी-कभी जब मैंने लघुकथा लिखी, तो लगा, इसे और अधिक विस्तार दिया जा सकता है। तो मैंने लंबी कहानी लिखी। कुछ कहानियों को लिखते हुए मुझे लगा, इस कथा को और अधिक एंलार्ज किया जा सकता है, तो वह उपन्यास भी बन गया। मेरा एक उपन्यास है, 'सीढ़ियाँ : द एक्सक्लेटर' बहुत पहले मैंने केवल 'सीढ़ियाँ' नामक एक कहानी लिखी थी, जो प्रख्यात पत्रिका 'वर्तमान साहित्य' में छपी। तब मुझे लगा, इस कहानी को और अधिक विस्तार देना चाहिए। समाज में ऐसी कुछ स्त्री-चरित्र हैं जो किसी-न-किसी की सीढ़ियों के सहारे आगे बढ़ने की कोशिश करती हैं। फिर मैंने उसे उपन्यास की शक्ल में विस्तार दे दिया। एक भली और एक जुगाडू स्त्री के चरित्र को

उपन्यास में ढाला। जैसे मैंने कुछ है व्यंग्य लिखे, तो बाद में महसूस हुआ कि इसे नाटक में भी तब्दील कर सकता हूँ, तो उसी कथावस्तु के सहारे मैंने नाटक भी लिखे। वैसे मेरे लिए यह कह पाना बहुत कठिन है कि मेरी सबसे प्रिय विधा कौन-सी है फिर भी अगर प्राथमिकता के बात करें, तो व्यंग्य के बाद गीत-गजल, उसके बाद कहानी, लघुकथा और फिर बाल साहित्य आदि। लेकिन यहाँ स्पष्ट कर दूँ कि हर विधा कि अपनी गरिमा है। कोई छोटी या बड़ी नहीं। इसलिए अगर मैंने बाल साहित्य को अंत में याद किया है, इसका मतलब यह नहीं कि मैं उसे उपेक्षित कर रहा हूँ। बाल साहित्य भी मेरी आत्मा का हिस्सा है।

इन दिनों मेरी बाल साहित्य में रुचि जाग्रत हुई। कुछ पुस्तकें भी छप गईं। गिरीश पंकज भी बाल साहित्य लिखते रहे हैं इसलिए जब उन्होंने बाल साहित्य का जिक्र छेड़ दिया, तो मैंने भी पूछ लिया कि वर्तमान समय में बाल साहित्य का क्या महत्व है? इस पर वह बोले, इसका उत्तर तो यही है कि बाल साहित्य का हर काल में बेहद महत्व रहा है। क्योंकि आप जैसा गंभीर अधिवक्ता और लेखक भी तो अब बाल साहित्य की ओर मुड़ गया है। इधर आपकी मैंने अनेक बाल कृतियाँ देखी हैं, जो बाल साहित्य की श्रेष्ठ बानगी प्रस्तुत करती हैं। उन्हें देखकर बड़ा संतोष हुआ। इस समय का दुर्भाग्य है कि हमारे कुछ गंभीर साहित्यकार बाल साहित्य या नवसाक्षर लेखन को दोयम दर्जे का काम समझते हैं। वह सोचते हैं कि बाल साहित्य या ग्रामीण नवसाक्षरों के लिए लिखना मतलब बचकाना साहित्य। जबकि ऐसा नहीं है। बाल साहित्य अन्य गंभीर साहित्य की तरह ही गंभीर कर्म है। बाल साहित्य लिखना बच्चों का खेल नहीं है। बड़े व्यक्ति को अपने भीतर एक निर्मल मन वाला बच्चा स्थापित करना पड़ता है। जो सब नहीं कर सकते। हिंदी साहित्य में ही ऐसी दयनीय स्थिति है कि अधिकतर लेखक बाल साहित्य लेखन से बचते रहे हैं। जबकि अन्य भाषाओं में बड़े रचनाकारों ने भी बच्चों के लिए लिखा है। जैसे बांग्ला साहित्य में रवींद्रनाथ ठाकुर (टैगोर) का नाम तत्काल मुझे याद आ रहा है। बाल साहित्य का महत्व हर युग में बना रहेगा। बच्चे जब अपनी मानसिकता के अनुरूप लिखे गए साहित्य को पढ़ते हैं, तो उनमें बौद्धिक विकास होता है। वे गलत सही का विवेचन कर सकते हैं। उन्हें एक नई राह मिलती है। नई प्रेरणा मिलती है। हम जब छोटे थे, तो उस समय लिखे जा रहे हैं बाल साहित्य को पढ़कर बेहतर मनुष्य बनने की दिशा में विचार करने लगे थे। अगर भूले से कहीं कोई गलत कार्य किया तो बाल साहित्य ने हमें समझाया कि ऐसा नहीं करना चाहिए। उसी से प्रेरित होकर भी मैंने अपने गंभीर लेखन के साथ-साथ समय-समय पर बच्चों के लिए लिखने की कोशिश की। मेरा सौभाग्य है मेरे लेखन को अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने बेहद स्नेह दिया। मैंने बच्चों के लिए कविताएँ लिखीं। इधर कुछ वर्षों में अनेक कहानियाँ भी लिखीं। एक उपन्यास भी लिखा। बच्चों के लिए कुछ एकांकी भी लिखे, जिसका निरंतर मंचन होता रहा। बाल एकांकी की विशेषता यह होती है कि इसे बच्चे जब खेलते हैं, तो उनकी अभिनय कला का विकास होता है। और जब वे एकांकी के संवाद बोलते हैं तो उस में छुपे संदेश को भी वे ग्रहण करते चलते हैं। भविष्य में भी यह सिलसिला जारी रहेगा। आज भी समय निकाल कर कोशिश करता हूँ कि बच्चों के लिए लिखा जाए। उद्देश्य ही रहता है कि हमारे नए बच्चे मेरी रचना को पढ़कर प्रेरणा ग्रहण करें। इधर आपने भी जो बाल साहित्य लिखा है, उसे भी मैंने देखा है। उसे पढ़कर भी बच्चे निस्संदेह दिशा ग्रहण करेंगे।

गिरीश जी से बढ़िया चर्चा हो रही थी। तभी मेरे दिमाग में एक घिसा-पिटा सवाल कौंधा। पोइच लिया कि आप कब से लिख रहे हैं और आप की पहली रचना क्या था। पंकज नई स्मृतियों में खो गए। कुछ देर सोचते रहे, फिर बोले, लिखते हुए तो अब पूरे पाँच दशक हो गए हैं। पन्द्रह सोलह की कच्ची उम्र में जो कलम पकड़ी तो वह अब तक नहीं छूटी। शुरुआत बाल कविता से हुई थी। जीवन की पहली कविता किशोर वय में अपनी उम्र के बच्चों के लिए लिखी थी, जो मुझे अब तक याद है : नींद से जागो प्यारे बच्चों/ सवेरा सुहाना मौसम लाया/खेलकूद के दिन बीते हैं/पढ़ने का मौसम आया। मनेंद्रगढ़ के हाई स्कूल की पहली बार निकलने वाली शालेय पत्रिका 'वन्यजा' के लिए यह कविता तैयार हुई थी। उसके बाद फिर पीछे मुड़कर मैंने नहीं देखा।

कुछ वर्ष तक तो बाल कविताएँ लिखता रहाय फिर जैसे-जैसे अध्ययन सघन होता गया, कविताएँ लिखने लगा। उसके बाद गद्य व्यंग्य लेखन की ओर झुकाव हुआ तो व्यंग्य लिखने लगा। कुछ पत्र-पत्रिकाओं में मेरे नियमित स्तंभ भी छपने लगे, उसके कारण मेरे हिस्से में सर्वाधिक संख्या व्यंग्य रचनाओं की हो गई।

व्यंग्य की ओर झुकाव

मैंने कहा, बहुत सुंदर बात। लेकिन अचानक व्यंग्य की ओर झुकने का कारण क्या था। मेरे इस सवाल पर वे हौले से मुस्कराए और कहने लगे, इसका एकदम प्रामाणिक उत्तर तो शायद नहीं दे सकूँगा। लेकिन मुझे लगता है मेरे भीतर का व्यंग्यकार कहीं-न-कहीं उस समय की सामाजिक विसंगतियों को देखकर अनायास ही आकार लेने लगा था। सन 1973 में मेरी एक बाल कविता नई दिल्ली के दैनिक नवभारत टाइम्स में छपी थी। उस पूरी कर कविता में व्यंग्य था, आश्चर्य की बात है कि वह कविता आज भी तरोताज़ा लगती है। गोया आज की हो। कविता इस तरह है : आया फिर गणतंत्र दिवस/भाषणबाजी, नारेबाजी फिर हो गया जस का तस/बंटी मिठाई, सब ने खाई/मना लिया फिर हमने हर्ष /न निकला कुछ भी निष्कर्ष/आया फिर गणतंत्र दिवस/ कह सकता हूँ कि यह मेरी पहली व्यंग्य कविता है। बाद में इसी के आसपास मैंने 'नेताजी की हार' नामक एक गद्य व्यंग्य भी लिखा। तो, उस समय के सामाजिक परिवेश को देखकर मेरे भीतर कहीं-न-कहीं एक व्यंग्यकार भी सक्रिय हो रहा था। उसी वक्त मैंने मुम्बई से निकलने वाली साप्ताहिक पत्रिका 'धर्मयुग' को भी नियमित रूप से पढ़ना शुरू किया था। उस में छपने वाले व्यंग्य भी मुझे प्रभावित करते थे। धर्मयुग में भी मेरी दो क्षणिकाएँ प्रकाशित हुई। धर्मयुग को पढ़ते-पढ़ते मेरे भीतर एक व्यंग्यकार ने आकार लेना शुरू किया। मुझे लगता है, व्यंग्य की ओर झुकने का कारण उस वक्त की सामाजिक विद्रूपता भी थी। शायद इसीलिए तो मेरे किशोर मन ने 'आया फिर गणतंत्र दिवस/ फिर हो गया जस का तस' लिखने की कोशिश की थी। उस वक्त आजादी के तीन दशक ही पूरे हुए थे। लेकिन विसंगतियाँ निरंतर बढ़ती जा रही थीं। तो स्वाभाविक था कि किशोर मन में उसके प्रति विद्रोह जाग्रत हुआ और वही विद्रोह धीरे-धीरे मुझे व्यंग्यकार बनाता चला गया।

उनकी बात से संतुष्ट होने के बाद मैंने एक और गम्भीर सवाल किया कि आप अपनी रचनात्मकता से कितने संतुष्ट हैं? लेखन को आप कितनी बड़ी उपलब्धि मानते हैं? इस पर वह दोनों हाथ लहराते हुए बोल पड़े मैं अपने लेखन से पूरी तरह से संतुष्ट हूँ। जब भी लेखन करता हूँ, तो मुझे लगता है, मैं पूजा कर रहा हूँ। मैं मंदिर नहीं जाता। किसी भगवान के सामने अगरबत्ती नहीं जलाता। हाँ, वसंत पंचमी के दिन माँ सरस्वती को प्रणाम ज़रूर करता हूँ, क्योंकि वह ज्ञान की देवी है। भले ही वह मिथक है। लेकिन हमारी बौद्धिक आस्था की महान केंद्रबिंदु है, जिसे मैं प्रणाम करता हूँ।

मेरी प्राध्यापक पत्नी नमन करती है, और अपने कलाकार इंजीनियर बच्चे को भी प्रणाम करने के लिए निरंतर कहता हूँ। लेखन मेरे लिए आराधना है, इसलिए जिस किसी विधा में कलम चलाता हूँ, मुझे बहुत संतुष्टि मिलती है। लगता है, ऐसा करके मैंने एक नागरिक होने का फर्ज निभाया है।

भटके हुए समाज को, विचारहीन लोगों को दिशा देने के लिए अगर मेरी लेखनी सहायक होती है, तो इससे बड़ी बात कुछ दूसरी नहीं हो सकती। लोग कहते हैं कि लेखन से क्या होगा, लेकिन मैं ऐसी नकारात्मकता को खारिज करता हूँ। मेरा मानना है कि लेखन से बहुत कुछ हो सकता है। अगर मेरे उपन्यास 'एक गाय की आत्मकथा' को पढ़कर एक मुस्लिम युवक फैज खान गौ सेवा के कार्य को अभियान की तरह आत्मसात करके देशभर में गौ जागरण के लिए निकल सकता है, तो इसे अपनी लेखनी का चरम संतोष ही कहूँगा।

आज अगर मेरे साहित्य को पढ़कर देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों से बाईस छात्र शोध कार्य करते हैं, तो यह मेरे लिए संतोष की बात है। अगर दिल्ली का हिंदी भवन मुझे अपनी ओर से आमंत्रित करके 'व्यंग्यश्री' जैसा सर्वाधिक प्रतिष्ठित सम्मान प्रदान करता है तो इसे अपना सौभाग्य समझता हूँ। उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान अगर मुझे 'साहित्य

भूषण' से अलंकृत करता है, तो लगता है कहीं-न-कहीं मेरे लेखन ने संतुष्टि तो प्रदान की ही। अगर बीस खण्डों में रचनावली भी प्रकाशित हो रही है, तो इसे भी अपनी छोटी-सी उपलब्धि मानता हूँ। अगर 'अनुस्वार' का संपादक और खुद एक सक्रिय लेखक मुझसे अपनी पत्रिका के लिए बातचीत कर रहा है, मुझे पत्रिका में कुछ पृष्ठ दे रहा है, तो इसे भी अपनी एक उपलब्धि ही मानता हूँ। वैसे मुझे अनेक मान-सम्मान मिले हैं लेकिन वे सब मुझे अभिभूत नहीं करते। उसके कारण मेरे जेहन में कोई गलतफहमी पैदा नहीं होती। मुझे अभी और बेहतर लिखना है। जो कुछ भी लिखा है, वह अत्यल्प है। मेरा अपना एक मुक्तक है—

सृजन का पंथ है लंबा अभी तो दूर जाना है।
रुके ना पैर मेरे बस यही संकल्प ठाना है।
बहुत सी मुश्किलें भी पेश आएँगी मगर साथी,
भुजाओं में है कितना बल इसे ही आजमाना है।

तो, अभी यह अंगड़ाई है। आगे और चढ़ाई है। निरंतर लिखना है। और कुछ ऐसा लिखना है, जो लंबे समय तक उपस्थित रह जाए। वरना तो आज का अधिकांश लेखन क्षणभंगुर किस्म का है। बहुत सारी ऐसी रचनाएँ दिखाई देती हैं, जो सुबह जन्म लेती हैं और शाम को मर जाती हैं। ऐसा मृतप्राय लेखन किस काम का मुझे कुछ ऐसा रचना है, जो भले मैं मर जाऊँ मगर वह न मरे वह शाश्वत रहे, कालजयी रहे। ऐसे ही लेखन की तलाश में कलम निरंतर चल रही है। जब तक सांस चलेगी, कलम चलती रहेगी।

अब मैंने चर्चा के घोड़े का रुख मोड़ा और पत्रकारिता पर आ गया। पंकज जी, आप तो पत्रकारिता से भी जुड़े हुए हैं और एक साहित्यिक पत्रिका 'सद्भावना दर्पण' के संपादक भी हैं। यानी आपको पत्रकारिता का सुदीर्घ अनुभव है। तो आज के इस इंटरनेटीय युग में साहित्यिक पत्रकारिता का भविष्य आप कैसा देखते हैं? इस प्रश्न का उन्होंने उत्तर देते हुए कहा कि पत्रकारिता से जुड़े रहने का मुझे बहुत लाभ हुआ। मैं अपने आपको उस पीढ़ी, उस परंपरा का अदना-सा सदस्य मानता हूँ, जिस पीढ़ी ने कभी साहित्य और पत्रकारिता को एक साथ साधा था। एक दौर था, जब साहित्य और पत्रकारिता एक ही सिक्के के दो पहलू हुआ करते थे। लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि अब इसे नदी के दो किनारों में तब्दील कर दिया गया है। लेकिन इतना तो तय है कि ये किनारे कहीं-न-कहीं आगे जाकर एक भी हो जाते हैं। पत्रकारिता मेरे लिए साहित्य के फीडबैक का काम करती रही है। अनेक साहित्यिक रचनाएँ पत्रकारिता करते हुए मेरे भीतर उमड़ी, जिन्होंने कभी गद्य व्यंग्य का आकार लिया, तो कभी नाटक और नुक्कड़ नाटक का भी रूप लिया। जहाँ तक साहित्यिक पत्रकारिता का सवाल है, तो मुझे लगता है, साहित्यिक पत्रकारिता का भविष्य उज्जवल ही है। इंटरनेट आने के कारण बहुत सारा साहित्य विभिन्न साइटों के माध्यम से हमें मिल रहा है। फिर भी साहित्य की प्यास साहित्यिक पत्रिकाएँ ही बुझाती हैं। भले ही वे अब ई-पत्रिका के रूप में हमारे सामने भी आ रही हैं। लेकिन उनका मूल स्वरूप तो पत्रिका का ही है। फॉर्मेट वही है। भले माध्यम कुछ नया हो गया है।

छपे हुए शब्दों का महत्व कभी कम नहीं होगा। भले ही वे कागज के माध्यम से न उपस्थित हों, डिजिटल माध्यम का सहारा लेकर हमारे सामने उपस्थित हों। लेकिन शब्द की सत्ता कायम रहेगी। साहित्य पत्रकारिता इसी रूप में भी हमारे सामने हमेशा मौजूद रहेगी। फिर चाहे वो 'सद्भावना दर्पण' हो, 'अनुस्वार' हो, 'व्यंग्ययात्रा' हो, 'अट्टहास', हो, 'छत्तीसगढ़ मित्र' हो, 'मीडिया विमर्श' हो या कोई और पत्रिका। प्रयागराज से 'सरस्वती' नामक पत्रिका वर्षों तक निकलती रही,। पचहत्तर साल बाद बंद हो गई, लेकिन एक बार फिर उसका प्रकाशन शुरू हुआ है। इधर इंदौर की पत्रिका 'वीणा' छियानवे साल से निरंतर निकल रही है। इलाहाबाद की ही 'विज्ञान' पत्रिका सौ साल कब के पूरे कर चुकी है। इसका मतलब यह है कि अभी भी पाठक मौजूद हैं। संकट दरअसल प्रबंधन का है। इसी का दुष्परिणाम रहा कि अच्छी-अच्छी साहित्यिक, वैचारिक पत्रिकाएँ बंद होती चली गई। सही प्रबंधन ही साहित्यिक पत्रकारिता को जीवित रख सकता है। लेखकों की कमी नहीं है। पाठकों की भी कोई कमी नहीं। वे स्तरीय पत्रिकाओं को पढ़ना चाहते हैं। बस, पत्रिका का प्रबंधन, उसका प्रस्तुतीकरण, उसका कंटेंट ही उसको जिंदा रखता है।

व्यंग्य जीने की प्रविधि

इसमें दो राय नहीं कि आज गिरीश पंकज एक सफल व्यंग्यकार एवं चर्चित लेखक हैं। इसलिए मैंने उनसे पूछ लिया कि आप एक सफल व्यंग्यकार भी हैं। इस विधा को लेकर आपका क्या कहना है? मेरे प्रश्न पर वे कुछ तन कर बैठ गए और कहने लगे कि संजीव जी, व्यंग्य मेरे लिए जीने की एक प्रविधि भी हैं। ग़ज़ल या गीत अचानक उतरते हैं लेकिन व्यंग्य सायास लिखे जाते हैं। समाज पर बढ़े हुए विद्रूपों को देख कर मन नहीं मानता और कलम चल पड़ती है। जब तक समाज में अराजकता है, विसंगतियाँ हैं, पाखंड हैं, धोखाधड़ी है, वादाखिलाफी है अथवा किसी भी प्रकार की बुराई है, तब तक व्यंग्य की उपस्थिति बनी रहेगी। आज व्यंग्य के सामने सबसे बड़ी चुनौती यह है कि वह हरिशंकर परसाई और शरद जोशी जैसे व्यंग्यकारों द्वारा खींची गई लाइन से बड़ी लाइन खींचने की कोशिश नहीं कर पा रहा। लेकिन संतोष की बात है लाइन खींचने कोशिश तो की जा रही है। हालांकि कई बार यह भी साफ-साफ दिखाई देता है कि कुछ बन्दे लाइन खींचने की बजाए टांग खींचने की कोशिश करते हैं। व्यंग्य साहित्य की गंभीर विधा है। इसे मसखरी समझने की भूल करने के कारण कुछ के लेखन में व्यंग्य अनुपस्थित रहता है। यह इस समय की सबसे बड़ी त्रासदी है। मुझे लगता है व्यंग्य का भविष्य उज्ज्वल है। आज नहीं तो कल श्रेष्ठ व्यंग्य लिखने वालों की संख्या बढ़ेगी। अभी संक्रमण काल है। प्रकाशन की आधिकाधिक सुविधाओं के कारण व्यंग्य की हल्की-फुल्की पुस्तकों की एक बाढ़ सी आई हुई है। मगर समय के साथ बहुत कुछ फिल्टर होगा और जो श्रेष्ठ है, वही बचा रहेगा।

बातचीत करते हुए काफी समय हो गया था। तभी डॉ. मनोरमा पहुँच गई और उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा, लगता है आज आपको भूख नहीं लगी है। पंकज जी ने हँसते हुए कहा, भूख तो लगी थी लेकिन संजीव जी की चर्चा खत्म नहीं हो रही। क्या करें। चलिए, अब भोजन किया जाए। संजीव नई भी मुस्कुराए और बोले, सचमुच लंबी बातचीत हो गई। लेकिन चलते-चलते अंतिम बात। आप नए लेखकों को सन्देश देना चाहें, तो क्या कहेंगे। इस बात पर गिरीश जी हँस पड़े हा... हा...हस...!! बन्धु, अब तो कोई संदेश सुनना ही नहीं चाहता। सब देने पर आमादा हैं खासकर अभी-अभी गमले में उगे पौधे फौरन से पेश्तर बरगद बनने पर आमादा हैं। सृजन का रास्ता कठिन साधना का रास्ता है। पहले गहन अध्ययन करना पड़ता है, तब कलम सधती है। यहाँ तो मैं बिना पढ़े ही लेखन की दुनिया में घुसपैठ जमाए लोगों को देख रहा हूँ। जिन से बातचीत करके उनके व्यवहार से ही उनकी सतही बौद्धिकता का पता चल जाता है। इधर के लेखन में विचारशून्यता बढ़ी है। लेखन को अपनी छवि चमकाने का साधन समझकर अभिजात्य वर्ग के लोग लेखन में घुसपैठ कर रहे हैं। जीवन भर भ्रष्टाचार करने वाले अफसर कवि-लेखक होकर चर्चित हो रहे हैं, या किए जा रहे हैं! तो साहित्य में इस तरह का खेल चल रहा है। इसलिए मेरा नए लेखकों से आग्रह है कि वे साहित्य को खेल न बनाएँ। साहित्य को एक मिशन समझें। जैसा कभी पत्रकारिता के बारे में कहा गया था। तोए साहित्य सृजन भी एक मिशन है। इसको मस्ती का सामान न समझा जाए। हम चाहे कविता लिखें या व्यंग्य या कुछ और यह मानकर लिखें कि हम लोकमंगल और लोग जागरण के लिए साहित्य लिख रहे हैं। मटरगश्ती के लिए या चुहुलबाजी के लिए नहीं। अगर नई पीढ़ी के रचनाकार साहित्य को गंभीर कर्म की तरह लेंगे, तो मुझे परम संतोष होगा। इसलिए उन सब से आग्रह है कि लिखने के पहले कम से कम चार पांच दशक पहले लिखे गए कालजयी साहित्य का अवगाहन वे जरूर करें। 'कविता कोश' और 'गद्य कोश' जैसी साइटों के माध्यम से पुराना (और कुछ नया भी) श्रेष्ठ हिंदी साहित्य में आसानी से उपलब्ध हो जाएगा। उन्हें पहले पढ़ें, खुद को परिमार्जित करें फिर लेखन की दुनिया में सक्रिय हों।

बात करते हुए हम दोनों डाइनिंग टेबल तक आ गए। तो लगा और चर्चा पर विराम लगे और अन्न देवता का सम्मान किया जाए। हमने भोजन किया उसके बाद सोने चले गए। वह दिन मेरे लिए यादगार दिन बन गया।

आत्मकथ्य

व्यंग्य जीने की एक प्रविधि है मेरे लिए

गिरीश पंकज

व्यंग्य मेरे लिए जीने का सामान है। जीने की एक प्रविधि ही है जिस दिन व्यंग्य से कट जाऊँगा, उस दिन लगता है जीना कठिन हो जाएगा। व्यंग्य हस्तक्षेप की सशक्त विधा है। अपने समय की विसंगतियों पर व्यंग्य के माध्यम से हमला किया जा सकता है। आजीवन व्यंग्य लिख सकूँ इसलिए मैंने सरकारी नौकरी भी नहीं की, जबकि नौकरी तश्तरी में सजा कर परोसी गई थी, उस वक्त जब मैं पत्रकारिता स्नातक की परीक्षा में स्वर्ण पदक प्राप्त किया था। जन सम्पर्क अधिकारी बन ही जाता। मेरे कुछ मित्र बन भी गए और आज जीवन के सुख भोग रहे है, इधर हम कलम ही घिसे जा रहे हैं लेकिन संतोष है कि लेखक होने का फ़र्ज़ तो निभा रहा हूँ। शरद जोशी ने भी कुछ समय के बाद जनसम्पर्क विभाग की नौकरी को तिलांजलि दे दी थी। सही रचनाकार सरकारी दमघोटू वातावरण में व्यवस्था विरोधी व्यंग्य नहीं लिख सकता। वह व्यंग्य के लिए दूसरे ऐसे विषय चुनेगा जिससे उसकी कुर्सी को खतरा न हो यह चालाक समय है। लेकिन मुझसे चालाकी नहीं हो सकती थी। मैंने ऐसे भी व्यंग्य लिखे, जिसके कारण नुकसान उठाना पड़ा। नुकसान यही कि व्यवस्था की उपेक्षा का शिकार रहा। कुछ और व्यक्तिगत बाते हैं जिनका खुलासा उचित नहीं होगा। कुछ पर्दा भी रहे। बहरहाल, व्यंग्य मेरे लिए मुफीद भी रहा। आज सोलह व्यंग्य संग्रह और (सात में से) चार व्यंग्य उपन्यासों को देखता हूँ तो संतोष होता है कि व्यंग्य के उद्यान को हरियाने में अपनी भी आंशिक भूमिका रही।

व्यंग्य साहित्य पर जब विमर्श करता हूँ सोचता हूँ, यही एक विधा है जो तथाकथित विचारधाराओं के चक्कर में नहीं पड़ी व्यंग्य अपने आप में प्रगतिशील नजरिया है। संकुचित मन वाला बेहतर व्यंग्यकार हो ही नहीं सकता। वैसे तो साहित्य और विचारधारा की टकराहट कोई नई नहीं है। लेकिन मेरा अपना मत है कि विचारधारा अगर ठेठ राजनीतिक हो जाती है, तो दिक्कतें पैदा होती हैं। तब रचना, रचना न होकर सीमित नारे में तब्दील हो जाती है। एक पक्षीय बन कर रह जाती है। इसलिए लेखक को प्रगतिशील विचार तो रखने चाहिए लेकिन वह राजनीति के घेरे में न फँसे और स्वतंत्र हो कर जनसरोकारों से प्रतिबद्ध रहे। व्यंग्यकार को ऐसा करना चाहिए। दुर्भाग्य से ऐसा नहीं हुआ और कुछ व्यंग्यकार एक खास विचारधारा के प्रति इतने आग्रही हुए कि मत पूछिए। जो उनकी विचारधारा का नहीं हुआ, वो लेखक ही नहीं माना गया। प्रतिबद्ध विचारधारा वाले तथाकथित बड़े व्यंग्यकारों का हश्र मैंने देखा है। वे एक खास सत्ता के साथ लम्बे समय तक जुड़े रहे। और जब आपातकाल लगा तो वे उसके पक्ष में भी खड़े हो गए। ये कैसे लेखक थे, वो कैसी विचारधारा थी, जो अभिव्यक्ति के मौलिक अधिकारों का हनन करने वाली क्रूर सत्ता के साथ खड़ी थी। इसलिए व्यंग्यकार को राजनीतिक विचारधारा से परे हो कर व्यंग्य लिखना चाहिए। वरना वह अपनी विचारधारा वाले दल की बुराइयों को अनदेखा कर देगा और दूसरी विचारधारा से जुड़े लोगों की बखिया उधेड़ता नज़र आएगा। देश पश्चिम बंगाल की वामपंथी सरकार के उस दौर को भूला नहीं है जब सिंगूर नंदीग्राम में उसने गोलियाँ चला कर अनेक लोगों की जानें ले ली थीं। तब वामपंथी लेखकों की बोलती बंद थी। अगर वे विचारधारा के खूँटे से बंधे नहीं होते तो उस अन्याय के खिलाफ खुल कर लिखते। अगर व्यंग्यकार भी खास राजनीतिक विचारधारा का पोषक हो जाएगा तो वह सच्चा व्यंग्यकार हो ही नहीं सकता। सच्चा व्यंग्यकार केवल विचार के साथ रहता है तथाकथित विचारधारा के साथ नहीं। जब वह विचारधारा के साथ जुड़ जाता है तो जाहिर है उसके शिल्प पर भी उसका असर होता है और रचना यानी व्यंग्य की शुचिता धूमिल हो जाती है।

समकालीन हिंदी व्यंग्य में अभी उतनी विसंगति नहीं दिखती। हालांकि विचारधारा से परे हो कर जो लोग व्यंग्य लिख रहे हैं, उनके शिल्प को देख कर हैरत होती है। लगता है वह व्यंग्य नहीं, कोई पाठकीय टिप्पणी लिख रहे हैं। अनेक व्यंग्य साहित्य के मानक पर खरे नहीं उतरते क्योंकि वहाँ शिल्प की कमी नज़र आती है। व्यंग्य को साहित्यिक आलोचना में तरजीह इसीलिए कम मिली कि उसमें उथलापन अधिक नजर आया। जबकि मेरा शुरु से आग्रह रहा है कि व्यंग्य को एक साहित्यिक रचना की तरह लिखा जाए न कि अखबारी लेखन की तरह। इसीलिए व्यंग्य का परिदृश्य बहुत आश्वस्त तो नहीं करता, फिर भी व्यंग्य की पताका थाम कर अनवरत यात्रा करने वाले कुछ लोगों के कारण कह सकता हूँ कि हिंदी व्यंग्य का भविष्य उज्ज्वल है। धीरे-धीरे शिल्प भी बेहतर होता जाएगा। लेकिन कहने भर से किसी का भविष्य उज्ज्वल नहीं हो सकता, उसके लिए वैसे बेहतर जतन करने पड़ते हैं। जिस तेजी के साथ नई कविता या कहानी का बूम सा आया हुआ है, उस तेजी से व्यंग्य साहित्य का सृजन नहीं हो पा रहा है। कुछ हो भी रहा है तो स्तरीय रचनाओं को पत्र-पत्रिकाओं में जगह नहीं मिल रही है। इस समय व्यंग्य की जरूरत है। जब आदमी बीमार पड़ जाता है तो उसे दवाई दी जाती है। जरूरत पड़ने पर शल्यक्रिया भी होती है। यह एक बीमार समय है। इसके उपचार के लिए उसे व्यंग्य रूपी दवाई दी जानी चाहिए। व्यंग्य शल्यक्रिया भी करता है। यह और बात है कि समाज के विभिन्न घटकों की बीमारी इतनी अधिक व्यापक हो गई है कि बीमारी ठीक होगी या नहीं, कहा नहीं जा सकता। फिर भी आशा से आकाश थमा है। व्यंग्य अपना काम कर रहा है कि समाज कोमा में न चला जाए। समकालीन परिदृश्य में व्यंग्य एक अपरिहार्य उपस्थिति की मांग करता है।

साहित्य की लगभग समस्त विधाओं में व्यंग्य ही इकलौती विधा है जो सच को सीधे-सीधे सच कहने का साहस करती है। साहित्य भी सच नहीं कहेगा तो कौन कहेगा? लेकिन अब सच को छिपा कर कहने का चालाक समय है। हर कोई सुरक्षित रहना चाहता है। सत्ता या व्यवस्था से पुरस्कृत होने की ललक बढ़ी है इसलिए अपने को बचा कर सच कहने की परम्परा सी पड़ गई है। हम इधर की अनेक कविताएँ या कहानियाँ पढ़ते हैं, जिसमें अपने समय के सच को रूपायित करने की कोशिश की जाती है, ऐसा उसके लेखक ही बताते हैं। लेकिन उनकी रचनाओं में साफ-साफ वो सच दिखता नहीं। बताना समझाना पड़ता है कि देखिए, सच यहाँ है। ऐसा अद्भुत अमूर्तन हतप्रभ कर देता है। विसंगतियों की ऐसी कलात्मक नक्काशी कि आप विसंगतियाँ खोजते रहे जाएँ। वहीं किसी भी सफल व्यंग्य को पढ़ते हुए साफ-साफ समझ में आ जाता है कि यह राजनीति पर कटाक्ष है या समाज पर।

रचना वही सार्थक और कालजयी होती है जो युगीन पीड़ा को स्वर देती है, अन्याय के बरक्स खड़ी होती है। देखें, तो व्यंग्य में ही वो ताकत है। साहित्य का अर्थ ही यही है जो हित को साथ ले कर चले। जनहित तो सच का पर्दाफाश करने में है। जो छिपे हुए नकली लोग हैं, उनका सच सामने लाना ही रचना का धर्म है। ये लोग राजनीति, साहित्य, कला, समाज या किसी भी क्षेत्र में पाए जा सकते

हैं। लेकिन मेरा यह मानना है कि कलात्मक तरीके से सच की अभिव्यक्ति होनी चाहिए। ऐसा करने से रचना की सम्प्रेषणीयता बढ़ जाती है। रचना अमूर्तन के स्तर तक न जा पहुँचे कि पाठक अर्थ ही तलाशता रह जाए। मुझे लगता है कि विसंगतियों की रंजक अभिव्यक्ति ही व्यंग्य है। व्यंग्य को अगर रोचकता, रंजकता के साथ न प्रस्तुत किया जाए तो उसमें एक तरह की जड़ता या कटुता भी आ जाती है। सरसता भी व्यंग्य का एक तत्व है। इसलिए यह बेहद जरूरी है कि व्यंग्य को पठनीय बनाने के लिए उसके शिल्प पर भी ध्यान दिया जाए। उसे उबाऊ लेख न बना कर पठनीय रूप दिया जाए। यह तभी संभव होगा, जब उसे विनोदपूर्ण स्थितियों के साथ उसे प्रस्तुत किया जाए। विनोद का तड़का भी ज्यादा न हो। व्यंग्य में विनोद की मात्रा उतनी रहनी चाहिए जितनी कड़वी दवा पिलाने के लिए शक्कर की मात्रा दी जाती है। शक्कर अधिक होने से दवाई का असर खत्म हो सकता है, उसी तरह विनोद या हास्य अधिक होने से व्यंग्य का अपना असर खत्म हो जाएगा। हम यह भी कह सकते हैं कि व्यंग्य समाज की तल्खीभरी आलोचना का नाम है। यही युगीनधर्म है व्यंग्य का। मैंने अपनी इन भावनाओं को पद्य में कुछ इस तरह कहा था कि हर हाल में हम सच का बयान करेंगे। बहरे तक सुन लें वो गान करेंगे। खुद को अल्लाह जो मानने लगे, ऐसे हर शख्स को इंसान कहेंगे।

व्यंग्य को सच कहने के संस्कार कबीर से मिले, यह कहूँ तो अतिरंजना नहीं होगी। कबीर के दोहों या पदों में जो व्यंग्य दिखता है, वह आज भी सार्थक है। तुलसीदास जी का महान कृति में भी व्यंग्य शब्द मिलता है। ठेठ व्यंग्य के अर्थ में ही। व्यंग्य की उपस्थिति बगैर साहित्य कभी सफल नहीं हो सकती। कबीर तुलसी आदि तक व्यंग्य पद्य रूप में ही मिलता है मगर भारतेंदु हरिश्चंद्र के बाद व्यंग्य गद्य रूप में विकसित हुआ। और उसके बाद तो हर व्यंग्यकार भारत की या समाज की दुर्दशा को अपनी-अपनी शैली में प्रस्तुत करता रहा। भारतेंदु युग में व्यंग्य पुष्पित-पल्लवित होता रहा, मगर आजादी के बाद व्यंग्य एक वटवृक्ष बन गया। परसाई और शरद जोशी जैसे व्यंग्यकारों ने व्यंग्य को जो प्रतिष्ठा दी, उसके कारण व्यंग्य साहित्य के केंद्र में आ गया। लगभग हर रचना में व्यंग्य नजर आने लगा।

आजादी के बाद मोहभंग की स्थितियाँ बनती गई। नायक खलनायक बन गए। हालत यह हुई कि खुद नायक अपने आप को खलनायक कह कर गौरवान्वित होता रहा। सेवा की आड़ में मेवा खाने की नई संस्कृति ने सारे मूल्य ध्वस्त कर दिए। राजनीति सर्वाधिक कलुषित हो गई। और उसके साथ चलने वाले प्रशासन भी जुगलबंदी करने लगा। तब नई कविता और उसके बाद अकविता आंदोलन में इन विसंगतियों को रेखांकित करने की कोशिश की लेकिन कविता की अपनी शब्द सीमा थी। तभी व्यंग्य ने उस पूरे दौर को संभाला और कहा जा सकता है कि साठवें दशक के आसपास साहित्य का मानो व्यंग्यावतार

हुआ, जिसने चुन-चुनकर विसंगतियों, विद्रूपताओं पर प्रहार करने का काम किया। उस दौर की पत्रकारिता भी मिशन की तरह काम कर रही थी इसलिए व्यंग्य का भी पूरा स्पेस मिल जाता था। उस दौर में व्यंग्य-व्यंग्य ही था।

दरअसल व्यंग्य वह कला है जो व्यक्ति-निरपेक्ष और समाज सापेक्ष होती है। शरद जोशी भी ऐसे कालजयी व्यंग्यकार हैं, जिन्हें साहित्य में फैला माफिया लेखक ही नहीं मानता। उनकी रचनाओं पर चर्चा नहीं करता।

एक को उठाना और दूसरे को गिराना ही हिंदी आलोचना का चरित्र हो गया है। इस आलोचना ने व्यंग्य का बेहद नुकसान किया है। इधर अनेक आलोचनाओं में मैंने यही महसूस किया कि हमारे तथाकथित बड़े आलोचकों ने व्यंग्य के प्रति दोयम दर्जे का भाव रखा और एक विशेष नाम लेने के बाद व्यंग्य की यात्रा को बाधित करार देने का ही काम किया। जिन लोगों ने व्यंग्य को गरिमा प्रदान की, उन लोगों के साथ हिंदी आलोचना का भेदभाव नजरिया हैरत में डाल देता है। शरद जोशी जैसे महान व्यंग्यकारों की चर्चा किए बगैर हिंदी व्यंग्य का इतिहास अधूरा है।

उन्होंने हिंदी व्यंग्य को एक पहचान दी। परसाई की तरह ही उनका अपना व्यापक अवदान है। आज जो व्यंग्य का स्वरूप दिख रहा है, उसके पीछे इन दोनों व्यंग्यकारों का खून-पसीना बहा है। इन दोनों व्यंग्यकारों को व्यंग्य लिखने के कारण परेशान किया गया। परसाई जी की टाँग टूटी तो शरद जोशी को भोपाल ही छोड़ देना पड़ा। लेकिन उसके बाद उन्होंने जो कुछ भी लिखा, और प्रतिदिन लिखा, वो हमारे हिंदी साहित्य की धरोहर बन गया।

इसमें दो राय नहीं हो सकती कि परसाई जोशी जी के बाद की पीढ़ी ने व्यंग्य को और बेहतर स्थान तक पहुँचाया। परसाई वामपंथी विचारधारा से प्रतिबद्ध थे मगर शरद जोशी काफी हद तक मुक्त थे। इसलिए दोनों के लेखन में अंतर साफ़ दिखता है। लेकिन इन दोनों ने व्यंग्य को शिखर तक पहुँचाया। बाद की पीढ़ी ने परसाई जोशी की परम्परा को गति दी, मगर अब चौथी पीढ़ी तक आते-आते बाजारवाद को इतना जबर्दस्त तड़का लगा है कि व्यंग्य की पुरानी धार ही भोथरी पड़ गई है। अनेक समकालीन व्यंग्यकारों की तरह कई बार मुझे भी गहरी निराशा होती है कि अगर यही रफ्तार रही तो व्यंग्य को साहित्य की एक सशक्त विधा के पद पर कैसे प्रतिष्ठित किया जा सकेगा। व्यंग्य के एक विद्यार्थी के नाते मेरा भी मानना है कि परसाई और शरद जोशी के निधन के बाद व्यंग्य की ओजस्विता में कमी आई है। इन दो व्यंग्य स्तंभों के ढहने के बाद से हिंदी व्यंग्य का भी क्षरण शुरू हो गया था।

बाजारवाद का उत्थान और समाजवाद के पतन का सिलसिला तेजी से बढ़ा। और उस के कारण व्यंग्य जैसी गंभीर विधा भी बाजारवाद का शिकार बन गई। मांग और पूर्ति के सिद्धांत की तहत अखबारों की मांग पर दोयम दर्जे की व्यंग्य रचनाएँ प्रकाश में आने लगी। और पिछले दो दशकों को निहारें तो व्यंग्य के नाम पर जिस तरह की हल्की रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में नजर आती रही हैं, उन्हें देख कर लगता है कि यह व्यंग्य विधा की हत्या करने का षडयंत्र हो रहा है। व्यंग्य की गंभीरता खत्म हो रही है, और उसकी जगह मसखरेपन ने ले ली है।

राजनीति या समाज के मीडिया द्वारा बनाए गए विदूषकों पर लिखना ही व्यंग्य माना जा रहा है। व्यंग्य विदूषकों को नहीं, बड़े-बड़े मूशकों को देखता है, जो समाज को कुतर रहे हैं। विदूषकों पर कलम चलाने पर व्यंग्य फूहड़ बन जाता है। यह एक ऐसी विधा है जो फूहड़ता को नहीं, गंभीरता को स्थापित करती है। जैसे बाल साहित्य लिखना बच्चों का खेल नहीं, उसी तरह व्यंग्य लिखना मसखरों का काम नहीं। इसके लिए गंभीरता चाहिए। इसलिए व्यंग्य के वर्तमान स्वरूप को देखते हुए यह चिंता जायज है कि इस विधा के गंभीर अध्येताओं की प्रतिष्ठा हो और नये व्यंग्यकारों को व्यंग्य की दिशा के बारे में बताया जाए।

हिंदी व्यंग्य को उसके पुराने पद पर प्रतिष्ठित करने के लिए यह जरूरी उपक्रम है कि व्यंग्य का अपना आलोचनाशास्त्र और ज्यादा प्रखर हो। व्यंग्यकार और व्यंग्यालोचक सुभाषचंदर ने हिंदी व्यंग्य का प्रामाणिक इतिहास लिखा और लोकप्रिय व्यंग्यकार डॉ. प्रेम जनमेजय ने 'व्यंग्ययात्रा' पत्रिका के माध्यम से गंभीर व्यंग्य लेखन को प्रोत्साहित करने का काम शुरू किया। 'अट्टहास' (संपादक अनूप श्रीवास्तव) का

प्रकाशन भी वर्षों से हो रहा है, फिर भी अभी और अधिक प्रयासों की जरूरत है। अभी हिंदी व्यंग्य को कुछ और आलोचक चाहिए। बालेंदुशेखर तिवारी, श्यामसुंदर घोष या मधुसूदन पाटिल आदि ने जो काम किए, उसे आगे बढ़ाने के लिए कुछ व्यंग्यकारों को ही सामने आना होगा।

कुछ और लोग होंगे जिन्होंने व्यंग्यालोचन किया होगा, उनके बारे में शायद मैं नहीं जान पाया, लेकिन ऐसे लोग कम ही हैं। व्यंग्य पर जितना गंभीर आलोचनात्मक विमर्श होगा, उतनी ही प्रतिष्ठा इस विधा की बन सकेगी। साहित्य की आलोचना करने वाले पेशेवर माफियाई आलोचकों के भरोसे व्यंग्य को प्रतिष्ठा नहीं मिल सकती।

इसलिए व्यंग्यकारों को अपने लेखन के साथ ही व्यंग्य विमर्श का काम करना होगा। व्यंग्य पर अब चर्चा कम होती है यही कारण है कि साहित्य के विद्यार्थी भी व्यंग्य में उतनी रुचि नहीं लेते।

हाँ, कभी-कभार जब कोई विद्यार्थी पीएच.डी की उपाधि अर्जित करने के लिए व्यंग्य साहित्य पर शोध कार्य करता है तो सुखद अनुभूति होती है कि चलो, कुछ लोग तो हैं जो व्यंग्य के माध्यम से अपने कैरियर का एक अध्याय गढ़ रहे हैं। लेकिन जैसा कि मैंने पहले ही कहा जो कुछ हो रहा है, वो ऊँट के मुँह में जीरा की मानिंद है। बहुत कम है। व्यंग्य को साहित्य के केंद्र में लाने के लिए उस पर निरंतर चर्चा जरूरी है।

संगोष्ठियाँ हों, व्यंग्यपाठ हों, शोधकार्य हों। और सबसे बड़ी बात यह है कि वह युग लौटे जिस युग ने व्यंग्य को व्यंग्य बनाया। पत्र-पत्रिकाओं में, पाठ्य पुस्तकों में व्यंग्य मौजूद हो, मगर दुर्भाग्य यही है कि जिन लोगों के हाथों में पाठ्य पुस्तक तैयार करने का अधिकार होता है, वे ही व्यंग्य को नापसंद करते हैं।

क्योंकि व्यंग्य उनकी भी पोलें खोलता है। व्यंग्य सत्ताधीशों को, व्यवस्था से जुड़े दलालों को आहत करता है। चोर की दाढ़ी में तिनका होता है। जो गलत लोग हैं, वे व्यंग्य से विचलित होते हैं। अगर व्यंग्य को साहित्य में व्यापक स्थान मिलेगा तो पीढियाँ बगावत करेंगी। सत्ता के खिलाफ जागरुकता बढ़ेगी। सत्ता यह सब नहीं चाहती। दल कोई भी हो, उसे गूँगे बहरे लोग चाहिए। जिंदा कौमें पाँच साल तक इंतजार नहीं कर सकतीं, मगर सत्ता में बैठे सारे अय्याश शातिर और दोगले लोग चाहते हैं, लोग इंतजार करें। महंगाई के कम होने का इंतजार, भ्रष्टाचार के कम होने का इंतजार, बलात्कार, हत्या, लूट डकैतियों के कम होने का इंतजार। इंतजार, इंतजार और इंतजार। लेकिन व्यंग्य इंतजार का पक्षधर नहीं।

विचार और शिल्प, इन दोनों का महत्व है। विचारहीन व्यंग्य हो तो उसके शिल्प पर भी असर होगा। और अगर केवल शिल्प है तो वहाँ व्यंग्य विचार का अभाव रहेगा। सार्थक व्यंग्य में विचार और शिल्प का गुफन होना ही चाहिए लेकिन जैसा मैंने पहले ही कहा, वह विचार राजनीतिक नहीं, निरपेक्ष होना चाहिए। व्यंग्यकार राजनीतिक दल का प्रवक्ता नहीं हो सकता। व्यंग्यकार युग का हरकारा होता है। उसे तटस्थ हो कर जगाने का काम ही करना है। हँसाने का काम मसखरों पर छोड़ दिया जाए।

हँसना भी जरूरी है। स्वास्थ्य के लिए यह मुफीद है। इसीलिए इन दिनों लाफिंग क्लब भी खुलते जा रहे हैं। मैंने खुद एक हास्य चालीसा लिखी है। लेकिन मेरी हँसी वैसी हँसी नहीं है जो अचानक पायजामे का नाड़ा खुल जाने से उपजती है। या किसी के गिर जाने पर आती है। यह हँसी अपने आप पर है।

दूसरों पर हँसने वालों पर है। सच्चे व्यंग्य की तरह, सच्ची हँसी भी वही है जो दूसरे पर नहीं, अपने आप पर होती है। तो, हँसना ठीक है, मगर हर घड़ी हँसते रहना पागलपन की निशानी है।

यह समय केवल हँसना चाहता है। टीवी पर हास्य कार्यक्रम चाहिए, समाज में हास्य कवि सम्मेलन चाहिए। हर कहीं हँसी। हँसी एक तरह का पलायन है। सच से रू-ब-रू होने की बजाय हँस कर चीजों को टालने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। व्यंग्य सच का सामना करने पर मजबूर करता है और प्रतिकार की ताकत भी देता है। जो सच बोलते हैं, उनके पक्ष में खड़े होने का काम करता है। लेकिन इस वक्त वैसी रचनाएँ कम दिखती हैं। पत्र-पत्रिकाओं में जो व्यंग्य नजर आता है, वो व्यंग्य नहीं है। उसे नाम देने

के लिए कुछ नया विशेषण खोजना होगा। शायद मसखरी बेहतर शब्द होगा।

इन तमाम विमर्श के बाद जब हम समकालीन व्यंग्य की उपस्थिति पर विचार करते हैं तो स्वाभाविक रूप से निराशा होती है। इस वक्त अनेक नए व्यंग्यकारों में विचार की भी कमी है और शिल्प भी अधिक है। नये पुराने व्यंग्यकारों के सामने पत्र-पत्रिकाओं का एक बड़ा बाजार है। इस बाजार से व्यंग्य गायब है। और उसके साथ ही विचार भी लापता हैं।

व्यंग्य के नाम पर जो कुछ सामने आ रहा है, वो व्यंग्य नहीं है। व्यंग्य का ही विद्रूप है। बाजारू पत्रिकाओं के संपादक व्यंग्य की हत्या करने पर आमादा हैं। संपादकों को बिकने वाला माल चाहिए। जहाँ गंभीर-विमर्श न हो, तात्कालिकता पर कोई चलताऊ परिहासजनक टिप्पणी हो। इस चक्कर में ज्यादातर नये व्यंग्यकारों ने प्रकाशन के लिए नया रास्ता निकाल लिया। इस फौरी प्रकाशन से व्यंग्यकारों का तो नाम हुआ मगर व्यंग्य का काम (तमाम) हो गया। यही कारण है कि अब साहित्य में गंभीर व्यंग्य लेखन नजर नहीं आ रहा है।

लेकिन इस धारा के विपरीत जो व्यंग्यकार गंभीरता के साथ काम कर रहे हैं, वे अपनी व्यंग्य कृतियों पर निरंतर काम करते रहते हैं। कुछ व्यंग्यकारों के नाम लिए जा सकते हैं, मगर खतरा कुछ महत्वपूर्ण नामों के छूट जाने का भी है। जो इस वक्त गंभीरता से लिख रहे हैं, वे सबके सामने हैं। उनसे बेहतर लेखन की उम्मीद बनी हुई है। मगर ऐसे लोग भी कम नहीं हैं, जो वही लिख रहे हैं, जो पत्रिकाएँ उनसे लिखवा रही हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि इस समय दो तरह के व्यंग्यकार सक्रिय हैं। एक वे जो पत्र-पत्रिकाओं में नजर आते हैं, और दूसरे वे जो स्वांतः सुखाय लिख रहे हैं, लेकिन व्यंग्य साहित्य को समृद्ध कर रहे हैं। यही कारण है कि व्यंग्य के वर्तमान स्वरूप को लेकर चिंता स्वाभाविक है। उसे साहित्य के केंद्र में दुबारा प्रतिष्ठित करने के लिए बचे खुचे वरिष्ठ व्यंग्यकारों को ही काम करना होगा। और व्यंग्य की सर्वकालिक प्रतिष्ठा के लिए भले ही लघु पत्रिकाओं में लिखा जाए, गंभीर व्यंग्य लिखना होगा। और राजनीतिक विचारधारा से ऊपर उठ कर लिखना होगा। व्यावसायिक पत्रिकाओं में छपने की ललक ने व्यंग्य को क्षति पहुँचाई है। व्यंग्य का स्वर्णिम काल तभी वापस होगा। विचार और शिल्प के अंतर्संबंध के बगैर व्यंग्य ही क्या कोई भी रचना सार्थक नहीं होती। उनमें संतुलन बना रहना चाहिए। लेकिन यह भी देखना होगा विचार की मात्रा कितनी है, और शिल्प कितना हो। इधर की अनेक कहानियों और कविताओं में हम देखते हैं कि वहाँ विचारक शून्यता है मगर शिल्प प्रयोगधर्मी है। साहित्य कला तो है लेकिन केवल कला नहीं है, वह एक हथियार भी है, जागरण का, क्रांति का। व्यंग्य की जिम्मेदारी और अधिक है। उसे तथाकथित विचारधारा की सीमारेखा से बाहर आकर खड़ा होना है। ऐसा हो सका तो उसका शिल्प और निखरेगा और वह अखबारी लेखक न बन कर साहित्य लेखक की तरह अपनी पहचान कायम कर सकेगा।

मेरा अपना संकल्प है कि मुझे पूरी प्रतिबद्धता के साथ व्यंग्य लिखना है। यह और बात है कि साहित्य की अन्य विधाओं में भी विचरण करता रहा हूँ लेकिन मेरी केन्द्रीय ताकत व्यंग्य ही है। मेरे अपने व्यंग्य उपन्यास 'मिठलबरा की आत्मकथा', 'माफिया', 'पॉलीवुड की अप्सरा' 'मीडिया नमः', और 'स्टिंग आपरेशन' ने मेरा हौसला बढ़ाया है।

'एक गाय की आत्मकथा' नामक मेरा उपन्यास भी एक तरह का व्यंग्य ही है जिसमें मैंने भारतीय गायों की दुर्दशा और हिन्दू पाखंड पर जगह-जगह पर व्यंग्यात्मक प्रहार ही किये हैं। प्रहार ही व्यंग्य का लक्ष्य है लेकिन इसके पीछे लोक कल्याण का लक्ष्य रचना को बड़ा बनाता है। यही लक्ष्य ले कर चल रहा हूँ। समकालीन व्यंग्य में अनेक नए चेहरे भी उभरे हैं। उनको देख कर संतोष होता है कि वे अनेक मामलों में आगे बढ़ रहे हैं। उनकी भाषा में नयापन है, प्रयोगधर्मिता है। इसके कारण व्यंग्य साहित्य और अधिक सम्पुष्ट भी हुआ है।

व्यंग्य कला को अनेक शिल्पों और शैलियों से निखारने में निपुण-गिरीश पंकज

डॉ. चित्तरंजन कर

मानव-समाज ही नहीं, यह सृष्टि विभिन्नताओं से भरी हुई है, तथापि उन में पारस्परिकता ही वह आधार है, जिस पर हमारा अस्तित्व निर्भर है। सामान्यतः हित से युक्त होना ही साहित्य है, जो वस्तुतः वाग्मय का पर्याय है, क्योंकि प्रत्येक ज्ञानानुशासन मानव हितार्थ है। काव्य को विशेषतः साहित्य कहने के मूल में शब्द-शब्द में, शब्द-अर्थ में, अर्थ-अर्थ में, मनुष्य-मनुष्य, मनुष्य प्रकृति में, मनुष्य-मनुष्येतर में सामंजस्य या सहभाव है। यही सामंजस्य सुख-समृद्धि शांति का मूल है। सृष्टि के आरम्भ से ही मानव समाज में सत असत का द्वंद्व चलता चला आ रहा है, जिस में असत ने सत को पराजित करने का सतत प्रयास किया है, परन्तु विजय सदैव सत्य की ही होती आई है 'सत्यमेव जयते' यह जानते हुए भी मनुष्य असत या बुराई को क्यों अपनाता है। ड्रेस, बुराई को अपनाने में सरलता होती है और क्षणिक लाभ-लोभ का कर्षण मनुष्य को उस के दूरगामी परिणाम से बेखबर कर देता है। गिरीश पंकज की तमाम कृतियाँ सहृदय पाठकों को बेहतर मनुष्य बनने का संदेश देती हैं। उनकी लगभग हर व्यंग्य कृति यही बताने का रचनात्मक अनुष्ठान रही है कि 'अंत भला, सो सब भला' काव्य या साहित्य को 'सत्यं शिवं सुंदरम' की शाब्दिक कलाराधना कहा जाता है, जबकि वर्तमान समाज में 'असत्यं अशिवम असुंदरम' का वर्चस्व है। आचार्य मम्मट ने काव्य प्रयोजन के रूप में जो स्थापनाएँ की हैं, उन में से व्यंग्यकार 'शिवेतरक्षतये' (अकल्याण के विनाश के लिए) प्रयोजन को चुनता है, ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार शिव समुद्र मंथन से निःसृत 'अमृत विष' में से विश्व को चुनते हैं। और सृष्टि का कल्याण करते हैं। इस सृष्टि में अन्यथा सौंदर्य की कहाँ कमी है, परन्तु असौंदर्य के रहते सौंदर्य का वैभव निस्तेज हो जाता है।

व्यंग्यकार गिरीश पंकज अपनी व्यंग्य कला को अनेक शिल्पों और शैलियों से निखारने में निपुण हैं, जिसका आधार है उनका बहुआयामी व्यक्तित्व और 'साहित्य के प्रति उन का समर्पण भाव (संयोग ही कहें कि उन के इकलौते पुत्र का नाम भी साहित्य है)। उनके पास कई 'कार' (कारें नहीं) हैं गीतकार, कथाकार (कहानीकार, उपन्यासकार), व्यंग्यकार, पत्रकार। ऊपर से सम्पादक इतने सारे दायित्वों का निर्वाह अनुभव 'स्टिंग ऑपरेशन' की रचना प्रक्रिया में पाठकों को एकरसता से बचाने में कारगर भूमिका निभाता है कहीं कविता या ग़ज़ल की पंक्तियाँ, कहीं छत्तीसगढ़ी कहावतों या मुहावरों की छटा, कहीं गद्य में ही अन्त्यानुप्रास का स्वाद। व्यंग्य का निहितार्थ शब्दों से अधिक मौन संकेतों में होता

है और यही सम्भवतः उसे एक उत्कृष्ट विधा सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है। व्यंग्य का उपजीव्य स्वभावतः जीवन का वास्तविक धरातल है, जिस का यथार्थ (यथा अर्थ) जितना कड़वा होगा, व्यंग्य की धार उतनी ही तेज होगी। व्यंग्यकार उस आम आदमी का पक्षधर होता है, जो सदियों से समाज में गहरी जड़ें जमा चुकी अमानवीय रूढ़ियों, विसंगतियों, एवं विद्रूपताओं का शिकार होता आया है। गिरीश पंकज का व्यंग्यकार राजनीति ही नहीं, राज क्षेत्र के साये में पलने वाली उन तमाम विसंगतियों का स्टिंग आपरेशन करता है, जो भारतीय लोकतंत्र में चुनाव, शिक्षा, पत्रकारिता, साहित्य, धर्म, समाजसेवा, आदि विविध क्षेत्रों में व्याप्त है।

हिंदी में व्यंग्य उपन्यासों की संख्या बहुत अधिक नहीं है, क्योंकि व्यंग्य को पूरे उपन्यास में साध पाना साधना से कम नहीं, फिर भी कुछ व्यंग्यकारों ने सफलता अर्जित की है जिनमें श्रीलाल शुक्ल, ज्ञान चतुर्वेदी, सुरेशकांत, अरविन्द तिवारी आदि के साथ गिरीश पंकज का नाम लिया जा सकता है। यहाँ मैं लेखक के व्यंग्य उपन्यास 'स्टिंग ऑपरेशन' पर ही अपना विमर्श केंद्रित करूँगा। यह उपन्यास भारतीय राजनीति की विकृतियों को व्यंग्य शैली में प्रस्तुत करने का सफल उपक्रम है। अपने नए उपन्यास 'स्टिंग ऑपरेशन' में गिरीश ने सकारात्मक चरित्र मालवीय जी के मुख से इस तथ्य को उजागर करवाया है और दिखाया है कि वास्तविक राजनीति और वर्तमान राजनीति में कितना अंतर है। राजनीति मतलब नीति के साथ राज करना। राज करना मतलब तानाशाही नहीं, लोकशाही लोक जागरण के लिए, लोक मंगा के लिए, सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए, विकास के लिए राजनीति ज़रूरी है। राजनीति के बग़ैर हम एक क़दम भी नहीं चल सकते। लेकिन यह उस वक्त की बात थी, जब हम लोग राजनीति कर रहे थे। तब नैतिकता का पाठ ज़रूरी था। सच्चाई, त्याग, तपस्या का मोल था, लेकिन अब तो अनैतिकता ज़रूरी हो गई है। केवल झूठ का सिक्का चलता है। त्याग की जगह भोग ने ले ली है। साधना की जगह वासना की कैबरे डांसर इठला रही है। आज की राजनीति को एक वाक्य में समझना हो, तो कहा जा सकता है, मुँह में गाँधी और दिल में गोंडसे। बेटे, एक लाइन में समझ लो की जो जितना बड़ा ढोंगी है, वही उतना बड़ा नेता है।

वर्तमान राजनीति की वास्तविकता को दीनदयाल जैसे भ्रष्ट गुरुजी के मुँह से लेखक कहलवाना चाहता हैः राजनीति के जो रंग ढंग नज़र आ रहे हैं, उसे देख कर यही लग रहा है कि लंक निश्चिर निकर निवासा, इहाँ खान सज्जन करि वासा। अब तो यहाँ दुर्जनों का ही वर्चस्व बढ़ेगा। 'हंस चुनेगा दाना तिनका, कौवा मोती खाएगा।' इसलिए अब समय है कौवा बनने का होती। हंस बेचारा भूखों मरेगा। कौवा काँव-काँव करेगा और ऐश करेगा। मैं बदलते हुए समय को देख रहा हूँ। राजनीति में सेवा का दौर ख़त्म, अब मेवा खाने का दौर शुरू हो गया है। लोहिया समाजवाद के सूत्र समझते हुए चल बसे जेपी भी तेन बोल गए। अब कोई भला नेता नज़र नहीं आता। राजनीति की गंगा, गंगा अब मैली होती जाएगी इससे बचना मुश्किल है। इसलिए मेरा मानना है कि जो जितना नंगा होगा, वही राजनीति की गंगा में डुबकी लगाने में सफल होगा। दीनदयाल गुरुजी जैसे चाणक्य और टिल्लू चन्द्रगुप्त हो, तो देश का भला कैसे हो सकता है!

शिक्षा राष्ट्र की रीढ़ है और शिक्षक राष्ट्रनिर्माता, परन्तु यहाँ तो सब कुछ विपरीत है। दीनदयाल गुरुजी का यह कथन विचारणीय हैः तुमको डिग्री चाहिए न? मिल जाएगी। मैं दिलवाऊँगा। गुरूजी ने दाँत में फँस चुकी सुपारी को निकालने की कोशिश करते हुए कहा, "अगली बार मैं भिड़ूँगा उस के साथ। राजधानी तक जाऊँगा। मामला सेट करूँगा। उसे डिग्री मिलेगी, ज़रूर मिलेगी। हमने भी अपनी डिग्री कुछ इसी तरह भिड़ाई थी। शिक्षा के उच्च संस्थानों में छात्र राजनीति तो भावी राजनीति की पाठशाला होती है। इसी फैक्ट्री से तो एक सॉलिड नेता निकलता है। चोरी, गुंडागर्दी, झूठ, फरेब, अपहरण आदि-आदि कच्चे माल के सहारे एक पक्का नेता बनता है। चुनावी घोषणा पत्र की एक ऐसी जादुई पोटली है, जिसके सहारे ही राजनीति के कोठे में प्रवेश पाया जा सकता है। जहाँ घुसने के बाद तो ऐश ही ऐश। सरल शब्दों मे कहूँ, तो घोषणा-पत्र यानी लोगों को चूतिया बनाने की मशीन।

व्यंग्यकार की पैनी नज़र वहाँ तक भी जाती है, जहाँ से राजनीति का खेल शुरू होता है और वह है भारतीय जनता की मानसिकता पार्षद चुनाव लड़ने वाले टिल्लू को गुरुजी का यह सन्देश दृष्टव्य है: घर बैठे-बैठे चुनाव जीत जाओगे का भाइये, न चाहते हुए भी बड़ी-बड़ी नाटक नौटंकियाँ करनी पड़ती हैं। तभी तो जनता को लगता है कि यह अपने काम का आदमी है। खा-पीकर अघा, समाज को एक प्रतिनिधि चाहिए, जो उस के हिस्से की मेहनत करे। इसीलिए तो नेता चुने जाते हैं। यही है राजनीति। घटिया और दो कौड़ी के लोगों के भी पैर पड़ने पड़ते हैं, तब वोट मिलते हैं। फिर वोट के लिए नोट की भी तैयारी रखो। लोकतंत्र में लालचतंत्र भी तो काम करता है।

जनता कम लालची नहीं होती। वह केवल काम से खुश नहीं होती, उसे दाम भी चाहिए होते हैं। कंबल का सम्बल चाहिए दारू भी। कपड़ा लत्ता चाहिए, फ़ोकट का भत्ता चाहिए इसे ही कहते है, 'गिव एंड टेक' का ज़माना।

भारतीय जनता कितनी निरीह, इसे शर्मा सर टिल्लू को समझाते हुए कहते हैं। यही तो नीच ट्रेज़ेडी है टिल्लू कि यह जो पब्लिक है न, जिसके बारे में कहा जाता है कि वह सब कुछ जानती है, दरअसल वह कुछ भी नहीं जानती, जानना नहीं या फिर जानना ही चाहती, आई डोंट नो पता नहीं, वह बड़ी भोली है, मूर्ख है या परम स्वार्थी। क्या है, यह दावे के साथ कहा नहीं जा सकता। अब जिस नेता के बारे में पूरे शहर को पता होता है की वह नंबर वन का हरामी है, भ्रष्ट है, व्यभिचारी है, लुटेरा है, तो उसे ही हर बार भारी बहुमत से पब्लिक क्यों जिता देती है। एक-एक लाख वोटों से जीत जाते हैं गुंडे और सज्जन किस्म के नेता हार जाते हैं। क्या इसे बुद्धिमानी कहेंगे। ऐसे लोगों को नेता नोट देकर खरीद लेते हैं। नेता जनता को देख कर कभी-कभार मुस्करा देता है। कभी-कभार चंदा-वंदा दे देता है। बस, लोग खुश। यह सब बंद होना चाहिए सच्चा नेता वह है, जो न तो नोट बाँटता है, और न चंदा देता है। वह केवल जनता के दुःख दर्द बाँटता है। उन के लिए ईमानदारी के साथ काम करता है। न की अपना घर भरता है, न रिश्तेदारों को मालामाल करता है। लेकिन अब ऐसे नेता रहे कहाँ? जैसे विशालकाय डायनासोर लुप्त हो गए, वैसे ही अच्छे नेता हाशिए पर चले गए हैं।

राजनीति में परिवारवाद कितना घातक हो सकता है, यह सभी जानते हैं अब तो यह कभी न मंदा पड़ने वाला धंधा बन चुका है। कितने ही सेठों के बिगड़े लड़के राजनीति में हैं। घर का एक सदस्य भी राजनीति में घुस जाए, तो सारे काले-पीले काम करने में ज़रा आसानी हो जाती है। शासन-प्रशासन पर रौब ग़ालिब करते रहो सरकार किसी भी दल की रहे, रह तो सेठ जी ही करते चैन। राजनैतिक नेताओं की जितनी विरुदावलि गाई जाए, उतनी ही कम है 'हरि अनंत हरि कथा अनंता' गिरीश ने स्टिंग ऑपेरशन से खोद-खोद कर उनके चरित्र की गूढ़ताएँ वर्णित की हैं। मंत्री टिल्लू उर्फ़ तिलकुमार को गुरूजी जो 'गुर' देते हैं, वह है ईमानदारी का चोला : ईमानदारी का चोला ओढ़े रखना है। पर उपदेश कुशल बहुतेरे बोधकथाएँ पढ़ लो। कुछ चुटकुले याद कर लो। शेर-शायरी रट लो। जहाँ कहीं भी जाना, पेल देना तालियाँ पिटेंगी। तुम्हारे लिए मैं कार्यक्रम कराऊँगा। तुम्हारा विभाग जो भी हो, तुम

पुस्तक विमोचन भी करोगे कवि सम्मेलन में भी भाषण देने जाओगे और महिलाओं के सम्मेलन में भी।

राजनीति में प्रचार का महत्व सर्वाधिक होता है, जिस में जयकार जादुई होता है। गाँधी जी की जै केवल एक बार, और दस बार 'टिल्लू की जै'। यह स्थिति तब की है जब टिल्लू मंत्री बन कर अपने शहर मंगलपुर में प्रवेश करता है। वर्णन देखिए : "उधर टिल्लू का जुलूस आगे बढ़ रहा था। बच्चे, बूढ़े, और महिलाएँ सब छत पर खड़े हो कर टिल्लू का अभिवादन कर रहे थे। कुछ घरों से उस पर फूल बरसाए गए। ऐसा नहीं था कि लोगों के मन में टिल्लू के प्रति कोई आदर भाव था। टिल्लू के लोगों ने ही फूलों के टोकरे भिजवाए थे। कुछ पैसे और मिठाइयाँ भी। राजनीति में प्रचार के लिए यही नीति कारगर है। बिना किसी लाभ के अब कोई किसी की पालकी क्यों उठाएगा? इस अश्वमेध यज्ञ में चमचों द्वारा दी गई आहुति कम महत्वपूर्ण नहीं है चमचा होना आदर्श नेता की पहली सीढ़ी है। दरअसल, ये चमचे ही नेता या मंत्री के 'भवदीय' होते हैं, जो इमरती और सल्लू जैसे होते हैं 'जिधर बम, उधर हम'।

'समाजसेवा' शब्द जिव्हा पर आते ही जो भाव मन में उत्पन्न होते हैं, वे सब आजकल राजनीति में नए कलेवर धारण कर चुके हैं नैतिकता की तो मनो अर्थी ही उठ गई हो कब की। डल्लू जैसे लोग सुगंधा जैसी पत्नी से वह सब करवाते हैं, जिसे सोचने में शर्म आती है। जिस्मों की दलाली राजनीति का स्थाई भाव है। 'आजकल यह भी एक समाजसेवा है। बेशक पैसे ले लो, मगर काम कराओ जो पैसे खा जाता है और काम नहीं कराता, वही भ्रष्ट है। पैसे लेना अब भ्रष्टाचार नहीं रहा। ज़माना बदल गया है, लोगों की सोच भी बदल गई है। लोग कहते हैं, यही आजकल का फंडा है।

धर्म जो कभी चार पुरुषार्थों में प्रथम स्थान पर था, अब पाखंड सा हो गया है विशेषतः त्रिखण्डानन्द जैसे तांत्रिकों के 'ओम नमो शिवाय' रिंगटोन से तो यही प्रतीत होता है। लेखक की टिप्पणी देखिए : 'समाज में कितने चालाक लोग हैं, उनका आकलन करना हो, तो उन के रिंगटोनों से भी किया जा सकता है। जिसका रिंगटोन जितना धार्मिक होगा, समझ लो वह शख़्स आचरण से उतना ही अधार्मिक होगा। वैसे अपवाद कहाँ नहीं होते।

प्रचार तंत्र के रूप में मीडिया का महत्व प्राचीन काल से रहा है। कालिदास और भवभूति को कहना पड़ा। उत्पस्यते मम लेकिन अब पत्रकारिता पैसे कमाने का धंधा भी है। टिल्लू मंत्री का पिता कल्लू दीनदयाल गुरुजी के उपदेशामृत पी कर जान पाता है कि "अख़बार से पैसे" भी कमा सकते हैं। हम तो समझ रहे थे कि केवल नाम कमाते हैं यही नहीं, अख़बार के ज़रिए व्यवसायी या ठेकेदार अपना काला पीला सफ़ेद भी कर लेते हैं। प्रेस रिपोर्टरों को जब तक दारू शारू न पिलाओ, गिफ़्ट विफ़्ट न दो, तो नाम भी नहीं छापते।

स्टिंग ऑपरेशन बताता है कि किस प्रकार कुछ लेखकों सम्पादकों और साहित्य के आलोचकों के पास प्रेयसियों का राष्ट्रव्यापी स्टॉक होता है। किस प्रकार चम्पा और इमरती जैसी औरतें राजनीति में रस पैदा कर देती हैं। किस प्रकार सिंचाई विभाग 'खिंचाई विभाग' बन जाता है। किस प्रकार की प्रजातांत्रिक मजबूरी होती है कि मंत्री हँसे, तो बाक़ी सब को भी हँसना पड़ता है। इत्यादि।

इस तरह हम देखते हैं कि उपन्यास एक तरह से भारतीय राजनीति का सफल स्टिंग आपरेशन ही करता है। भाषा शैली में हर जगह व्यंग्य का आस्वाद है। लेखक को कहीं नज़र न लग जाए किसी की, इसीलिए छत्तीसगढ़ में रहने के कारण कहीं-कहीं छत्तीसगढ़ी प्रभावित हिंदी, मानो, प्रो. रमेशचंद्र महरोत्रा के शब्दों में, डिठौने का काम कर रही है। 'स्टिंग ऑपरेशन' वस्तुतः अपने नामानुरूप एक सफल व्यंग्य उपन्यास है, जो कल्लू हलवाई के नालायक बेटे टिल्लू के मंत्री बनने एवं अपदस्थ होने की त्रासद कथा से सार्थक संदेश देता है कि एक रास्ता है, जो सच का है, यानी काँटों भरा है, लेकिन उसका अंत सुखद है और दूसरा रास्ता सुख-सुविधाओं से परिपूर्ण है, वह झूठ का है, लेकिन जिसका अंत बेहद दुखद है। माफिया जैसा जिस का अंत जेल है या गोली। अब यह तुम पर है कि कौन सा रास्ता चुनते हो।

'गिरीश पंकज' : व्यंग्यकार बनाम उपन्यासकार

रविन्द्र गिन्नौर

गिरीश पंकज एक व्यंग्यकार के रूप में भलीभांति पहचाने जाते हैं लेकिन एक उपन्यासकार के रूप में उनकी उतनी चर्चा नहीं होती, यह बेहद आश्चर्यजनक बात है। जबकि उनके सात उपन्यास भी हैं। अगर किसी लेखक के सात उपन्यास भी हैं, तो ये कम नहीं होते। लेकिन उनकी जितनी चर्चा होनी चाहिए, नहीं हुई फिर भी मैंने यह देखा है कि गिरीश पंकज बिना किसी परेशानी के अपना काम कर रहे हैं। उनके पन्द्रह सोलह व्यंग्य संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं। सात उपन्यासों में छह व्यंग्य प्रधान ही हैं। गिरीश का पहला व्यंग्य उपन्यास 'मिठलबरा की आत्मकथा' आज से अठारह साल पहले आया था। तब मैंने उसकी समीक्षा की थी जो 'इंडिया टुडे' में प्रकाशित भी हुई थी। उस उपन्यास के कारण गिरीश पंकज व्यंग्य उपन्यासकारों की कतार में शामिल हो गए थे। उस वक्त तक श्रीलाल शुक्ल और ज्ञान चतुर्वेदी जैसे व्यंग्यकारों के नाम व्यंग्य उपन्यासकारों के रूप में लिए जाते थे। 'मिठलबरा की आत्मकथा' कस्बाई पत्रकारिता के चाल, चरित्र और चेहरे को बेनकाब करने वाला उपन्यास था। इस उपन्यास को प्रेम जनमेजय, हरीश नवल और सुभाष चन्दर जैसे लोकप्रिय व्यंग्यकारों ने भी सराहा था और इसे व्यंग्य उपन्यास की श्रेणी में रखा था। इस उपन्यास का तेलुगु और ओड़िया में अनुवाद भी हुआ। इस उपन्यास को लेकर छत्तीसगढ़ के अनेक लोगों को यह भ्रम रहा कि उपन्यास एक सम्पादक विशेष का कच्चा चिट्ठा है। जबकि गिरीश पंकज ने अपनी भूमिका में साफ कर दिया था कि उपन्यास के सारे पात्र, घटनाएँ, संवाद, सब कुछ काल्पनिक हैं। 'मिठलबरा की आत्मकथा' किसी व्यक्ति नहीं, प्रवृत्ति की पड़ताल उर्फ़ पोस्टमार्टम है। नैतिकता, आदर्श और मिशन आदि की बात करने वाले सम्पादकों को सेठों पर निर्भर रहने वाली पत्रकारिता ने क्या से क्या बना दिया है, प्रस्तुत उपन्यास इन्हीं सब दुष्प्रवृत्तियों को व्यंग्यात्मक भाषा के सहारे उद्घाटित करती चलती है। गिरीश पंकज ने लेखकीय शुचिता का भी सवाल उठाते हुए साफ किया है कि साहित्य राग द्वेष से परे हो कर रचा जाता है। लेकिन सच्चा साहित्य भी वही है जिसमें सच कहने का साहस होता है। मुक्तिबोध के शब्दों में कहूँ तो अभिव्यक्ति के खतरे उठाने ही पड़ते हैं। वर्षों पहले जब मुक्तिबोध ने 'विपात्र' उपन्यास लिखा था, तब भी यह कहा गया था कि यह (उस वक्त के) एक बड़े नेता को केंद्र में रख कर लिखा गया है।

गिरीश के व्यंग्य या किसी भी सच्चे व्यंग्यकार की लेखनी सत्य की उद्घोषणा ही होती है। बेबाकी और ईमानदारी व्यंग्य का स्वभाव है, या कहें कि आभूषण है। भाषा की सार्थक व्यंजना सफल व्यंग्य का गुणधर्म है। कलात्मकता व्यंग्य का पैना हथियार है। जब तक रचना में गहरे कटाक्ष न हों, व्यंग्य की मार सफल नहीं हो सकती। इस लिहाज से देखे, तो गिरीश पंकज के लगभग सारे व्यंग्य पूर्णतः सफल हैं। इनके यहाँ विषय वैविध्य भी खूब है। यही कारण है कि गिरीश पंकज के समस्त उपन्यास नए विषय के साथ ही उपस्थित होते है। फिर चाहे वह 'माफिया' हो, 'पॉलीवुड की अप्सरा' हो, 'मीडिया नमः' हो, अथवा 'स्टिंग आपरेशन' यहाँ तक की बेहद चर्चित कृति 'एक गाय की आत्मकथा' का मूल चरित्र भी व्यंग्य का ही है। गिरीश इसे अपना व्यंग्य उपन्यास ही कहते हैं। इस उपन्यास में गाय को लेकर चल रहे हिन्दू पाखंड पर जबरदस्त प्रहार किया गया है। गिरीश ने 'टाउनहॉल में नक्सली' नामक उपन्यास भी लिखा है लेकिन वह नक्सल समस्या के सर्वोदयी समाधान की दिशा में किया गया एक गंभीर प्रयास है। इस उपन्यास को छोड़ दें, तो बाकी सभी उपन्यास विशुद्ध व्यंग्य से ही निष्णात हैं।

'माफिया' में गिरीश ने साहित्य की दुनिया में घुसे खतरनाक किस्म के बौद्धिकों पर प्रहार किया था। ये वे लोग हैं जो किसी को गिराने और किसी को उठाने की कला में सिद्धहस्त हैं। इनका चरित्र किसी पेशेवर माफिया की तरह ही है जो किसी को नष्ट करने की 'सुपारी' लेता है। इस उपन्यास में एक तरफ अभिजात्य वर्ग के लेखकों का एक

समूह है, तो दूसरी तरफ ईमानदारी के साथ लेखन कार्य में रत रहने वाले लेखक ज्ञानेंद्र और उसके साथी हैं। इस उपन्यास की बहुत अधिक चर्चा नहीं हुई लेकिन 'व्यंग्य यात्रा' जैसी गंभीर पत्रिका में उसकी विस्तार से चर्चा होने के कारण यह सुंदर और महत्वपूर्ण उपन्यास गुमनाम होने से बच गया। यह उपन्यास चौदह साल पहले प्रकाशित हुआ था लेकिन आज भी सामयिक है क्योंकि साहित्य में माफियागीरी अभी तक ज़िंदा है। नए व्यंग्यकारों अथवा साहित्य की दुनिया में आने वाले लेखकों के लिए यह उपन्यास बहुत कुछ सबक देता नज़र आता है। उपन्यास के फ्लैप पर रमेश चंद्र महरोत्रा ने ठीक ही लिखा है कि "जानते सब हैं, पर लिखते बहुत कम हैं कि राजनीति के समान साहित्य में भी दल ही दल हैं, तिकड़मबाज़ियाँ और सौदेबाज़ियाँ है, अवसरवाद और खिलाऊ पिलाऊवाद है, अफसरों और नेताओं के साहित्यिक हथकंडे हैं और सम्पादकों तथा सम्मानों के बिकाऊ झंडे हैं। गिरीश पंकज ने बिना 'लोक लाज' के भय के इन सबके कपड़े उतार दिए हैं। अब यह पाठकों पर निर्भर करता है की वे इस 'नंगेपन' पर 'कैसी नज़र' डालते हैं। कथानक का सामाजिक सरोकार साहित्य में हावी होते माफिया राज से जुड़कर शायद हर सही गलत साहित्यकार के रास्ते को किसी न किसी तरह प्रभावित कर रहा है। 'माफिया' में शोध माफिया, विज्ञापन माफिया, छंद विरोधी मानसिकता की पड़ताल की गई है। साहित्य की दुनिया में भाषा के खिलंदड़ेपन के सहारे कैसे निम्नकोटि के लेखक को भी शीर्ष पर बिठा दिया जाता है, इसे बखूबी दर्शाया गया है। कलेक्टरी कर रहे एक अभिजात्य लेखक पांडे की कविता का उदाहरण देखें, सुबह में सुबह की तरह सुबह लेकर/धूप निकल आई बिलकुल धूप की तरह/जैसे पेड़ अपने में पूरा पेड़ है/ पेड़ न होते हुए भी पेड़/जैसे नदी के भीतर नदी है/नदी के रूप में केवल नदी/और पहाड़ समुद्र, आकाश, चिड़िया सब कुछ। ज्ञानेंद्र जब कविता का अर्थ न समझ सका तो पन्ना पलट दिया। पांडे से ही पूछूँगा इस कलावादी कविता का अर्थ। ज़रूर कोई गहन चिंतन छिपा होगा इस गूढ़ता में इस कविता को पढ़ते हुए मुझे धर्मयुग में चार दशक पहले छपी एक अर्थहीन कविता याद आ गई कि 'मेरी धोती में आग लग गई/मेरी ज़िंदगी बर्बाद हो गई।' ऐसी अनेक कविताएँ और कवि बढ़ते जा रहे हैं। इनकी कविताओं की व्याख्या पाठक नहीं, आलोचक करता है। 'माफिया' में तथाकथित आलोचकों के खेल को विस्तार से बताया गया है।

गिरीश का एक और उपन्यास है, 'पॉलीवुड की अप्सरा' छत्तीसगढ़ सहित अनेक छोटे राज्यों में पनप रहे फिल्मोद्योग पर केंद्रित कृति है। यह भी एक तरह का अर्ध व्यंग्य

उपन्यास ही है। जिसके बारे में डॉ. चित्त रंजन ने कहा है कि 'पालीवुड की अप्सरा'—उत्तर आधुनिक मनुष्य के मोहभंग की तथा कथा है। जिसमें गिरीश पंकज विशु व्यंग्यकार सिद्ध होते हैं। (जहाँ हास्य को हाशिए पर भी जगह नहीं है) तात्पर्य यह है कि इस उपन्यास में व्यंग्यकार ने यथार्थ का पल्ला कहीं भी नहीं छोड़ा है, जिससे यह समझने में आसानी होती है कि व्यंग्य लेखन ही सच्चा लेखन हो सकता है। जिस प्रकार 'हॉलीवुड' के सदृश्य पर 'बॉलीवुड' रखा गया, उसी प्रकार 'बॉलीवुड' के सदृश्य पर 'पॉलीवुड' बना 'पॉलीवुड की अप्सरा' भी बॉलीवुड की समांतर भूमि में अपने रूप, रस गंध और स्पर्श के साथ प्रतिष्ठित है। उपन्यास गाँव की एक लड़की पार्वती के साथ आगे बढ़ता है जिसे अपना नाम पुरातन लगता है और वह पार्वती से पैरी हो जाना पसंद करती है और आगे बढ़ने के लिए हर तरह के समझौते के लिए तैयार रहती है। फ़िल्मी दुनिया मायालोक से कम नहीं है। इस मायालोक की अनेक विसंगतियों को गिरीश ने गहराई में जा कर उद्घाटित किया है। पूरा उपन्यास गाँव और शहर के चरित्र को भी दर्शाता है। शहर क्या है, इसे एक पात्र के माध्यम से गिरीश ने कुछ इस तरह पेश किया है, बहुत खतरनाक हो गए हैं शहर बड़े-बड़े सपने दिखाते हैं बस! इन सपनों को पूरा करने के लिए आदमी को तरह-तरह के उलटे-सीधे काम भी करने पड़ते हैं। और जब सपने पूरे नहीं होते, तो हताश हो कर आदमी या तो अपनी जान ले लेता है या फिर दूसरों की। पार्वती के साथ जो कुछ हुआ, वह हर टूटे-फूटे सपने की अंतिम परिणति हैं। पालीवुड की अप्सरा, उपन्यास में अनेक स्थलों पर व्यंग्यकार अपनी प्रतिभा दिखाता चलता है। पॉलीवुड में एक चालू किस्म का निर्माता है मालपानी। उसके चरित्र को गिरीश ने किस खूबसूरती से खींचा है : देखिए, मालपानी निर्माता नंबर वन और ठग नंबर वन के रूप में कुख्यात हो चुका था। वह जितना बदमाश था, उतना ही धार्मिक प्रवृत्ति का भी था। सुबह शाम मंदिर जाता और भगवान के सामने कान पकड़ कर उठक बैठक भी करता था। रह चलते लोग समझ नहीं पाते थे की इस सेठ ने ऐसी कौन सी गलती कर दी है कि बीच सड़क पर कण पकड़ने की नौबत आ गई है। ऐसी कौन-सी धार्मिकता है जो रोड शो करने पर मजबूर करती है। सबके सामने स्वीकार करते तो शायद पिटाई हो जाती। भगवान तो भोले भंडारी होते हैं। चुपचाप उनसे माफी माँग लो, दस बीस रूपये की मिठाई चढ़ा दो, और खरीद लो भगवान को।

'मीडिया नमः (2015) उपन्यास पत्रकारिता में आए नए-नए बदलावों पर केंद्रित है। 'मिठलबरा की आत्मकथा' में पत्रकारिता का युग हाईटेक नहीं था। तब कस्बे का पत्रकार किसी बड़े अखबार का समाचार का काटने के लिए पिन का इस्तेमाल करता था, लेकिन अब पत्रकार इंटरनेट के युग में है तो कोई मनपसंद खबर या लेख डाउनलोड कर लेता है। चरित्र वही है उठाईगीरी वाला, बस तरीका बदल गया है। पत्रकारिता भाषा भी अब काफी बदल गई है। हिंदी में अँगरेज़ी घुस गई है। बाज़ारवाद ने भी दस्तक दे दी है, तो विज्ञापन कबाड़ने के लिए के अखबारों में सुंदरियाँ भी रखी जाने लगी है। इन्हीं सब विसंगतियों को मीडियाय नमः में दर्शाया गया है। कल और आज की पत्रकारिता के अंतर को भी उपन्यास बताने की कोशिश करता है। उपन्यास के फ्लैप में ठीक ही लिखा है कि 'मीडिया की समकालीन दुनिया अनेक विद्रूपताओं से भरी पड़ी है। अखबारों से जुड़े कुछ चेहरे बेशक नायक जैसे नज़र आते हैं, मगर उनके पीछे एक खतरनाक खलनायक छिपा रहता है। अखबार के बदलाव को व्यंग्यात्मक शैली में गिरीश ने एक जगह कुछ इस तरह प्रस्तुत किया है, अफसरों और सेठों की मोटी-तगड़ी थुलथुल, बेडौल और कुछ स्लिम बीवियों की समाज सेवा के लिए 'देशवार्ता' और अन्य अख़बारों में एक नहीं, दो-दो पृष्ठ दिए जाने लगे। इन पृष्ठों पर तपती दुपहरी में पसीना बहाने वाले मजदूर नज़र नहीं आते थे। जूठन बीनते फटेहाल बच्चों के चित्र भी गायब हो चुके थे। संवेदनाएँ जब मर जाती हैं तब पसीने से बदबू महसूस होने लगती है। ब्रिटेन से शुरू हुई पेज थ्री संस्कृति देखते-ही-देखते गोलपुर की पत्रकारिता को भी ग्रसने लगी थी। दुर्भाग्य ही कहा जाए कि साहित्यिक आलोचना की नज़र 'मीडिया नमः' पर पडी ही नहीं। या जानबूझ कर इसे अनदेखा किया गया।

गिरीश पंकज का नया व्यंग्य उपन्यास 'स्टिंग आपरेशन' 2017 में प्रकाशित हुआ। यह सौ फीसदी व्यंग्य उपन्यास है लेकिन इस कृति की इक्का-दुक्का समीक्षा ही अब तक देखने में आई है। आजकल जब तक लेखक अपनी कृतियों की समीक्षा में रूचि न ले, अपने मन से कोई समीक्षक उस कृति को देखता ही नहीं। यह भी एक व्यंग्य है। स्टिंग आपरेशन भारतीय राजनीति के कुरूप चेहरे को सबके सामने रखने का साहसिक उपक्रम है। अब तक तो कहा जाता था कि राजनीति का अपराधीकरण हो रहा है। यह चिंता हकीकत में बदल गई। ग्रेसम के मुद्रा सिद्धांत में बुरी मुद्रा अच्छी मुद्रा को चलन से बाहर कर देती है। यह सिद्धांत भारत की राजनीति में सटीक बैठता है। अपराधी या भ्रष्टाचारी राजनीतिज्ञों के बोल-बाले के कारण अच्छे, सच्चे लोग राजनीति से बाहर हो गए हैं। देश के ऐसे अपराधियों का चरित्र उजागर भी हो रहा है। मीडिया का स्टिंग ऑपरेशन इन पर कहर बन कर टूट पड़ा है। देश की राजनीति पर गिरीश पंकज का उपन्यास 'स्टिंग ऑपरेशन' ऐसे ही ताने-बाने में बुना है। कल्लू हलवाई का लड़का टिल्लू पढ़ने में बिलकुल फिसड्डी था। परीक्षा में चाकू के दम पर नकल मारते पकड़ा गया। स्कूल के गुरुजी दीनदयाल ने मामला सलटा दिया। दीनदयाल मुफ्त में कल्लू हलवाई की होटल में खाता था। रिश्वतखोर थानेदार ने कहा बकौल लेखक 'ले जाओ, यही देश का भविष्य है। हें हें बुरा मत मानना भाई। बरसों पहले ऐसे ही एक चाकूबाज लौंडे को पकड़ा था। बाद में वो साला नेता बन गया। मंत्री भी बन गया। बहुत दिनों तक उसको सलाम करना पड़ा।

दीनदयाल गुरुजी मुफ्त में खाने के फेर में थे। टिल्लू के बाप कल्लू हलवाई को समझाया कि टिल्लू को नेता बनाओ। उसमें नेता के गुण पनपते देख रहा हूँ। कल्लू हलवाई को बात जम गई। हलवाई ने टिल्लू की बागडोर गुरुजी को थमा दी। टिल्लू कॉलेज की राजनीति से पार्षद बना। टिल्लू उर्फ तिल कुमार जनता का चहेता बन गया। राजनीति के प्रोफेसर शर्मा के पास राजनीति के बारे में टिल्लू ने पूछा तो शर्मा जी ने कहा बकौल लेखक अब जिस नेता के बारे में पूरे देश को पता होता है कि वह एक नंबर का हरामी है, भ्रष्ट है, व्यभिचारी है, लुटेरा है तो उसे ही हर बार भारी बहुमत से पब्लिक क्यों जिता देती है। एक-एक लाख वोटों से जीत जाते हैं गुंडे और सज्जन किस्म के नेता हार जाते हैं... सच्चा नेता वह है जो न तो नोट बांटता है न ही चंदा लेता है। वह केवल जनता के दुख दर्द बांटता है। उनके लिए ईमानदारी के साथ काम करता है।

छात्र राजनीति में टिल्लू को स्थापित करने दीनदयाल गुरुजी ने साप्ताहिक अखबार शुरू कर दिया। कल्लू हलवाई ने गुरुजी से पूछा बकौल लेखक अखबार में पैसे भी कमा सकते हैं? हम तो समझ रहे थे कि केवल नाम कमाते हैं। काहे नहीं कमा सकते पैसे? अरे दुनिया कमा रही है, तो हम ही काहे नहीं कमाएंगे? लोगों का विज्ञापन छापेंगे। लोगों की खबरें छापेंगे, जिसको अपना प्रचार करना है आए और पैसे दे कर अपना समाचार छपवाए। यही तो काम है अखबार का। पार्षद टिल्लू की सक्रियता देख कर राष्ट्रीय लोक पार्टी

ने उसे मंगलपुर विधान सभा क्षेत्र का प्रत्याशी घोषित किया। विधान सभा चुनाव में वरिष्ठ नेता पेकू भइया को टिल्लू ने हरा दिया। बकौल लेखक नए लौंडे टिल्लू ने उनका खेल बिगाड़ दिया। और राजनीति में यही होता है। एक लंपट का राज खत्म होता है तो दूसरे का शुरू हो जाता है। कुछ साल तक वह जमा रहता है। उसके बाद कोई तीसरा उभरता है। इस तरह लंपटई जारी रहती है। जनता बेहतर की तलाश में हर बार लंपटों का सामना करने पर विवश रहती है।

विधायक बनते ही तिल कुमार खेल मंत्री बन जाते हैं। उसके साथ कई दलाल जुड़ जाते हैं। कुछ सुंदर युवतियाँ उसकी चहेती बन जाती हैं। मंत्री तिल कुमार रूप यौवन के जाल में फंसते चले जाते हैं। दो औरतों के बीच वर्चस्व का द्वंद्व शुरू हुआ, तो चम्पा ने स्टिंग ऑपरेशन कर दांव खेला। एक युवती के साथ प्रेमालाप का वीडियो टीवी पर चला। स्टिंग ऑपरेशन के बाद टिल्लू के जीवन का कठिन दौर शुरू हो गया।

उसके ज्ञान के कपाट खुल गए थे। मंत्री पद से इस्तीफा देना पड़ा। उसे साथ देने वाले तो पहले ही भाग गए थे। तिल कुमार ने तांत्रिकों का सहारा लिया। पैसा पानी की तरह बहाया। मगर स्टिंग ऑपरेशन के बाद पार्टी ने उसे टिकिट ही नहीं दिया। विधान सभा चुनाव में तिल कुमार निर्दलीय खड़ा हुआ। उसे शरीफ कुमार ने भारी वोटों से पराजित कर दिया।

गिरीश का ताजातरीन उपन्यास आज की राजनीति और मीडिया के पतन को उजागर करता है। 'स्टिंग ऑपरेशन' उन तमाम पहलुओं को ज्यों-का-त्यों रखता है। लेखक ने इसे रोचक और सरस बनाए रखने के लिए व्यंग्य की शैली अपनाई है, जिसे और पैना बनाने के लिए हिंदी, छत्तीसगढ़ी के मुहावरों का अच्छा उपयोग किया है। आज की राजनीति में जो कुछ घट रहा है, लेखक ने उसका बखूबी चित्रण किया है। स्टिंग ऑपरेशन एक उपन्यास के साथ आम जनता को जागरूक करने वाला भी है जो जानते हुए भी उन्हें अपना भाग्य विधाता बनाती है। जो देश, समाज के लिए, नहीं बल्कि अपने स्वार्थ के लिए राजनीति करते हैं।

गिरीश पंकज के हर उपन्यास की भाषा बेहद सरल है। अनेक उपन्यासों में वे छत्तीसगढ़ी मुहावरों का भी सटीक इस्तेमाल करते हैं। जहाँ कठिन मुहावरे लगे तो उनका अनुवाद भी लेखक ने दिया है। कथोपकथन की शैली सहजता लिये हुए व्यंग्य का पुट लिए हुए है। इसीलिए उनके उपन्यास काफी रोचक बन पड़े है, जिसके पठन के बाद चिंतन-मनन के लिए पाठक बाध्य हो जाता है।

दुःख तब होता है जब साहित्य की आलोचना अच्छी कृतियों को जानबूझ कर उपेक्षित करने का अपराध करती है इसीलिए गिरीश को 'माफिया' जैसा उपन्यास लिखना पड़ता है। अंत में गिरीश पंकज की एक बड़ी कमी पर भी बात खुल कर करूंगा, वो यह है कि वे समय के साथ नहीं चलते। इस वक्त हिंदी में एक चर्चित व्यंग्यकार है नाम लिए बगैर लोग समझ ही जाएँगे।

उनसे गिरीश को कुछ ज्ञान लेना चाहिए और अपने उपन्यासों में गालियों का खुल कर इस्तेमाल करने में बिलकुल ही संकोच नहीं करना चाहिए। आजकल की मानसिकता यही है कि गंदी-गंदी गालियों के कारण भी उपन्यास चर्चित हो जाता है। केवल कथानक के सहारे उपन्यास सफल नहीं होता, उसमें गालियों का तड़का भी अब जरूरी है।

गिरीश पंकज अपने आगामी उपन्यासों में गालियों की भरमार कर दें, तो आलोचक उसे हाथोंहाथ उठा लेंगे। बहरहाल, मेरा सौभाग्य है कि गिरीश पंकज के सभी उपन्यासों को पढ़ने का अवसर मिला और अब कुछ विस्तार से लिखने का भी। 'व्यंग्य यात्रा' के सम्पादक प्रेम जनमेजय जी की उदारता का नतीजा है कि यह लेख तैयार हो सका, जिसमे मैंने व्यंग्यकार गिरीश पंकज के उपन्यासकार वाले रूप को संक्षिप्त में ही सही, प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

कलम हुए हाथ

संजय द्विवेदी

गिरीश पंकज ने जब 1997 में एक बड़े दैनिक अखबार की नौकरी से अलविदा कह कर अकेले चलने का फैसला किया तो उनके चाहने वालों ने भी इसे बेवकूफी ही माना। लेकिन आज हमें अगर उनका फैसला जायज लग रहा है तो इसके पीछे उनका संघर्ष ही है। गिरीश पंकज जी ने साबित किया है कि दैनिक पत्रकारिता से हट कर भी कोई पत्रकार अपनी अर्थवत्ता बचाए रख सकता है। कोई नौकरी न करते हुए सिर्फ मसीजीवी हो कर जीना हिंदी में कितना कठिन है, इसे सब जानते हैं। पंकज जी ने इसे संभव कर दिखाया। वे हमारे बीच छत्तीसगढ़ के इकलौते पूर्णकालिक लेखक हैं। दैनिक पत्रकारिता से अलग हो कर जैसे गिरीश पंकज के लिए सारा जहाँ एक घर हो गया है। देश देशांतर को नापते

हुए पंकज, तेजी से किताबें लिखते हुए पंकज, छत्तीसगढ़ राज्य और देश की तमाम प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में लिखते हुए पंकज, मंचों पर अपनी भुवनमोहिनी मुस्कान बिखेरते हुए पंकज, ऐसी न जाने कितनी छवियाँ आज उनके नाम से चिपकी हुई हैं। पंकज के हाथ कलम हो गए हैं, जिसे उन्होंने लिखने की मशीन में बदल दिया है। समय का जितना सार्थक और रचनात्मक उपयोग वे कर रहे हैं उसके चलते उनसे सिर्फ ईर्ष्या की जा सकती है। पर पंकज गजब हैं। वे टाटा के ट्रक में बदल गए हैं, जिनके पीछे लिखा हुआ है 'जलो मत, मुकाबला करो'।

पंकजजी ने जो सबसे महत्वपूर्ण काम किया है वह 'सद्भावना दर्पण' का प्रकाशन। इससे उनकी न सिर्फ देशव्यापी पहचान बनी वरन लगातार प्रकाशित हो रही यह पत्रिका अब बीस वर्ष पूरे करने की ओर अग्रसर है। पत्रिका ने देश-विदेश के तमाम महत्वपूर्ण साहित्य को अनूदित कर हिंदी में उपलब्ध कराने का काम किया है। सद्भावना की इस यात्रा ने गिरीश पंकज को एक ऐसे संपादक के रूप में बदल दिया जिसने एक नए परिवेश के साथ हिंदी जगत को वह सामग्री उपलब्ध कराई जो दुर्लभ थी। सद्भावना के कई विशेषांक पंकज की इस खूबी को रेखांकित करते हैं। पंकज मानते हैं कि वे गांधी से बहुत प्रभावित हैं। पर उनका पूरा लेखन उन्हें कबीर के आसपास खड़ा करता है। जिससे पंकज लोगों पर ऊंगली उठाते नजर आते हैं। मूलतः व्यंग्यकार होने के नाते यह उनकी मजबूरी भी है। यही पंकज की सीमा भी है, यही उनका सामर्थ्य भी। अपने दो व्यंग्य उपन्यासों 'मिठलबरा' और 'माफिया' के चलते वे चर्चा और विवादों के केंद्र में भी आए। उनके पात्र पत्रकारिता और साहित्य के संदर्भों से ही उठाए गए हैं। जाहिर है कि पंकज को तारीफ के साथ ताने भी मिले। इसकी परवाह पंकज जी को नहीं रही। 'पॉलीवुड की अप्सरा' नामक एक महत्वपूर्ण उपन्यास भी लिखा, जिसमें छत्तीसगढ़ जैसे क्षेत्रीय अंचलों में सिनेमा के नाम पर

क्या कुछ चल रहा है, इसकी झलक मिलती है। वहीं जब वे पत्रकारी टिप्पणियाँ लिख रहे होते हैं तो उनका व्यंग्यकार उनके अखबारी लेखन को समृद्ध करता है। दो नावों की यह सवारी पंकज को कभी भारी नहीं पड़ी। इसका उन्हें फायदा ही मिला। एक पत्रकार होने के नाते जहाँ वे तत्कालीन संदर्भों में रचना की तलाश कर लेते हैं, वहीं अपनी रचना में पत्रकारीय गुणधर्म के नाते आम आदमी से संवाद बना लेते हैं। इन अर्थों में पंकज का कवरेज एरिया बहुत ज्यादा है। उनके नये व्यंग्य उपन्यास 'मीडिया नमः' और 'स्टिंग ऑपरेशन' में भी उनकी प्रतिभा का विस्तार देखा जा सकता है।

अपने व्यक्तिगत जीवन में पंकज जितने सहज, आत्मीय, सहृदय और भोले दिखते हैं, लेखन में वे इसके उलट आचरण करते हैं। वहीं वे अन्याय, विसंगतियों के खिलाफ जूझते नजार आते हैं। वे नंगे सच को कहने में यकीन रखते हैं। प्रिय सत्य बोलना उन्हें नहीं आता। शायद इसीलिए उन्हें कबीर की परंपरा से जोड़ना ज्यादा उचित है। कबीर का सच कड़वा ही होता है। उसे सुनने के लिए कलेजा चाहिए। पंकज को दया का पात्र दिखना पसंद नहीं है। शायद इसीलिए वे ज्यादातर मित्रों की ईर्ष्या के पात्र हैं। पंकज के लिए रिश्ते ही सब कुछ हैं। दोस्ती के नाम पर खुशी-खुशी बेवकूफ बनना उन्हें गंवारा है। वे रिश्तों में ऐसे रच बस जाते हैं कि कुछ सूझता ही नहीं। वे कभी-कभी बुरा लिख बोल तो सकते हैं लेकिन बुरा कर नहीं सकते। उन्हें जानने वाले यह बात अच्छी तरह से जानते हैं कि पंकज का इस्तेमाल कितना आसान है। पंकज इसके लिए तत्पर भी रहते हैं। दोस्ती में फना हो जाना पंकज की आदत जो है।

पंकज जी ने लिखा और खूब लिखा है। खासकर बच्चों के लिए उन्होंने जो साहित्य रचा है, वह अद्‌भुत है। बंगला में हर बड़ा लेखक बच्चों के लिए जरूर लिखता है पर हिंदी में यह परंपरा नहीं है। यहाँ बाल साहित्य लिखन दोयम दर्जे का काम है। पंकज ने इस दिशा में महत्वपूर्ण काम किया है और एक अभाव की पूर्ति की है। उनका बाल सुलभ स्वभाव उनकी अभिव्यक्ति को अधिक प्रवाहमान बनाता है। उनकी बाल कविताएँ एक ऐसे भविष्य का निर्माण करने की प्रेरणा भूमि बनती है, जिसे हम सब देखना चाहते हैं। इसी तरह एक समर्थ व्यंग्यकार होने के नाते वे सामयिक संदर्भों पर टिप्पणी करने से भी नहीं चूकते। उनके तमाम व्यंग्य संग्रह एक समर्थ रचनाकार होने की गवाही देते हैं। पंकज ने मंचों पर भी कविताएँ पढ़ी हैं। उनकी कविताओं में ओज भी है और लालित्य भी। लगातार विदेश यात्राओं ने उनके अनुभव संसार को अधिक समृद्ध किया है और उनकी दृष्टि भी व्यापक हुई है। राजनैतिक संदर्भों पर उनकी टिप्पणियाँ समय-समय पर अखबारों में आती रहती है, जिसमें एक सजग नागरिक की चिंताएँ दिखती हैं। अपनी अखबारी टिप्पणियों पंकज एक गांभीर्य लिए हुए एक निश्चित संदेश देते हैं। सलवा जुडूम जैसे आंदोलनों पर उन्होंने शायद सबसे पहले सकारात्मक टिप्पणी की। समय के साथ संवाद की यह क्षमता उन्हें अपने समय का एक महत्वपूर्ण पत्रकार बनाती है। साहित्य के क्षेत्र में जा कर आम जनता के सवालों पर जिस संवेदनशीलता के साथ वे बातचीत करते हैं, वह उन्हें अलग दर्जा दिलाता है। मंचों पर उनकी टिप्पणियाँ आम लोगों का भी दिल जीत लेती हैं, क्योंकि वे सिर्फ और सिर्फ सच बोलना जानते हैं। बड़े-से-बड़ा आदमी अनुचित टिप्पणी कर बच नहीं सकता। बशर्ते पंकज को उसके बाद बोलना हो। वे बड़े हो कर भी इतने सामान्य हैं कि उनकी साधारणता भी असाधारण बन गई है। भरोसा नहीं होता कि इतनी सहजता, सरलता और मृदुता से रसपगा यह व्यक्तित्व कभी-कभी अनुचित होता देख इतना उग्र क्यों हो जाता है। सच तो यह है कि पंकज सच की साधना करते हैं। सच और लोकाचार में उन्हें किसी एक पक्ष का लेना हो तो वे सत्य का पक्ष में खड़े होंगे। यह बात दावे से इसलिए कही जा सकती है क्योंकि पंकज किसी का लिखा झूठ भी बर्दाश्त नहीं कर सकते। पत्रकारिता पर केंद्रित उनके अनेक लेखों की एक पुस्तक भी पिछले दिनों प्रकाशित हुई है, वह पुस्तक पत्रकारिता के विद्यार्थियों के लिए भी काफी उपयोगी साबित होगी, ऐसा विश्वास है। आप निरंतर सक्रिय रहें, यही शुभकामना है।

निर्मल लेखन-स्वच्छ व्यक्तित्व

अख्तर अली

गिरीश पंकज से मिलना और गिरीश पंकज को पढ़ना ये दो अलग-अलग बात नहीं हैं। जैसा निर्मल इनका लेखन है उतना ही स्वच्छ इनका व्यक्तित्व है। जिस स्वरूप का, जिस संबंध का, जिस तेवर का, जिस शैली का, जिस कौशल का, जिस विचारात्मकता का लेखन गिरीश पंकज कर रहे हैं, उसे पढ़ना शौक की सीमा से निकल कर आवश्यक आवश्यकता की हद में शुमार हो गया है।

गिरीश पंकज को पढ़ना स्वयं को अपडेट करना है। गिरीश निरंतर लिखने वाले लेखक है, इनके पास व्यापकता और विविधता की असीमितता है। मंटो, राही मासूम रज़ा, परसाई की तरह गिरीश भी सिर्फ इसलिए नहीं लिखते क्योकि वे लेखक है बल्कि इसलिए लिखते हैं कि इस तरह का लेखन समाज के प्रति उनकी नैतिक ज़िम्मेदारी है। गिरीश जी पत्रकार हैं, व्यंग्यकार हैं, गीतकार हैं, उपन्यासकार हैं, समीक्षक हैं, आलोचक हैं, कवि हैं, सम्पादक हैं। इनका लेखन क्षेत्र विविध है, विस्तृत है, किसी एक विधा का रचनाकार कहना इन्हें कम कर के आंकना होगा।

यह समय गिरीश पंकज के मूल्यांकन करने का सही समय है। साठ वर्ष की उम्र तक पहुँचते-पहुँचते प्रकाशित
पुस्तकों की संख्या साथ के आसपास होना और इसके अतिरिक्त फुटकर लेखन की संख्या तीन अंकों में होना और समूचा लेखन सुधारवादी होना, जनवादी होना, समाज, धर्म, राजनीति, प्रशासन और बाजार मे फैल चुकी गंदगी को साफ़ करना, खराबियों की खबर लेना, आम आदमी के पक्ष में खड़े हो जाने वाला लेखन है।

मौजूदा हालात की पड़ताल करता लेखन केवल अवरोध पैदा करने वाला लेखन नहीं है वरन नई राह तलाशने वाला लेखन है।

गिरीश पंकज का लिखा बाजार में बिकता ज़रूर है लेकिन ये बिक कर नहीं लिखते, लिखना इनका मिशन है उघोग नहीं।

गिरीश जी के लेखन में क्रोध भी कलात्मकता के साथ है। नाराज़गी भी लय में है, चीख भी सुर मे है, विरोध में भी पूरी शालीनता समाहित है, लेखन में तन्मयता है। इनके व्यंग्य में विस्फोट है लेकिन अनुशासित शब्दावली के साथ, विचारों की अभिव्यक्ति प्रभावशाली रूप में है लेकिन संयम के साथ गिरीश पंकज के लेखन में मौकापरस्त और फिरकापरस्त

लोगों को ललकार है तो अच्छे लोगां का सत्कार और पारखी लोगों के लिये चमत्कार भी है। अद्‌भुत कलम है इनकी जिससे नाराज़गी भी मुस्कान के साथ ज़ाहिर होती है। इस बात की खोज की जानी चाहिये कि गिरीश लिखने के पहले कलम को किस चाशनी में डुबोते हैं।

गिरीश पंकज का समूचा लेखन विकृतियों के खिलाफ आम आदमी के पक्ष में लिखा गया दस्तावेज है।

लेखकीय ईमानदारी, घटनाओं पर तीखी दृष्टि

द्वारिकाप्रसाद अग्रवाल

व्यंग्यकार शरद जोशी लिखते हैं हिन्दी में व्यंग्य लिखना खुद अपना दर्जा गिराना है। पिछले लंबे समय से यह घटिया विद्या मानी जाती रही है। मियां-बीबी की चक-चक या अजी जनाब सम्बोधन के साथ भोंडा साहित्य व्यंग्य नहीं है, न हास्य है, बल्कि हास्यास्पद है। व्यंग्य का एक उद्देश्य होता है, उसका एक सामाजिक पक्ष होता है। मुक्तिबोध ने शरद जोशी से कहा था लिखिए, समाज की ऐसी प्रवृत्तियों पर प्रहार कीजिए, एक ही विष वृक्ष के डाल के पत्ते हैं सब। शरद जोशी का कहना है उस विष को अलग कर देने की उनकी तीव्र इच्छा और क्रोध को मैं अपनी कलम में उतारना चाहता हूँ। मुझे अपनी रचनाएँ इसी कारण नापसंद हैं क्योंकि वे व्यंग्य होकर भी पूरी तरह से वह काम नहीं करती जो उनसे अपेक्षित हैं। मैं ईमानदार रहना चाहता हूँ, मैं यश खोकर, सुविधाएँ खोकर भी ईमानदार रहना चाहता हूँ।

गिरीश जी ने 'मीडियाय नमः' पुरोवाक् में लिखा है– ईमानदारी से कहूँ तो कई बार सोचता हूँ कि व्यंग्य लिखना ही बंद कर दूँ। सुविधा सम्मान पाने के लिए चुटकुले लिखना शुरू कर दूँ। लोगों को गुदगुदाने या फिर भरमाने वाला लेखन करूँ। फिर मुझे कबीर याद आते हैं। परसाई और शरद जोशी का चेहरा सामने आ जाता है। इन लोगों ने भी अपना घर जलाकर, अपनी टांगें तुड़वाकर और बहिष्कृत सा जीवन जीते हुए हमेशा सत्य ही कहा। मुझे भी इनके पीछे चलना है।

गिरीश पंकज की यही सोच उन्हें एक साहसी और सत्यार्थी लेखक बनने की ऊर्जा देती है, उनकी कलम को उबलते लौह और स्याही को गर्म लहू में बदल देती है।

गिरीश उपाध्याय के उपन्यास मीडियाय नमः के शिल्प को व्यंग्य विधा का नाम दिया जा सकता है लेकिन यह केवल व्यंग्य लेखन नहीं, यह देश की पत्रकारिता के पतन की दारुण व्यथा-कथा है। ऐसी कथा जिसे पढ़कर पाठक को गुदगुदी नहीं होती, वितृष्णा होती है, क्रोध आता है। लोकतन्त्र का चौथा खंभा अब लोकतन्त्र का चौथा डंडा बनकर अपना साम्राज्य स्थापित कर अट्टहास कर रहा है। जनता के धन की इस बेशर्म लूट खसोट में राजनेता भी बढ़-चढ़ कर शामिल हैं। और दोनों एक-दूसरे के हाथों में हाथ डाले नृत्यमग्न हैं और इशारों-इशारों में जनता को बेखौफ ठेंगा दिखा रहे हैं।

एक समय था जब पत्रकारिता किसी माँ की तरह ऐसे सुकोमल बच्चों को जन्म देती थी जो बड़े होकर मनुष्यता के लिए अपना जीवन उत्सर्ग करते थे, अब पत्रकारिता उस खूसट माँ की तरह हो गई है जो अपने बच्चों के सिर पर हाथ फेरकर उन्हें भीड़ में घुस कर दूसरों की जेब काटने के लिए तैयार करती है। जेब काटने वाला पकड़ा गया तो सरेबाज़ार अकेले पिटा और अगर न पकड़ा गया तो उसका माल सीधे मालिक की जेब में पहुँच जाता है।

प्रिंट मीडिया हो या वीडियो मीडिया, जनता उनकी हरकतों को बखूबी समझती जानती है। जनता से बड़ा और विद्वान न्यायाधीश और कौन हो सकता है लेकिन वह कसमसाती हुई सब कुछ पढ़ती-देखती हुई अगली सुबह को इस उम्मीद से निहारती है कि शायद अब कोई शुभ-समाचार मिले। सामान्यजन की दशा उस अभिभावक की तरह हो गई है जिसका बच्चा गलत संगत में पड़कर बिगड़ रहा हो और कहना न मानकर गलतियों के दलदल में धंसते जा रहा हो।

गिरीश पंकज ने मीडियाय नमः में पत्रकारिता की लंका के खल रहस्यों को विभीषण की तरह उद्घाटित किया है। पत्रकारिता में आधा जीवन बिताने के बाद, खुलकर बयान देने का उनका सामर्थ्य इस उपन्यास में उभरकर आया है। मज़ेदार बात यह है कि कथा का हर पात्र हमारा देखा सुना और जाना-पहचाना सा लगता है। गिरीश बताते हैं बेईमानी, ठगी, धोखाधड़ी, चार सौ बीसी, लूटपाट, चोरी चकारी आदि आदि भी एक तरह की मेहनत होती है।

लूट के इस सर्वव्यापी माहौल में एक जुमला भी उन्होंने छोड़ा है लूटो खसोटो, यही जीवन की सच्चाई है।

मीडिया वाले सबको आईना दिखाते हैं, कोई उनको भी तो दिखाए गिरीश पंकज यह लिखते हुए एक ऐसे वृहदाकार दर्पण की भूमिका में अवतरित होते हैं। जो मीना बाजार में लगे मिरर की तरह विविध रूप भी दिखाते हैं जिन्हें देखकर देखने वाला भी भयभीत हो जाए। पत्रकार और उसके मालिक के सह-संबंधों को उजागर करने वाली इस दास्तान में तल्खी ही तल्खी है। पुस्तक का यह अंश कड़ुवाहट की इंतेहा है जैसे कूकुरों की प्रजाति होती है उसी तरह कुछ पत्रकारों की भी होती है। कोई बंगले में बंधकर भौंकता है तो कोई बेचारा गली-कूचों में काँय-काँय करते हुए मारा-मारा फिरता है।

धन्ना सेठों की जंजीरों में बंधी पत्रकारिता की विवशता पूरे उपन्यास में पसरी हुई है जिसे पढ़कर पाठक का दिल बैठ जाता है, चौकीदार चोर नज़र आता है और चौथा खंभा लोकतन्त्र का हत्यारा दिखता है।

कपटेन्द्र देव उर्फ केडी इस कथा के हृदय में समाया हुआ है जो अपनी चतुराई और सूझबूझ से फर्श से अर्श तक पहुँच जाता है और अपने साथ उन लोगों की भी जीवनी उद्घाटित करता है जो उसके जैसे घटिया स्तर पर नहीं उतर पाए। कुकर्मी केडी का धर्म केवल पैसा है, बहुत सारा पैसा जिसके लिए वह कुछ भी करने के लिए तैयार है। ऐसे लोगों के दोमुंहे चरित्र को लेखक ने इन शब्दों में उजागर किया है घर में अपनी कार और कुत्तों को इफ़रात पानी से नहलाऊँगा और अपने अखबार में सेव द वाटर सेव द वाटर चिल्लाऊँगा। अरे भाई, जर्नलिज़्म के चेंज को समझने की कोशिश करो।

एक और बानगी देखिए (कथा का केंद्रीय पात्र) केडी मसीहाई अंदाज में ऐसे संपादकीय लिखता था मानो गांधीजी या गणेशशंकर विद्यार्थी की आत्मा सीधे उसके भीतर ही उतर आई है।

अयोग्य और अक्षम मीडिया मालिकों को अब लज्जा शब्द के अर्थ नहीं मालूम। वे निर्लज्ज होकर अपनी दुकानदारी चला रहे हैं और अपनी कमियों को छुपाने के लिए सड़क

में बेरोजगार की तरह भटक रहे दिमागों को नौकरी में रखकर उनका बौद्धिक और आर्थिक शोषण कर रहे हैं। पूरा बाजार चोरी के माल से पटा पड़ा है और ग्राहक उसे खरीदकर मुग्ध-मगन है। ग्राहक को गाहे-बगाहे गिफ्ट मिलते हैं, इनामी कूपन मिलते हैं, टी-शर्ट पहना दी जाती है, संभव है कि कभी चड्डी बनियान और अंडर गारमेंट्स भी बांटे जाएँ। वह फोकट का माल पाकर प्रसन्न है, कृत कृत्य है, और उसी प्रपंची अखबार का लिखा पढ़ने के लिए अभिशप्त है जो केवल पेड और निगेटिव न्यूज छापता है। लेखक ने अखबारों के छल को खुलकर उद्घाटित है जो निस्सन्देह पढ़ने लायक है, वीभत्स है, भयावह है और साथ ही साथ रोचक भी है।

आप मानिए, (मीडियाय नमः) शीर्षक वाली यह पुस्तक गिरीश पंकज के द्वारा रचित तहलका डॉट.कॉम जैसी सनसनीखेज है जिसे पढ़ते हुए आप रहस्य की उस दुनिया में पहुँच जाएँगे जिसके बारे में आप बहुत कुछ जानते हैं लेकिन सब कुछ नहीं जानते।

इस विभीषण ने अपने ग्रंथ में रावण की लंका के वे काले कारनामे बताएँ है जो आपके दिल को बहुत सुकून देंगे, इसलिए किए कोई साहसी उस दुर्गम किले के अंदर कई वर्षों तक रहकर आया और उसने इस कथा में अपने अनुभवों को हम तक पहुँचाने के लिए इतने पैने और चुभने वाले शब्द गढ़े।

यदि किसी समीक्षा में पुस्तक और उसके लेखक की प्रशंसा ही प्रशंसा हो तो ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि समीक्षक या तो लेखक से प्रभावित है या पोषित। अतः मैं ऐसे भ्रम को दूर करने के लिए 'मीडियाय नमः' की कुछ खामियाँ आपको बताता हूँ।

पुस्तक का आरंभ बेहद रोचक और ज्ञानवर्धक है लेकिन उत्तरार्द्ध की कथा में काल्पनिकता का प्रभाव स्पष्ट समझ में आता है। खोज और वास्तविकता के धरातल पर लिखी कथा अपना अलग प्रभाव छोड़ती है, जैसे श्रीलाल शुक्ल की पुस्तक राग दरबारी या डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी की हम न मरब। यह निर्विवाद सत्य है कि प्रत्येक कथा में कल्पना की छौंक लगती है लेकिन उसका प्रस्तुतीकरण इस दक्षता से किया जाता है कि पाठक को उसका पता ही नहीं चलता। यही तो लेखन की गुणवत्ता का कमाल है।

कथानक के स्त्री पात्रों को जिस रूप में प्रस्तुत किया गया है वह स्त्रियों के सम्मान और पत्रकारिता के क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं की प्रतिष्ठा के अनुकूल नहीं है। कहानी में किसी एक स्त्री पात्र से अखबार के मालिक या उसके संपादक को उनकी बदतमीजी पर पिटवा देते तो बदतमीजी करने वालों और बदतमीजी सहने वालों को एक अच्छा संदेश जाता।

यह चिंताजनक है कि इस उपन्यास का कथानक पाठक को पत्रकार बनने के लिए हतोत्साहित करता है और उन्हें अखबार का मालिक बनने के लिए प्रेरित करता है। तीन चौथाई पुस्तक उन हथकंडों के विवरण से परिपूर्ण है जो पाठक के हृदय में अखबार या चैनल के मालिक बनने की अभिलाषा जाग्रत करने वाले हैं क्योंकि उन उपायों से धन और विपरीतलिंगी तन के आकस्मिक आगमन का घटनाक्रम बेहद आकर्षक है।

यदि इस क्षेत्र के नवागंतुक धन और तन के ऐसे लालच में फंस गए तो भारत के मीडिया रूपी खेत में परिश्रम, पवित्रता और जीवन मूल्यों की रक्षा के लिए रोपे गए पौधे असमय मुरझा जाएँगे और सर्वत्र बेशरम के पौधों की फसल लहलहाने लगेगी।

अंत में, गिरीश पंकज की यह अनमोल कृति उनके पत्रकार जीवन के अवलोकन पर उनकी पीड़ा को व्यक्त करने वाली व्यंग्य यात्रा है जिसमें पाठक भी उनके साथ चलता है। उनकी नाराजगी और बेचैनी को उसी शिद्दत से महसूस करता है।

लेखकीय ईमानदारी, घटनाओं पर तीखी दृष्टि, वाक्य विन्यास, संवाद और उनका शब्द चयन लाजवाब है। गिरीश पंकज नई पीढ़ी के व्यंग्यकारों में अत्यंत प्रभावशाली लेखक के रूप में जाने जाते हैं, 'मीडियाय नमः' उनकी लेखन यात्रा का महत्वपूर्ण पड़ाव है। पंकज जी की यह यात्रा अनवरत चलती रहे।

वर्तमान राजनीति के चेहरे को बेनकाब करता व्यंग्य उपन्यास : 'स्टिंग ऑपरेशन'

रमेश तिवारी रिपु

हिंदी साहित्य में व्यंग्य एक केंद्रीय तत्व के रूप में स्थान बनाता जा रहा है। हरिशंकर परसाई और शरद जोशी जैसे कालजयी व्यंग्यकारों ने अपनी धार से व्यंग्य को एक मुकाम तक पहुँचाया। उनके जाने के बाद वही धार एक परम्परा के

रूप में जारी है। आज भी अनेक व्यंग्यकार सक्रिय हैं और विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लिख रहे हैं। इधर साहित्य में व्यंग्य उपन्यासों का चलन भी बढ़ा है। श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास राग दरबारी के बाद से व्यंग्य उपन्यास के क्षेत्र में कुछ तेजी आई। नरेंद्र कोहली, ज्ञान चतुर्वेदी, यशवंत कोठारी, सुरेशकांत, अरविन्द तिवारी और गिरीश पंकज आदि व्यंग्यकारों ने इस दिशा में उल्लेखनीय काम किये है। शरद जोशी का एक व्यंग्य उपन्यास में, मैं और सिर्फ मैं काफी चर्चित रहा। अभी हाल ही में गिरीश पंकज का चौथा व्यंग्य उपन्यास 'स्टिंग ऑपरेशन' प्रकाशित हुआ है। इसके पहले भी मिठलबरा की आत्मकथा 'मीडियाय नमः' पालीवुड की अप्सरा और माफिया जैसे व्यंग्य उपन्यास लिखकर गिरीश पंकज ने व्यंग्य उपन्यासों की कड़ी को आगे बढ़ाया है। 'स्टिंग ऑपरेशन' में राजनीति में घुसपैठ जमाने वाले शातिर चरित्रों की रोचक पड़ताल की गई है।

सज्जनगढ़ राज्य के कसबे मंगलपुर में कल्लू पहलवान के नालायक और गुंडे किस्म के लड़के टिल्लू उर्फ़ तिलकुमार को दीनदयाल गुरु जी नेता बना देते हैं। उसे छात्रसंघ का चुनाव लड़वाते हैं। अपने अखबार मंगलपुर टाइम्स में टिल्लू की महानता का नित्य प्रचार करके उसे इतना लोकप्रिय बना देते हैं कि एक राजनीतिक दल उसे अपना प्रत्याशी बना देता है। टिल्लू अपने इलाके के पुराने नेता फेंकू भैया को पराजित कर देता है। बाद में वह मंत्री भी बन जाता है। मंत्री बन कर वह अपनी प्रेयसी चम्पा को लेकर राजधानी पहुँचता है मगर वहाँ सुगन्धा नामक दलालकिस्म की युवती के चक्कर में पड़ कर वह चम्पा की उपेक्षा करने लगता है। चम्पा इसे बर्दाश्त नहीं करती। तब एक मीडियाकर्मी की मदद से वह तिलकुमार का स्टिंग ऑपरेशन कराती है। तिलकुमार के बैडरूम सीन टीवी चैनलों में आने लगते हैं, तब मुख्यमंत्री कमलकुमार को टिल्लू से इस्तीफा माँगना पड़ता है। इस्तीफ़ा देकर टिल्लू मंगलपुर पहुँच जाता है। बाद में उसकी जगह शरीफकुमार को चुनावी टिकट मिलता है। और वह चुनाव जीत जाता है। तब टिल्लू सोचता है एक दिन मैं भी शरीफ् कुमार का स्टिंग ऑपरेशन कराऊँगा और फिर टिकट हासिल करूँगा।

शुरू से लेकर अंत तक व्यंग्यात्मक भाषा में लिखा गया यह उपन्यास भारतीय राजनीति के अपराधीकरण को बताने में सक्षम है। राजनीति में अब सज्जन लोग हाशिये पर हैं। टिल्लू जब एक पुराने सज्जन नेता मालवीय जी से राजनीतिक

गुर सीखने पहुँचता है तो वे व्यंग्य में कहते हैं जब हम लोग राजनीति कर रहे थे, तब नैतिकता जरूरी थी लेकिन अब तो अनैतिकता जरूरी है। केवल झूठ का सिक्का चलता है। त्याग की जगह वासना की कैबरे डांसर इठला रही है। आज की राजनीति को समझना है तो एक वाक्य में कहा जा सकता है, मुँह में राम और दिल में गोंडसे जो जितना बड़ा ढोंगी, उतना बड़ा नेता है।

आज की राजनीति में स्त्रियों की स्थिति का भी लेखक ने व्यंग्यात्मक चित्रण किया है। उपन्यास की एक पात्र इमरती कहती है, जिन मैनाओं को राजनीति का पिंजरा रास आ जाता है, वे अक्सर शरीफ नहीं रह पातीं। दाँतों के बीच जैसे जीभ रहती है, ठीक उसी तरह नेताओं के बीच शरीफ औरतों को रहना पड़ता है।

यह सम्वाद भी खूब है कि आजकल राजनीति ही टॉप में चल रही है। हर धंधे में उतार-चढ़ाव आते हैं लेकिन राजनीति का सोना कभी भी नीचे नहीं आता कोई बड़ी बात नहीं कि भविष्य में इन्डियन पॉलिटिकल यूनिवर्सिटी ही खुल जाए।

आजकल राजनीति में (स्टिंग आपरेशन) करने का चलन बढ़ गया है। एक नेता दूसरे नेता के खिलाफ यह काम करता है। मीडिया भी लोककल्याण भावना से स्टिंग आपरेशन नहीं करता वरन पैसे लेकर यह खेल करता है।

इससे उसकी टीआरपी भी बढ़ती है। यह उपन्यास हमारी वर्तमान राजनीति के सच को बेनकाब करता है। मंत्रियों के आगे-पीछे मंडराने वाले दलालों, चमचों, लेखक पत्रकारों और महत्वाकांक्षी औरतों की भी खबर यह उपन्यास लेता है। लेखक गिरीश पंकज वर्षो से पत्रकारिता में भी सक्रिय रहे हैं इसलिए इस उपन्यास में उनके पत्रकारिता वाले चुटीले तेवर नज़र आते हैं। उपन्यास की प्रचुर व्यंग्य के कारण पूरा उपन्यास पठनीय बन गया है। इधर प्रकाशित हुए कुछ व्यंग्य उपन्यासों में गालियों का खुल कर प्रयोग किया गया है। एक व्यंग्यकार तो इसी बात के लिए चर्चा में रहते हैं कि उन्होंने गालियों का कितना अच्छा इस्तेमाल किया है।

लेकिन गिरीश इस दोष से बच गए हैं। उपन्यास की एक बड़ी कमी यह है कि यह कई जगह रागदरबारी की छाया-सा लगता है। यह किसी लेखक की कमजोरी ही कही जाएगी है कि उसकी कृति पढ़ते वक्त कोई दूसरी कृति ज़ेहन में समा जाए। बावजूद इस कमी के, व्यंग्य उपन्यास स्टिंग आपरेशन के लिए गिरीश पंकज को याद किया जाएगा।

गिरीश : व्यंग्य के निर्मल पंकज

दिलीप कुमार तेतरवे

गिरीश व्यंग्य के निर्मल पंकज हैं, गिरीश हैं जो भी लिखते हैं दिल से लिखते हैं और यही कारण हैं कि उनकी बात पाठकों के दिल तक पहुँचती है। भाषा में कोई चमत्कार नहीं डालते। व्यंग्य उनकी साँसों में है, उनकी धड़कनों में है। उनकी साँसों में समाज है, दिल में मानवता है। इस संगम के कारण उनकी कलम बिना किसी प्रचार के, बिना किसी हंगामे के समाज में प्रतिष्ठित है। स्थापित है। जीवन उनका होते हुए भी उनका नहीं है, व्यंग्य का है, व्यंग्य के माध्यम से समाज का है। उनका जुड़ाव सत्य, शिव और सुंदर से है।

उनकी इतनी बड़ाई लिखने के बाद सोचता हूँ कि व्यंग्य के क्षेत्र में जिस घटियापन के साथ 'युद्ध' चल रहा है, कहीं मेरी उक्ति को किसी खेमे से न जोड़ दिया जाए. लेकिन व्यंग्य लिखने वाला और पत्रकारिता करने वाला कभी अपनी आलोचना से नहीं घबराता है बल्कि वह तो अपनी भी आलोचना खुद ही कर सकता है। गिरीश जी के एक व्यंग्य की पंक्ति यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ, यही होता है। अपनी फटी दिखती नहीं, दूसरे की देखने की आदत पड़ी रहती है। लोग अपनी कमी पर गौर करना शुरू कर दें तो वे कोई भी काम करते हों, वे धीरे-धीरे स्वसम्पादित होते हुए एक दिन निखर कर समाज के लिए उदाहरण बन जाते हैं। लेकिन जो अपनी एक गलती को छिपाने के लिए अनेक गलतियाँ और असत्य का सहारा लेते हैं, हमेशा उनके पाँव धरती से ऊपर होते हैं— निराधार खड़े होते हैं या परजीवी होते हैं। मैंने वस्तुतः गिरीश पंकज को उनकी विभिन्न कृतियों से ही जाना है, वैसे, हम कई बार मिल चुके हैं, कभी इस कार्यक्रम में तो कभी उस कार्यक्रम में जब उनसे दूसरी बार एक कार्यक्रम में मिला था, तब एक व्यक्ति उनके नाम पर विवाद पैदा कर रहा था। निराधार और बेतुकी बात कर रहा था। हुआ क्या? गिरीश तो व्यंग्य के गिरीश बने हुए हैं, व्यंग्य के निर्मल पंकज बने हुए हैं और आरोप लगाने वाले कहाँ हैं, मैं नहीं जानता राजनेता आदतन विवाद पैदा करते हैं और उनके विवाद को व्यंग्य विसंगति की श्रेणी में मानता है। इन विवादों से जो समाज को हानि होती है, उसकी भरपाई का लोकतंत्र में कोई साधन नहीं है। नेता अपनी करनी से, अपनी कथनी से, अपने झूठ से, अपने अमर्यादित व्यवहार से, अपने विवाद पैदा करने के दुर्गुण से एक दिन जनता द्वारा नकार दिए जाते हैं, लेकिन फिर भी ऐसे ही नेता नए सिरे से समाज के सिर पर सवार हो जाते हैं और उसके लिए वे संवेदनात्मक मुद्दे गढ़ते हैं, जाति-धर्म में विभेद का घिनौना खेल खेलते हैं. जब अरुण शौरी ने पत्रकार रहते हुए ऐसा ही खेल खेला तो वे मंत्री बन गए, लेकिन जब उसी खेल में वे खुद फँसे तो वे कहने लगे— 'कारतूस दुबारा इस्तेमाल नहीं होता है!'

गिरीश पंकज स्पष्टवादी हैं, अपने जीवन में भी और लेखन भी वे सच्चे अर्थ में पारदर्शी कृतित्व और व्यक्तित्व के स्वामी हैं। आदमी जिस शैली से अपने जीवन को गढ़ता है, उसी शैली में वह अपने विचारों की अभिव्यक्ति भी करता है। उसका लेखन कितना पक्का और समाज हित में है, यह जान लिया जाए तो लेखक का अस्सी प्रतिशत व्यक्तित्व जाना जा सकता है। किसी भी व्यक्ति की अभिव्यक्ति उसके व्यक्तित्व पर निर्भर करता है।

गिरीश जी की दृष्टि प्रगतिशील है। प्रगतिशील होने का अर्थ वामपंथी होना नहीं है बल्कि इस दृष्टि से देखने वाले समाज के बड़ी आबादी का हित देखते हैं और मानवतावादी होते हैं। वे आदमी और आदमी में फर्क नहीं करते गिरीश जी ने भी कहा भी है, 'व्यंग्य अपने आप में प्रगतिशील नजरिया है। संकुचित मन वाला बेहतर व्यंग्यकार हो ही नहीं सकता' नजरिया की संकीर्णता आदमी के विचार में भेद-भाव की भावना भर देता है। वर्तमान युग तो इसी भेद-भाव के कारण त्रस्त है। यह अनेक सामाजिक विसंगतियों का कारक है। अतः व्यंग्य लेखक कभी संकीर्ण विचारों का गुलाम नहीं हो सकता है।

हर आदमी की भाषा में जो अंतर है, वह अंतर भी उसकी जीवन-शैली से निकलता है। उसके विचार भी

उसकी जीवन-शैली ही तय करती है। लेखक जिस प्रकार अपने को गढ़ता है, उसी प्रकार उसका लेखन भी होता है। लेखन और लेखक का जीवन दो अलग चीजें नहीं हैं, अगर वह साहित्य गणित के फार्मूले से या स्वार्थ के फार्मूले से नहीं लिखता हो व्यंग्य का महत्त्व गिरीश पंकज के जीवन में क्या है, यह उनकी इस उक्ति से जाना जा सकता है, 'व्यंग्य मेरे लिए जीने का सामान है।' जीने की एक प्रविधि ही है। जिस दिन व्यंग्य से कट जाऊँगा, उस दिन लगता है, जीना कठिन हो जाएगा। 'जीना कठिन हो जाएगा' यह चिंतन उसी के हृदय में आ सकता है जो मन, प्राण और आत्मा से समाज से जुड़ा हो, जिसे राष्ट्र की सच्ची चिंता हो जब भी देश में कोई संकट किसी सरकारी नीति या अनीति से आए गिरीश पंकज ने अपनी चिंता राष्ट्रहित में, समाज हित में व्यंग्य के माध्यम से तत्काल व्यक्त की है। क्या ऐसी सोच सभी व्यंग्यकार रखते हैं? कुछ व्यंग्यकार बड़ी सफाई से कह देते हैं-'मैं राजनीति के पचड़े में नहीं पड़ता', जबकि वे यह अच्छी तरह जानते हैं कि राजनीति राष्ट्र के जीवन को गढ़ती है और राष्ट्र है तभी वे हैं, हम हैं। लोकतंत्र में प्रबुद्ध जनों का कार्य है कि वह आगे आएँ और सरकार के कार्यकलापों की खुल कर सत्य और सार्थक आलोचना करें। व्यंग्यकार अगर राजनीति की गड़बड़ियों पर व्यंग्य नहीं करता है तो वह अपने प्रथम दायित्व का निर्वाह नहीं करता है। लेकिन पुरस्कार के लिए सरकार की सार्थक आलोचना या उस पर व्यंग्य करने से कोई व्यंग्यकार कतराता है तो उसे सच्चा व्यंग्यकार नहीं कहा जा सकता है। हो सकता है कि किसी व्यंग्यकार के हृदय में सरकारी पार्टी और सरकार की नीति के प्रति आस्था हो, लेकिन यह आस्था उसकी व्यक्तिगत आस्था तक सीमित रहे तो वह सच्चा व्यंग्य लिख सकता है, क्योंकि उसका धर्म तो राष्ट्र और समाज के प्रति होता है या एक पंक्ति में कहें तो मानवता के प्रति होता है। गिरीश पंकज भी कुछ ऐसा ही सोचते हैं, व्यंग्य अपने आप में प्रगतिशील नजरिया है। संकुचित मन वाला बेहतर व्यंग्यकार हो ही नहीं सकता वैसे, तो साहित्य और विचारधारा की टकराहट कोई नई नहीं है। लेकिन, मेरा अपना मत है कि किसी की विचार-धारा अगर ठेठ राजनीतिक हो जाती है, तो दिक्कतें पैदा होती हैं। यानी व्यंग्य ठेठ राजनीति करने के लिए नहीं हो बल्कि समाज और राष्ट्र के हित को देखते हुए रचित हो।

व्यंग्य को सही स्तर और सही धरातल देने में गिरीश जी का योगदान सराहनीय है। लिखने के उद्देश्य को उन्होंने बेहतर समझा है। उन्होंने व्यंग्य को समाज के लिए उद्देश्यमूलक बनाया है। किसी भी विधा का लेखन हो उसे समाजहित का ही होना आवश्यक है। कुछ व्यंग्यकार समाजहित की जगह यह देखते हैं कि उन्होंने अपने लेखन को कितना बोल्ड किया है, कितना बिकाऊ बनाया है, भले उनके लेखन से एक गलत परम्परा को समाज में बल मिले कुछ लेखक पश्चिम का अन्धानुकरण कर रहे हैं। कहा जाए तो ऐसे लेखकों ने बड़े प्रकाशकों के हित में आत्माविहीन लेखन कर व्यंग्य के उद्देश्य को ही बदल दिया है। उनके लेखन से आभास होता है कि व्यंग्य का कार्य है भद्दी भाषा को बढ़ावा देना, एक क्षेत्र की गलत भाषा परम्परा को पूरे देश में प्रचारित करना और कहना कि ऐसी माटी की भाषा को वे नहीं छोड़ सकते माटी की भाषा की अच्छाइयाँ भी होंगी जिनका वे प्रयोग कर सकते थे, यह देखते हुए कि जायसी, कबीर, तुलसी से लेकर प्रेमचंद जैसे लेखकों ने माटी की भाषा की अच्छाइयों का ही प्रयोग किया। अपनी भाषा को कहीं से भी अश्लील नहीं होने दिया। जहाँ तक मेरी जानकारी है आदि काल से अब तक के श्रेष्ठ लेखकों ने कभी क्षेत्रीय भाषाओं की गलत परम्पराओं को या किसी क्षेत्र के लोगों की अनुचित भाषा के प्रयोग को साहित्य में स्थान नहीं दिया। व्यंग्य का काम है विसंगतियों पर चोट करना और ऐसा करने के लिए भाषा भी शुद्ध होनी चाहिए, विसंगतिपूर्ण नहीं। विसंगति से विसंगति पर प्रहार नहीं किया जा सकता है। इस मामले में उन्होंने कभी कम्प्रोमाइज नहीं किया। इस प्रवृत्ति के कारण उनको हानि भी उठानी पड़ी होगी, हानि-लाभ का ध्यान कर कोई व्यंग्यकार नहीं बन सकता कबीर का तो विचार है-जो घर जारै आपणा चलै हमारे साथ इसी भाव वाले ही व्यंग्य लिखकर विसंगतियों का विरोध कर सकते हैं।

मेरी सृजन यात्रा : सर्वश्रेष्ठ प्रदेय की आस में सृजनरत हूँ

गिरीश पंकज

मैंने कभी इस बात की कल्पना ही नहीं की थी कि एक दिन लेखन की दुनिया में अपनी आंशिक उपस्थिति दर्ज कराऊँगा। हाईस्कूल तक पहुँचते-पहुँचते न जाने कैसे लेखन की ओर प्रवृत्त होता चला गया। हालांकि इसके पीछे भी एक कारण रहा। शालेय पत्रिका 'वन्यजा' के वार्षिकांक के लिए बच्चों से रचनाएँ आमंत्रित की गई।

अनेक बच्चों ने इधर-उधर से रचनाएँ चुराकर अपने नाम से दे दी, लेकिन यह काम मुझ से हो नहीं पा रहा था।

पिता का आदर्शवादी वाक्य रह-रह कर मेरे सामने आ जाता कि चोरी करना बुरी बात है। चोरी करना बुरी बात है। किन्तु मैं तनाव में था जब पत्रिका प्रकाशित होगी तो उनके मित्रों के नाम होंगे, मेरा नाम नहीं होगा।

यह दुख मुझे खाए जा रहा था। अचानक एक दिन कविता फूट पड़ी और मैंने लिखा, नींद से जागो प्यारे बच्चों/ सवेरा सुहाना मौसम लाया/खेलकूद के दिन बीते हैं/पढ़ने का अब मौसम आया। और भी कुछ पंक्तियाँ थी। मैंने दूसरे दिन अपने सर जितेंद्र कुमार झा को कविता दे दी। उन्होंने पूछा, तुमने ही लिखी है न मैंने कहा, यह सर, उन्होंने मुझे शाबाशी दी, सिर पर हाथ फेरा और मैं खुशी-खुशी लौट गया।

झा सर की प्रशंसा के बाद मेरे भीतर का कवि हिलोरे मारने लगा और उसके बाद तो सिलसिला ही शुरू हो गया। अनेक कविताएँ पिता जी द्वारा प्रदत गांधी डायरी में उतरने लगी। पिताजी ने जब देखा कि उनका लड़का कविताएँ लिखने का शौकीन हो गया है तो उन्होंने एक गांधी डायरी मुझे भेंट करके कहा था, तुम अपनी कविताएँ इसी में लिखा करो। पिता कवि तो नहीं थे लेकिन साहित्य अनुरागी ज़रूर थे। इक्का-दुक्का कविताएँ भी उन्होंने लिखी। गांधी पर लिखी गई उनकी एक कविता अब तक याद है। तुमको त्रेता का राम कहूँ या द्वापर का घनश्याम कहूँ पिताजी वे खादी भंडार चलाने में इतने व्यस्त थे कि साहित्य के दुनिया में सक्रिय न हो सके। उन्होंने मुझमें कुछ संभावना देखी तो मुझे प्रोत्साहित करते

रहे। पिताजी जब कभी भी बाहर जाते तो मेरे लिए एक-दो पुस्तकें जरूर लेकर आते। चाहे वह कविता की किताब हो, कहानी हो या उपन्यास। मेरी रुचि देखकर उन्होंने खादी भंडार में धर्मयुग, सारिका, दिन मान, और नवभारत टाइम्स मँगवाना भी शुरू कर दिया। उनका मुझे सख्त निर्देश था कि स्कूल से लौटने के बाद शाम को खादी भंडार आ जाया करो।

मैं खादी भंडार चला जाता और वहाँ नवभारत टाइम्स को ध्यान से पढ़ता। मुझे अच्छी तरह से याद है कि मैं पिताजी से अखबार के बारे में कुछ-न-कुछ पूछा करता। पिताजी मेरी जिज्ञासा शांत करते। वे बताते कि अखबार में आठ कालम होते हैं, महत्वपूर्ण खबरें पहले पन्ने पर प्रकाशित होती हैं, रोचक खबरों को बॉक्स में डाला जाता है। फिर वे एडिट पेज के बारे में बता कर कहते, इसे जरूर पढ़ा करो। इसमें अच्छे-अच्छे विचार प्रकाशित होते हैं। इसमें पाठकों के विचार भी छपते हैं। तुम भी अपने विचार भेज सकते हो। कभी-कभी पिताजी भी किसी खास मुद्दे पर अपने विचार भेजा करते थे जो नवभारत टाइम्स के पसंद अपनी-अपनी में प्रकाशित भी होते थे। मैं नवभारत टाइम्स में पत्र लिखने लगा। बाल जगत नामक बच्चों के पन्ने पर भी मेरी रचनाएँ प्रकाशित होने लगी सारिका दिनमान, धर्मयुग, माधुरी, साप्ताहिक हिंदुस्तान आदि में मेरे पत्र प्रकाशित होने लगे। छत्तीसगढ़ के अखबारों में भी प्रकाशित होते रहे। यह सब देखकर मेरे मन में उत्साह संचारित होने लगा। सोचने लगा कि शायद इस दिशा में ही आगे बढ़ा जा सकता है। जब पत्रिकाओं में मेरे विचार छपने लगे, तभी एक दिन मनेंद्रगढ़ में विद्यानंद दुबे नामक एक पत्रकार पधारे।

उन्हें बिलासपुर से प्रकाशित होने वाले अखबार बिलासपुर टाइम्स के लिए एक मनेन्द्रगढ़ में संवाददाता की जरूरत थी। उन्होंने दो-चार लोगों से पूछा, तो किसी ने मेरे में बात मेरे बारे में बता दिया कि गिरीश चंद्र उपाध्याय पंकज नाम का एक युवक बहुत सक्रिय है। आप उससे बात कीजिए। दुबे जी मेरे पास आए और उन्होंने कहा, तुमको बिलासपुर टाइम्स का संवाददाता बनना है। मैं फ़ौरन ही तैयार हो गया, लेकिन समाचार बनाएँगे कैसे, इसका आइडिया था नहीं, सो दुबे जी से ही पूछ लिया, तो वे मुस्कुरा पड़े और फिर मुझे अपने तरीके से कुछ समझाया। भाव यही था कि किसी भी समस्या को देख कर सुंदर शब्दों में लिपिबद्ध कर दो, वही समाचार है। उन्होंने कुछ और बातें भी बताई होंगी जो मुझे याद नहीं, लेकिन इतना याद है कि दुबे जी के चले जाने के बाद मैंने अपने कस्बे की अनेक समस्याओं के बारे में कुछ-न-कुछ खबर बनाकर बिलासपुर टाइम्स को भेजना शुरू कर दिया। कभी किसी कलाकार को देखा, तो उसके बारे में खबर बना दी। कभी कहीं गंदगी देखी तो उसके बारे में लिख दिया। कभी किसी विभाग में भ्रष्टाचार की खबर पता चली, तो उसे भी खबर बना कर भेज दी। कहीं कोई सड़क दुर्घटना हो गई तो फौरन फोन लगा कर डेस्क पर बैठे सब एडिटर को उसका विवरण दे दिया।

उस वक्त बिलासपुर टाइम्स में हर 15 दिन में एक सक्रिय संवाददाता को पुरस्कृत करने की योजना चल रही थी। डेढ़ महीने बाद बिलासपुर टाइम्स के प्रथम पृष्ठ पर एक बॉक्स छपा इस पक्ष के सर्वश्रेष्ठ संवाददाता गिरीश चंद्र उपाध्याय पंकज। उन्हें उनकी सक्रियता के लिए पच्चीस रुपये का सम्मान दिया जाएगा। यह सूचना देख मैं बल्लियों उछलने लगा। पिताजी को अखबार दिखाया, अपने मित्रों को घूम-घूमकर दिखाता रहा। सब ने मेरी तारीफ की। मैं आज भी आश्चर्यचकित हूँ फिर आखिर कैसे बिना किसी प्रशिक्षण के मैंने कुशलतापूर्वक समाचार बनाना सीखा क्योंकि मेरे समाचारों का बहुत अधिक संपादन नहीं होता था। जैसा भेजता था, वैसा ही छपता था। अब मैं विचार करता हूँ, तो समझ सकता हूँ कि बचपन में पिता ने जो मुझे अध्ययन के जो व्यवहारिक संस्कार दिए, उसी कारण ही यह संभव हो सका और मैं हर खबर सुव्यवस्थित तरीके से बनाने में सक्षम रहा। शायद नवभारत टाइम्स को ध्यान से पढ़ने का नतीजा ही था कि मुझे बहुत अधिक मशक्कत नहीं करनी पड़ी।

संवाददाता के रूप में अपनी भूमिका निभाते-निभाते एक दिन किसी शुभचिंतक ने कहा कि तुम रायपुर चले जाओ। वहाँ जाकर दैनिक युगधर्म अखबार में काम करो। तुम्हारा लेखन और अधिक निखरेगा। युगधर्म के संपादक बबन मिश्रा जी उनके परिचित थे। उन्होंने एक पत्र उनके

नाम लिखकर मुझे दे दिया, और मैं दूसरे दिन ही रायपुर रवाना हो गया। अपने साथ मैंने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छपे पत्रों की कटिंग संभाल कर रखी थी। मिश्र जी ने उन्हें देखा और प्रसन्न होकर बोले, तुम में बड़ी संभावना है फिर उन्होंने सामान्य ज्ञान की कुछ बातें पूछीं। मैंने सब का सही-सही जवाब दिया। उसके बाद मिश्र जी ने कहा, शाबाश तुम इस अखबार में काम कर सकते हो। कब से ज्वाइन करोगे मैंने तपाक से कहा आज से ही कर लेता हूँ।

उन्होंने कहा, ठीक है कर लो, लेकिन एक-दो दिन बाद घर जाकर कपड़े वगैरह ले आओ ताकि यहाँ रहकर नियमित रूप से पत्रकारिता कर सको कुछ दिन बाद वापस मनेंद्रगढ़ लौटा और माता-पिता के चरण छूकर वापस रायपुर आ गया। और उसके बाद फिर कभी लौटकर मनेन्द्रगढ़ जाने की कल्पना ही नहीं की।

रायपुर में ऐसा रमा, ऐसा रमा कि मत पूछिए। युगधर्म की नौकरी करते-करते मैंने हिंदी में एम.ए. किया और बेचलर ऑफ़ जर्नलिज्म की पढ़ाई की। सुखद परिणाम यह रहा कि प्रावीण्य सूची में प्रथम स्थान प्राप्त किया। जो छात्र मिडिल हाई स्कूल में औसत दर्जे का था, वह पत्रकारिता में टॉप कर गया। पिता जी को जब यह खबर पता चली तो वे फूले नहीं समाए। उन्होंने पत्र लिखा कि तुम मेरे भरोसे पर खरे उतरे। इसी तरह से काम करते रहो। भगवान तुम्हारा भला करेंगे।

पत्रकारिता करते-करते साहित्य में भी मेरी गहरी रुचि बनी हुई थी। जैसा मैंने पहले ही बताया कि शालेय पत्रिका में कविता प्रकाशित होने से मुझे प्रोत्साहन मिला और विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में मैं छुटपुट लिखने भी लगा था लेकिन रायपुर आने के बाद मुझे एक बड़ा कैनवास मिला। यह बताना मैं भूल गया कि मनेंद्रगढ़ में रहते हुए मैंने दो साहित्यिक संस्थाएँ बनाई थी। एक संस्था का नाम था संबोधन और दूसरी का नाम सरगुजा समाज। सरगुजा समाज में वैचारिक गोष्ठियाँ होती थी। सामाजिक मुद्दों पर विचार-विमर्श होता था, तो संबोधन साहित्य-संस्कृति और कला को समर्पित थी। संबोधन तीन मित्रों ने मिल कर बनाई, मेरे साथी थे वीरेंद्र श्रीवास्तव और जीतेंद्र सिंह सोढ़ी। दोनों मित्र आज भी कविता की दुनिया में सक्रिय हैं।

संबोधन के कारण साहित्यिक गतिविधियों में हम बहुत सक्रिय हुए। हमने 'यात्निका' नामक एक पुस्तक प्रकाशित की, जिसमें उस समय लिख रहे हम कुछ मित्रों की कविताएँ शामिल थीं। यह काम उस समय हुआ, जब मैं ले-देकर 19 साल का हुआ था। उसी समय बिजनौर से प्रकाशित होने वाली पत्रिका ठलुआ से मैं जुड़ गया। कवि हुक्का इस मासिक पत्रिका का प्रकाशन करते थे। इस पत्रिका के कारण मेरे मन में हास्य और व्यंग्य लेखन की रुचि विकसित हुई, और मैं हास्य क्षणिकाएँ लिखने लगा। स्कूल के वार्षिकोत्सवों और सार्वजनिक गणेशोत्सवों के दौरान मित्र कौशल के साथ कुछ हास्य नाटकों का मंचन भी किया। रायपुर आने के बाद यह सिलसिला बंद हो गया लेकिन जब युगधर्म से जुड़ा, तो फिर मैंने गद्य व्यंग्य लेखन की ओर कदम बढ़ाया और युगधर्म में नियमित रूप से व्यंग्य लिखने लगा। मेरी रुचि देखकर संपादक जी ने मुझे एक स्तंभ ही दे दिया जिसका नाम था देखी-सुनी। हर हफ्ते मेरा एक व्यंग्य छपने लगा। कुछ महीने लिखने के बाद मैंने संपादक से आग्रह किया कि मैं प्रतिदिन व्यंग्य लिखना चाहता हूँ।

सम्पादक जी चकरा गए और बोले, यह बड़ा कठिन काम है। तुम नहीं कर पाओगे। मैंने विनम्रतापूर्वक कहा कि शायद कर लूँगा। वे तैयार हो गए और उसके बाद मैं प्रतिदिन देखी-सुनी में एक व्यंग्य लिखने लगा। एडिट पेज का आखिरी कालम मेरे लिए ही खाली रहता और प्रतिदिन मैं किसी-न-किसी मुद्दे पर एक व्यंग्य लिखकर दे दिया करता। एक दिन संपादक ने मुझसे कहा, गिरीश, तुम्हारे व्यंग्य की खूब तारीफ हो रही है। अच्छा लिख रहे हो। कीप इट अप। इसी तरह लिखते रहो उनके इस प्रोत्साहन से मुझे एक बार फिर ऊर्जा मिली, जैसी ऊर्जा हाईस्कूल के समय झा सर से मिली थी।

मैं युगधर्म में अनेक भूमिकाओं के साथ उपस्थित रहता कभी किसी मुद्दे पर संपादकीय लिखता, कभी वाणिज्यिक पेज की खबर बनाता, कभी शहर में होने वाली सांस्कृतिक गतिविधियों को कवर करता। कहीं कोई दुर्घटना हो जाती,

तो उसकी खबर भी बना कर दे देता। और इन सब को करने के बाद जब समय मिलता तो एक व्यंग्य भी लिखने का समय निकाल लेता। इस तरह साहित्य और पत्रकारिता की जुगलबंदी जारी रही। यह सिलसिला आज तक जारी है। आज पीछे मुड़कर देखता हूँ या अपने पर साक्षी भाव से दृष्टिपात करता हूँ तो संतोष होता है कि मैंने अपने पिता के सपनों के साथ न्याय किया।

पिता का आशीर्वाद रंग लाया। आठ उपन्यास, 30 व्यंग्य संग्रह, 7 ग़ज़ल संग्रह, बच्चों के लिए सात पुस्तकें, नवसाक्षरों के लिए 15 किताबें, तथा अन्य पुस्तकें अलग। कुल 110 पुस्तकें। इतना कुछ लिखने के बाद यही सोचता हूँ कि अभी भी मेरा श्रेष्ठ आना बाकी है। माना कि साहित्य की लगभग हर विधा मैंने लिखा है लेकिन मैं उस एक रचना की तलाश में हूँ, जो मुझे परम संतुष्टि प्रदान करें। वैसे तो हर रचना मुझे अच्छी लगती है।

अपने उपन्यासों की बात करूँ, तो मेरे सारे उपन्यास मुझे प्रिय है। चाहे प्रारंभिक उपन्यास मिठलबरा की आत्मकथा हो या मेरा यह आठवां उपन्यास वो एक सत्यान्वेषीय हो। इन सबको लिखकर लगता है कि मैंने अपने लेखक होने का फर्ज निभाया है।

वैसे सर्वाधिक संतुष्टि की बात करूँ, तो 'एक गाय की आत्मकथा' लिखकर परम संतोष हुआ। भारतीय गायों की दुर्दशा पर केंद्रित यह उपन्यास गायों की महिमा का बखान तो करता ही है लेकिन वह गौ माफिया पर भी प्रहार करता है। इस उपन्यास को पढ़कर फैज़ खान नामक मुस्लिम युवक इतना प्रभावित हुआ कि उसने अपनी सरकारी नौकरी का मोह त्याग कर अब देश भर में घूम-घूमकर गौ कथा कह रहा है।

वह गर्व से इस बात को बताता है कि मुझे एक गाय की आत्मकथा पढ़ कर प्रेरणा मिली। किसी भी लेखक के जीवन का यह सुखद अध्याय हो सकता है कि उसकी कृति किसी के जीवन में इतना परिवर्तन ले आए। 'एक गाय की आत्मकथा' ने मुझे बहुत संतोष प्रदान किया, दूसरा संतोष इस बात का भी है कि यहाँ आज मेरे साहित्य पर बारह छात्र पीएच.डी उपाधि के लिए शोधकार्य कर रहे हैं। मैं खुद पीएच.डी करना चाहता था लेकिन कर नहीं पाया। अब जब लोग मेरे साहित्य पर शोध कर रहे हैं तब एक दिन पिताजी ने कहा था कि तुम पीएच.डी. नहीं कर सके तो क्या हुआ, अब तुम्हारे साहित्य पर लोग पीएच.डी कर रहे हैं। पिता का आशीर्वाद पाकर मैं प्रसन्न हुआ लेकिन सच कहूँ फूल कर कुप्पा आज भी नहीं हूँ।

मुझे लगता है कि सृजन पथ पर निरंतर चलते रहना ही महत्वपूर्ण है। असली बात यह है कि मैं ईमानदार और बेहतर मनुष्य बना रहूँए और जैसा लिखता हूँ, वैसा दिखता भी रहूँ। मैं उन लोगों में बिल्कुल शुमार नहीं होना चाहता, जो अपनी रचना में तो ईमानदार है लेकिन जीवन में भयंकर बेईमान। मैं अगर खादी की बात करता हूँ, गांधी की बात करता हूँ, तो मैं खादी पहनता भी हूँ। अगर मैं शराब या मांसाहार का विरोध करता हूँ तो जीवन में भी उससे परहेज भी करता हूँ। मैंने देखा है कि अनेक लेखक लिखते कुछ है, जीते कुछ है। मैं ऐसा लेखक नहीं बनना चाहता।

आज भी कोशिश करता हूँ कि लेखक होने से पहले ठीक-ठाक मनुष्य बन सकूं। कितना बन सका हूँ, यह मैं नहीं जानता लेकिन उस दिशा में सक्रिय जरूर हूँ।

विनम्रता के साथ कहना चाहता हूँ कि साहित्य सृजन मेरे लिए अपनी छवि चमकाने का साधन नहीं है, वरन यह जीवन जीने का उपक्रम है।

मैं अपनी हर रचना लोकमंगल के भाव सही लिखता हूँ। ऐसा कहकर मैं अपने बड़प्पन का इजहार नहीं कर रहा, वरन उस परंपरा के अनुगमन की बात कर रहा हूँ जिसमें कहा गया है कि लेखन स्वांत सुखाय भले होता है लेकिन उसका मूल लक्ष्य लोक कल्याण ही होता है। उसी दिशा में प्रतिबद्ध हूँ। साहित्य के विद्यार्थी के रूप में आज भी कुछ बेहतर लिखते रहने की कोशिश में लगा हूँ और उम्मीद करता हूँ आने वाले समय में शायद मेरा सर्वश्रेष्ठ मेरे सामने उपस्थित हो जाए। बस उसी दिन की आस।

व्यंग्य में महिला हस्तक्षेप

विवेक रंजन श्रीवास्तव

विश्व की आबादी आठ सौ करोड़ पार होने को है, कमोबेश इसमें महिलाओं की संख्या पचास प्रतिशत है। यद्यपि भारत में स्त्री पुरुष के इस अनुपात में स्त्रियों की संख्या अपेक्षाकृत कम है। पितृसत्तात्मक समाज होने के चलते प्रायः सभी क्षेत्रों में लंबे समय से पुरुष स्त्री पर हावी रहा है 'सिमोन द बोउवार' का कथन है, 'स्त्री पैदा नहीं होती, बनाई जाती है', समाज अपनी आवश्यकता के अनुसार स्त्री को ढालता आया है। उसके सोचने से लेकर उसके जीवन जीने के ढंग को पुरुष नियंत्रित करता रहा है और आज भी करने की कोशिश करता रहता है। किंतु अब महिलाओं को पुरुषों के बराबरी के दर्जे के लिये लगातार संघर्षरत देखा जा रहा है। विश्व

में नारी आंदोलन की शुरुवात उन्नीसवीं शताब्दी में हुई। नारी आंदोलन लैंगिक असमानता के स्थान पर मानता है कि स्त्री भी एक मनुष्य है। वह दुनिया की आधी आबादी है। सृष्टि के निर्माण में उसका भी उतना ही सहयोग है जितना कि पुरुष का। स्त्री सशक्तिकरण, स्त्री विमर्श से जन चेतना जागी है। अब जल, थल, नभ, अंतरिक्ष हर कहीं महिलाएँ पुरुषों से पीछे नहीं रही हैं।

विभिन्न भाषाओं के साहित्य में भी महिला रचनाकारों ने महत्वपूर्ण मुकाम हासिल किया है। अनेक महिला रचनाकारों को नोबेल पुरस्कार मिल चुके हैं। 2022 का नोबल फ्रेंच लेखिका एनी एर्नॉक्स को मिला है। 82 वर्षीय एर्नॉक्स साहित्य का नोबेल पाने वाली सत्रहवीं महिला हैं पूरी दुनियां में हर साल आठ मार्च को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस मनाया जाता है। हरिशंकर परसाई जी के व्यंग्य की पंक्ति है कि दिवस कमजोरों के मनाए जाते हैं, मजबूत लोगों के नहीं। सशक्त होने का आशय केवल घर से बाहर निकल कर नौकरी करना या पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर चलना भर नहीं है। वैचारिक अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता साहित्य और खास कर किसी पर व्यंग्य कर सकने की क्षमता और स्वतंत्रता में निहित है। भारत में ऐसी ढ़ेर विसंगतियाँ हैं जिनसे सीधे तौर पर महिलाएँ प्रभावित होती हैं, उदाहरण के लिये सबरीमाला या अन्य धर्म के स्थलों पर महिलाओं के प्रवेश पर रोक, धर्म-जाति के गठजोड़, रूढ़ि व अंधविश्वास ने महिलाओं को लगातार शोषित किया है। इन मसलों पर जिस तीक्ष्णता से एक महिला व्यंग्यकार लिख सकती है पुरुष नहीं। कहा गया है जाके पांव न फटे बिवाई बा क्या जाने पीर पराई। किंतु विडम्बना है कि लम्बे समय तक व्यंग्य पर पुरुषों का एकाधिकार रहा है। यह और बात है कि लोक जीवन और

लोकभाषा में व्यंग्य अर्वाचीन है। सास, बहू, ननद, भौजाई के परस्पर संवाद या, बुन्देलखण्ड, मिथिला, भोजपुरी में बारात की पंगत को सुस्वादु भोजन के साथ हास्य और व्यंग्य से सम्मिश्रित गालियां तक देने की क्षमता महिलाओ में ही रही है। हिमाचल में ये विवाह गीत सीठणी काहे जाते हैं जिनमें यहि भाव भंगिमा और व्यंग्य सजीव होता है। साहित्यिक इतिहास में भक्ति आंदोलन के समय में महिला रचनाकारों ने खूब लिखा, मीरा बाई की रचनाओ में व्यंग्य के संपुट ढूंढ़े भी जा सकते हैं। आज साहित्य में व्यंग्य स्वतंत्र विधा के रूप में सुस्थापित है। समाज की विसंगतियों, भ्रष्टाचार, सामाजिक शोषण अथवा राजनीति के गिरते स्तर की घटनाओं पर अप्रत्यक्ष रूप से तंज किया जाता है। लघुकथा की तरह संक्षेप में घटनाओं पर व्यंग्य होता है, जो हास्य, और आक्रोश भी पैदा करता है। विद्वानों के अनुसार प्राचीन काल से ही साहित्य में व्यंग्य की उपस्थिति मिलती है। चार्वाक के 'यावद जीवेत सुखं जीवेत, ऋणं कृत्वा घृतम् पिवेत्' के माध्यम से स्थापित मूल्यों के प्रति प्रतिक्रिया को इस दृष्टि से समझा जा सकता है। सर्वाधिक प्रामाणिक व्यंग्य की उपस्थिति कबीर के 'पत्थर पूजे हरि मिले तो मैं पूजूं पहार' तथा 'कांकर पाथर जोड़ कर मस्जिद दयी बनाय ता चढ़ि मुल्ला बांग दे क्या बहरा भया खुदाय' आदि के रूप में देखी जा सकती है। हास्य और व्यंग्य का नाम साथ-साथ लिया जाता है पर उनमें व्यापक मौलिक अंतर है। साहित्य की शक्तियों अभिधा, लक्षणा, व्यंजना में हास्य अभिधा, यानी सपाट शब्दों में हास्य की अभिव्यक्ति के द्वारा क्षणिक हँसी तो आ सकती है, लेकिन स्थायी प्रभाव नहीं डाल सकती। व्यंजना के द्वारा प्रतीकों और शब्द बिम्बों के द्वारा किसी घटना, नेता या विसंगितयों पर प्रतीकात्मक भाषा द्वारा जब व्यंग्य किया जाता है, तो वह अपेक्षाकृत दीर्घ कालिक प्रभाव छोड़ता है। श्रेष्ठ साहित्य में व्यंग्य की उपस्थिति महत्वपूर्ण है। व्यंग्य सहृदय पाठक के मन पर संवेदना, आक्रोश एवं संतुष्टि का संचार करता है। स्वतंत्रता पूर्व व्यंग्य लेखन की सुदीर्घ परंपरा मिलती है।

भारतेंदु हरिशचंद्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, बालकृष्ण भट्ट तथा अन्य लेखकों का बड़ा व्यंग्य समूह था, इनमें बाबू बालमुकुंद गुप्त के धारावाहिक 'शिव शंभू के चिट्ठे' युगीन व्यंग्य के दिग्दर्शक हैं। वायसराय के स्वागत में उस समय उनका साहस दृष्टव्य है माई लार्ड, आपने इस देश में फिर पदार्पण किया, इससे यह भूमि कृतार्थ हुई। विद्वान, बुद्धिमान और विचारशील पुरुषों के चरण जिस भूमि पर पड़ते हैं, वह तीर्थ बन जाती है। आप में उक्त तीन गुणों के सिवा चौथा गुण राज शक्ति का है। अतः आपके श्रीचरण स्पर्श से भारत भूमि तीर्थ से भी कुछ बढ़कर बन गई। भगवान आपका मंगल करे और इस पतित देश के मंगल की इच्छा आपके हृदय में उत्पन्न करे ऐसी एक भी सनद प्रजा प्रतिनिधि शिव शंभु के पास नहीं है, तथापि वह इस देश की प्रजा का, यहाँ के चिथड़ा पोश कंगालों का प्रतिनिधि होने का दावा रखता है। गाँव में उसका कोई झोंपड़ा नहीं, जंगल में खेत नहीं हे राज प्रतिनिधि, क्या उसकी दो-चार बातें सुनिएगा। इसमें अंतर्निहित कटाक्ष व्यंग्य की ताकत हैं। रचना के इस व्यंग्य कौशल को आधुनिक व्यंग्य काल में परसाई, शरद जोशी, रवीन्द्र नाथ त्यागी, शंकर पुणतांबेकर, नरेंद्र कोहली, गोपाल चतुर्वेदी, विष्णुनागर जैसे लेखकों ने आगे बढ़ाया है।

डॉ. शैलजा माहेश्वरी ने एक पुस्तक लिखी है हिंदी व्यंग्य में नारी इस किताब की भूमिका सुप्रसिद्ध व्यंग्य लेखक और संपादक यशवंत कोठारी ने लिखी है। इस भूमिका आलेख में उन्होंने आज की सक्रिय महिला व्यंग्यकारों का उल्लेख किया है। डॉ. प्रेम जनमेजय व्यंग्य पर सतत काम कर रहे हैं, उन्होंने पत्रिका 'व्यंग्य यात्रा' का जनवरी से मार्च 2023 अंक ही 'हिन्दी व्यंग्य में नारी स्वर' पर केंद्रित किया है। मैं लंबे समय से पुस्तक चर्चा करता आ रहा हूँ और विगत कुछ वर्षों में प्रकाशित व्यंग्य की प्रायः किताबें मेरे पास हैं, इन सीमित संदर्भों को लेकर कम शब्दों में आज सक्रिय व्यंग्य लेखिकाओं के कृतित्व के विषय में लिखने का यत्न है। यद्यपि मेरा मानना है कि व्यंग्य में महिला हस्तक्षेप और अवदान पर शोध ग्रंथ लिखा जा सकता है। जिन कुछ सतत सक्रिय महिला नामों का लेखन पत्र, पत्रिकाओ, सोशल मीडिया में मिलता रहा है उनकी किताबों के आधार पर संक्षिप्त जानकारी प्रस्तुत करने का प्रयास है।

स्नेहलता पाठक शंकर नगर, रायपुर की निवासी स्नेहलता

पाठक की व्यंग्य की किताबें 'सच बोले कौआ काटे', द्रौपदी का सफरनामा, एक दीवार सौ अफसाने, प्रजातंत्र के घाट पर, बाकी सब ठीक है, बेला फूले आधी रात, लोनम् शरणम् गच्छामी, व्यंग्यकार का वसीयतनामा, उन्होंने उपन्यास लाल रिबन वाली लड़की भी लिखा है, और 'व्यंग्य शिल्पी लतीफ घोंघी' किताब का संपादन भी किया है। उन्हें छत्तीसगढ़ की पहली गद्य व्यंग्य लेखिका सम्मान मिल चुका है। वे निरंतर स्तरीय लेखन में निरत दिखती हैं।

सूर्यबाला जी ने बहुत व्यंग्य लिखे हैं, उनकी व्यंग्य की पुस्तकें 'यह व्यंग्य कौ पन्थ', 'अजगर करे न चाकरी', 'धृतराष्ट्र टाइम्स', 'देशसेवा के अखाड़े में', 'भगवान ने कहा था', 'झगड़ा निपटारक दफ़्तर', आदि चर्चित हैं। वे बड़ी कहानीकार हैं और इतनी ही ज़िम्मेदारी तथा गम्भीरता से व्यंग्य भी लिखती हैं। कलम के पैनेपन से उन्होंने व्यंग्य को भी तराशा है वे व्यंग्य की सारी शर्तों को, अपनी ही शर्तों पर पूरा करने वाली मौलिकता का दामन किसी भी व्यंग्य रचना में कभी नहीं छोड़तीं। उनका सफल कहानीकार होना उनको एक अलग ही किस्म का व्यंग्य शिल्प औज़ार देता है। व्यंग्य के परम्परागत विषय भी सूर्यबाला के क़लम के प्रकाश में एकदम नये आलोक में दिखाई देने लगते हैं। विशेष तौर पर, तथाकथित महिला विमर्श के चालाक स्वाँग को, लेखिकाओं का इसके झाँसे में आने को तथा स्वयं को लेखन में स्थापित करने के लिए इसका कुटिल इस्तेमाल करने को उन्होंने बेहद बारीकी तथा साफ़गोई से अपनी कई व्यंग्य रचनाओं में अभिव्यक्त किया है।

शांति मेहरोत्रा ने भी काफी लिखा है। वे पिछली सदी के पाँचवें छठे दशक में सामने आईं कवयित्री, कथाकार, लघुकथा और व्यंग्य की सशक्त हस्ताक्षर रही हैं। ठहरा हुआ पानी उनका नाटक है सरोजनी प्रीतम की हंसिकाएँ काव्य भी खूब पढ़ी गयीं। लौट के बुद्धू घर को आये, श्रेष्ठ व्यंग्य, सारे बगुले संत हो गये आदि उनकी चर्चित पुस्तके हैं समीक्षा तैलंग मुझे स्मरण है तब मैं अपने पहले वैश्विक व्यंग्य संग्रह 'मिली भगत' पर काम कर रहा था। इंटरनेट के जरिये अबूधाबी में समीक्षा तैलंग से संपर्क हुआ। फिर जब उन्होंने उनकी पहली किताब छपवाने के लिये पाण्डुलिपि तैयार की तो 'जीभ अनशन पर है' यह नामकरण करने का श्रेय मुझे ही मिला, इस किताब में मेरी टीप उन्होंने फ्लैप पर भी ली है। उसके बाद उनकी दूसरी किताब व्यंग्य का एपीसेंटर, संस्मरण की किताब कबूतर का केटवाक आदि आई हैं वे निरंतर उत्तम लिख रही हैं।

मीना अरोड़ा हल्द्वानी से हैं। उन्होने पुत्तल का पुष्प बटुक व्यंग्य उपन्यास लिखा है, जिसकी चर्चा करते हुये मैंने लिखा है कि 'पुत्तल का पुष्प वटुक' बिना चैप्टर्स के विराम के एक लम्बी कहानी है। जो ग्रामीण परिवेश, गांव के मुखिया के इर्द गिर्द बुनी हुई कथा में व्यंग्य के संपुट लिये हुए हैं। उनकी कविताओं की किताबें 'शेल्फ पर पड़ी किताब' तथा 'दुर्योधन एवं अन्य कविताएँ' पूर्व प्रकाशित तथा पुरस्कृत हैं। मीना अरोड़ा की लेखनी का मूल स्वर स्त्री विमर्श है।

डॉ. अलका अग्रवाल सिंग्तिया, का 'मेरी तेरी सबकी' व्यंग्य संग्रह प्रकाशित है, इसके सिवा अनेक सहयोगी संग्रहों में उन्होंने शिरकत की है, उनका उल्लेख इस दृष्टि से महत्व रखता है कि उन्होंने हाल ही परसाई पर पीएचडी मुम्बई विश्व विद्यालय से की है।

अनिला चारक जम्मू कश्मीर से हैं। जम्मू कला संस्कृति एवं भाषा अकादमी ने इनके कविता संग्रह 'नंगे पांव ज़िन्दगी' को बेस्ट बुक के अवार्ड से सम्मानित किया है। इनकी व्यंग्य की पुस्तक 'मास्क के पीछे क्या है' प्रकाशित हुई है।

अनीता यादव का व्यंग्य संग्रह 'बस इतना सा ख्वाब है' आ चुका है, इसके सिवा कई संग्रहों में सहभागी हैं तथा फ्रीलांस लिखती हैं।

चेतना भाटी साहित्य की विभिन्न विधाओं व्यंग्य, लघुकथा, कहानी, उपन्यास, कविता में लिखने वाली श्रीमती चेतना भाटी की अब तक कई कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। जिनमें व्यंग्य संग्रह दिल है हिंदुस्तानी दुनिया, एक सरकारी मकान है, विक्रम बेताल का ईमेल संवाद प्रमुख हैं। इसके सिवा। कहानी संग्रह एक सदी का सफरनामा, नए समीकरण, जब तक यहाँ रहना है, ट्रेडमिल पर जिंदगी, एवं लघुकथा संग्रह उल्टी गिनती, सुनामी सड़क, खारी बूँदें और

उपन्यास चल, आ चल जिंदगी, चंद्रदीप, बिग बॉस सीजन कोरोना प्रकाशित है।

सुनीता शानू एक व्यंग्य संग्रह 'फिर आया मौसम चुनाव का' (प्रभात प्रकाशन 1915), एक कविता संग्रह... 'मन पखेरू फिर उड़ चला' (हिंद युग्म 1913), कई सांझा कविता एवं व्यंग्य संग्रह, वे पुरानी हिन्दी ब्लागर हैं।

डॉ. नीरज सुधांशु आप वनिका प्रकाशन की संस्थापिका हैं। लिखी तो व्यथा कही तो लघुकथा आदि उनकी कृतियाँ हैं, मूलतः लघुकथा लिखती हैं जिनमें व्यंग्य के संपुट पढ़ने मिलते हैं। वे पेशे से डाक्टर हैं।

सीमा राय मधुरिमा का व्यंग्य संग्रह 'खरी मसखरी', 'लाटिंग पेपर' डायरी लेखन और कविता संग्रह मुखर मौन तथा मैं चुनूँगी प्रेम आ चुके हैं।

डॉ. शशि पाण्डे, किताबें हैं चौपट नगरी अंधेर राजा (संग्रह), मेरी व्यंग्य यात्रा (संग्रह), व्यंग्य की बलाएँ (संपादन), बकैती गंज (हास्य साक्षात्कार संपादन) नीलम कुलश्रेष्ठ महिला चटपटी बतकहियाँ (व्यंग्य संग्रह) के साथ अपनी उपस्थिति दर्ज करती हैं।

कीर्ति काले का संग्रह 'ओत्तेरेकी' तैंतीस व्यंग्य लेखों का संकलन है। वे व्यंग्य जगत में जानी पहचानी लेखिका हैं। वीणा वत्सल सिंह प्रतिलिपि डाट काम पर जाना पहचाना सक्रिय नाम है वे कहानियाँ लिखती हैं और अपने लेखन में व्यंग्य प्रयोग करती हैं।

नुपुर अशोक 'पचहत्तर वाली भिंडी' उनका व्यंग्य संग्रह है और मेरे मन का शहर उनकी कविता की प्रकाशित पुस्तकें हैं। आरिफा एविस अपने व्यंग्य उपन्यास नाकाबन्दी के संदर्भ में लिखती हैं पिछले दिनों कश्मीर में जो हुआ उसे लेकर भारतीय मीडिया की अलग-अलग राय है। ऐसे में कश्मीर के जमीनी हालात को करीब से देखना, जहाँ फोन नेटवर्क बंद हो, कर्फ्यू लगा हुआ हो एक मुश्किल काम था। मैं कश्मीर की मौजूदा स्थिति पर लेख, व्यंग्य, कहानी लिखने की सोच रही थी लेकिन उपरोक्त माध्यमों से पूरी बात कहना बड़ा ही मुश्किल था। इसलिए मैंने कश्मीर के नये हालात और उनसे उपजी कश्मीर की राजनीतिक, आर्थिक और मनोस्थिति बयान दर्ज करते हुए इसे उपन्यास की शक्ल में लिखा है। मास्टर प्लान उनका एक और उपन्यास है। राजनीतिक होली, जांच जारी है उनके व्यंग्य संग्रह हैं।

अनीता श्रीवास्तव का व्यंग्य संग्रह बचते-बचते प्रेमालाप, कविता संग्रह जीवन वीणा, कहानी संग्रह तिड़क कर टूटना, बालगीत संग्रह बंदर संग सेल्फी छप चुके हैं। वे संभावनाशील व्यंग्यकार हैं।

अंशु प्रधान का व्यंग्य संग्रह हुक्काम को क्या काम, उपन्यास रक्कासा और कहानी संग्रह कफस प्रकाशित है।

इंद्रजीत कौर का संग्रह 'चुप्पी की चतुराई' प्रकाशित है, मठाधीशी और कठमुल्लापन के विरोध में लिखना साहस पूर्ण होता है। वे स्वयं सिख धर्म से होते हुये भी अपने ही धर्म की कमियों पर बहुत साहस के साथ पंजाबी पत्रिका 'पंजाबी सुमन' में स्तम्भ लिखती रहीं हैं। उन्होंने एक अन्य व्यंग्य संग्रह ईमानदारी का सीजन, तथा पंचतंत्र की कथायें भी लिखे हैं। अनामिका तिवारी जबलपुर से हैं उन का प्रकाशित व्यंग्य संग्रह एक ही है दरार बिना घर सूना 2005 में दिल्ली शिल्पायन से प्रकाशित हुआ था। नाटक 'शूर्पनखा' भी उन्होंने लिखा है। अलका पाठक की पुस्तक किराये के लिए खाली है। पल्लवी त्रिवेदी पुलिस अधिकारी हैं। उनकी प्रकाशित कृतियाँ हैं 'अंजाम-ए-गुलिस्तां क्या होगा' (व्यंग्य संग्रह) 'तुम जहाँ भी हो' (कविता संग्रह)। उनकी रचनाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में नियमित रूप से प्रकाशित होती रही हैं। लेखन के अतिरिक्त वे यात्राओं, संगीत व फ़ोटोग्राफ़ी का शौक रखती हैं। 'तुम जहाँ भी हो' पुस्तक के लिए उन्हें 2020 में मध्यप्रदेश के 'वागीश्वरी सम्मान' से सम्मानित किया गया।

साधना बलवटे ने समीक्षात्मक कृति 'शरद जोशी व्यंग्य के आर पार' लिखी है। उनका व्यंग्य संग्रह 'ना काहू से दोस्ती हमरा सबसे बैर' सदयः प्रकाशित है।

अर्चना चतुर्वेदी का व्यंग्य उपन्यास गली तमाशे वाली बहुचर्चित है। कांता राय मूलतः लघुकथायें लिखती हैं। जिनमें वे व्यंग्य का सक्षम प्रयोग करती हैं उनकी विभिन्न विधाओं की कई किताबें प्रकाशित है।

शेफाली पाँडे, दलजीत कौर, सक्रिय बहुपठित लेखिकाएँ हैं। सुषमा व्यास राजनिधि की यद्यपि व्यंग्य केंद्रित किताब

अब तक नहीं है पर वे व्यंग्य मंचों पर सक्रिय रहती हैं, मेधा झा स्फुट व्यंग्य लिखती हैं, वे अनेक संग्रहों में सहभागी हैं। सारिका गुप्ता स्फुट व्यंग्य लिख रही युवा व्यंग्यकार हैं, वे कानूनी विषय पर एक किताब लिख चुकी हैं। डॉ. शांता रानी ने हिंदी नाटकों में हास्य तत्व पुस्तक लिखी है। लक्ष्मी शर्मा मूलतः व्यंग्यकार नहीं हैं पर उनके उपन्यास, एकांकी में व्यंग्य की झलक है सिधपुर की भक्तिनें, स्वर्ग का अंतिम उतार, उपन्यास, कथा संग्रह आदि लिखे हैं।

डॉ. शैलजा माहेश्वरी ने "हिंदी व्यंग्य में नारी किताब लिखी है। यह पुस्तक हिंदी व्यंग्य में नारी के योगदान पर गंभीर समालोचनात्मक कृति है। बीकानेर की मंजू गुप्ता के संपादन में भी एक पुस्तक व्यंग्य समालोचना पर आई है। जबलपुर में महाविद्यालय में हिन्दी की विभागाध्यक्ष डॉ. स्मृति शुक्ल ने व्यंग्य आलोचना सहित, साहित्यिक समालोचना के क्षेत्र में बहुत काम किया है। उन्हें म.प्र. साहित्य अकादमी से आलोचना पर पुरस्कार भी मिल चुका है। उन्होंने 'विवेक रंजन के व्यंग्य समाज के जागरुख पहरुये के बयान' शोध आलेख लिखा है। स्वाति शर्मा, जबलपुर डॉ. नीना उपाध्याय के निर्देशन में विवेक रंजन के व्यंग्य के सामाजिक प्रभाव पर जबलपुर विश्वविद्यालय से शोध कार्य कर रही हैं। आशा रावत की पुस्तक हिंदी निबंध 'स्वतंत्रता के बाद' शीर्षक से प्रकाशित है जिसमें महिला व्यंग्य समालोचना पर भी लिखा गया है।

दीपा गुप्ता ने अब्दुल रहीम खानखाना पर विस्तृत कार्य किया है। उनकी कई किताबें प्रकाशित हैं। यद्यपि व्यंग्य केंद्रित पुस्तक अभी तक नहीं आई है। इसके अतिरिक्त भारती पाठक, गरिमा सक्सेना, पूजा दुबे, ऋचा माथुर, आदर्श शर्मा, अनीता भारती, विभा रश्मि, जयश्री शर्मा, पुष्प लता कश्यप, निशा व्यास, मीरा जैन, प्रभा सक्सेना, रेनू सैनी, डॉ. निर्मला जैन, उषा गोयल, पूनम डोगरा, नीलम जैन, ललिता जोशी, अर्चना सक्सेना, कुसुम शर्मा, सीमा जैन, विदुषी आमेटा, दीपा स्वामिनाथन, आदि लेखिकायें राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय सोशल मीडिया प्लेटफार्मस एवं पत्र-पत्रिकाओं में जब तब स्फुट रूप से सक्रिय मिलती हैं। भले ही इनमें से कई पूर्णतया व्यंग्य संधान नहीं कर रही किन्तु अपनी विधा कविता, कहानी, ललित लेख, लघुकथा आदि में व्यंग्य प्रयोग करती हैं।

व्यंग्य लोचन पुस्तक में डॉ. सुरेश महेश्वरी ने रीतिकालीन कवियों के मार्फत उपालम्भ के रूप में महिलाओं द्वारा किये जाने वाले व्यंग्य को विस्तार दिया है। इसी प्रकार व्यंग्य चिन्तना और शंकर पुणताम्बेकर विषयक पुस्तक में भी काफी विस्तार से महिला व्यंग्य की चर्चायें की गई हैं। डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी ने भी महिला व्यंग्य लेखन पर अपने विचार दिए हैं।

अस्तु, सीमित संदर्भों को लेकर कम शब्दों में आज सक्रिय व्यंग्य लेखिकाओं के कृतित्व के विषय में यह आलेख एक डिस्क्लैमर चाहता है, मैंने यह कार्य निरपेक्ष भाव से महिला व्यंग्य लेखन को रेखांकित करने हेतु सकारात्मक भाव से किया है, उल्लेख, क्रम, कम या ज्यादा विवरण मात्र मुझे सुलभ सामग्री के आधार पर है, त्रुटि अवश्यसंभावी है जिसके लिये अग्रिम क्षमा। कई नाम जरूर छूटे होंगे जिनसे अवगत कराइये ताकि यह आलेख और भी उपयोगी संदर्भ बन सके।

महिला व्यंग्य लेखन स्वच्छंद रुप से विकसित हो रहा है, और संभावनाओं से भरपूर है। महिला व्यंग्यकार राजनीति, घर परिवार, मोहल्ला, पड़ोस, रिश्ते नाते, बच्चे, परिवेश, पर्यावरण, स्त्री विमर्श, लेखन, प्रकाशन, सम्मान की राजनीति आदि सभी विसंगतियों पर लिख रही हैं। महिला लेखन में फिट है ह्यूमर है, आइरनी है, कटाक्ष, पंच आदि सब मिलता है। हर लेखिका की रचनाओं का कलेवर उसकी अभिव्यक्ति की क्षमता और अनुभव के अनुरूप सर्वथा विशिष्ट है। व्यंग्य लेखन को ये लेखिकायें पूरी संजीदगी से निभाती नजर आती हैं। सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि महिला व्यंग्य लेखन में कहीं प्राक्सी नहीं है जैसा महिलाओं को लेकर अन्य क्षेत्रों मे प्रायः होता दिखता है। उदाहरण के लिये गांवों में महिला सरपंच की जगह उनके पति भले ही सरपंचगिरी करते मिलें किन्तु संतोष है कि महिला व्यंग्य लेखन में पूर्ण मौलिकता है। महिलाएँ व्यंग्य के पंच की अपने आप में सक्षम सरपंच स्वयं हैं।

मंटो की कलम की जरूरत

राजेन्द्र वर्मा

सआदत हसन मंटो का जन्म पंजाब के उस हिस्से में हुआ था, जो आज पाकिस्तान में है। वे उर्दू में लिखते थे। इस लिहाज से वे पाकिस्तानी लेखक हुए और वह भी उर्दू के। लेकिन उन्होंने जो धारदार कहानियाँ लिखीं, वे पाकिस्तान ही नहीं, भारतीय समाज में व्याप्त विसंगतियों, विद्रूपताओं और पाखण्ड को बेबाक़ी से उजागर करती थीं और अपनी सांद्र संवेदना, मार्मिकता और प्रहारात्मकता से हिंदी उर्दू की भाषिक सीमा भी तोड़ती थीं।

वैसे भी देश के बँटवारे से पहले दोनों देश एक थे, उनकी भाषाएँ एक थीं। एक मज़हब ने उन्हें तोड़ा, लेकिन क्या उसके बाद भी मज़हबी मसले हल हुए? साहित्य हमेशा धर्म-जाति जैसी बातों से ऊपर होता है। उसकी दुनिया और भी व्यापक होती है, उसमें भाषाई भेद भी दम तोड़ देते हैं। इसलिए साहित्यकार किसी एक देश का नहीं, पूरी दुनिया का होता है, मानवता का होता है। मनुष्य मात्र की पीड़ा का चित्रण और उससे छुटकारा पाने का ध्येय ही साहित्यिक लेखन कहलाता है। जो बड़े लेखक होते हैं, उनका लेखन किसी देश की सीमा तक ही नहीं रह जाता, वह पूरे विश्व तक पहुँचता है। मंटो ऐसे ही लेखक हैं। यही कारण है कि वे पाकिस्तानी लेखक भर नहीं हैं। कम-से-कम भारत में उनकी वही पहचान है जो पाकिस्तान में है। उनकी कहानियों का अनुवाद न केवल हिंदी, बल्कि पंजाबी, मराठी, गुजराती, तमिल, कन्नड़ आदि भाषाओं में हुआ है। इस प्रकार वे भारतीय लेखक ठहरते हैं। वैसे भी मंटो जैसे लेखक न पाकिस्तानी हो सकते हैं और न हिंदुस्तानी। वे इंसानियत के लेखक हैं। वे धर्म जाति, देश आदि से परे एक ऐसे समाज की रचना करना चाहते हैं जहाँ इंसानियत का राज हो। देशों के बँटवारे में एक जगह ऐसी भी रहती है जो किसी भी देश के क़ब्ज़े से बाहर रहती है और वह है नो मेंस लैंड। देश के बँटवारे से आहत इंसानियत के पक्ष में खड़े एक ईमानदार लेखक की वही ज़मीन है। तभी तो उनका 'टोबा टेक सिंह' कहानी के रूप में नो मेंस लैंड पर खड़ा है। यह एक ऐसी कहानी है जिसका अनुवाद दुनिया की तमाम भाषाओं में हुआ है।

उनका लेखन यथार्थवादी और क्रांतिधर्मी है। उनकी कहानियाँ यौनाचार, यौनकुंठा, वेश्यावृत्ति और मज़हब के आधार पर हुए देश के बँटवारे में हुए दंगे और उनमें लूट-पाट और बलात्कार जैसे वर्ज्य विषय उठाती हैं। वेश्याओं के जीवन पर जितना तथ्यपरक और मार्मिक विवरण मंटो के पास हैं, वह शायद ही किसी के यहाँ मिले। पात्रों के मनोविज्ञान के तो वे मास्टर हैं। अपने लेखन से वे शायद पात्रों की आत्मा से पाठकों को मिलवाना चाहते थे। संवेदना उपजाने का यह वास्तव में बहुत कठिन उद्योग है। उनकी यह चिंता बराबर अफ़सानों में उतरती रही कि, 'जिस्म दाग़ा जा सकता है, मगर रूह नहीं दाग़ी जा सकती।' पुरुष द्वारा यौन शोषण उसकी पाशविक प्रवृत्ति है, जबकि इसके लिए वह अक्सर स्त्रियों के कपड़ों को दोष देता है। इस बिंदु पर मंटो कहते थे, "आप दुनिया की तमाम औरतों को बुर्का पहना दें, फिर भी हिसाब आँखों का देना होगा।"

कहानी लेखन में उन्होंने कला की अपेक्षा कथ्य को वरीयता दी। कहानी में ज़िंदगी के विवरण कैसे आएँ, इस पर उनका मानना था, 'ज़िंदगी को उसी शक्ल में पेश करना चाहिए, जैसी कि वह है, न कि वह जैसी थी, या जैसी होगी या होनी चाहिए।' अपने लेखन में वे सड़े-गले समाज को ज्यों-का-त्यों प्रस्तुत कर उसकी आँखें खोलना चाहते थे, उसे बदलना चाहते थे। सामाजिक विसंगतियों में वे गहरे डूब कर लिखते थे। किसी ने उनसे पूछा कि वे इतने ज़बरदस्त अफ़साने कैसे लिख लेते हैं, इस पर उन्होंने कहा, 'मैं अफ़साना नहीं लिखता, अफ़साना मुझे लिखता है। कभी-कभी हैरत होती है कि यह कौन है जिसने इतने अच्छे अफ़साने लिखे हैं!'

पूँजीवाद के विरुद्ध भी वे खुलकर कहते थे, 'मैं बग़ावत चाहता हूँ। हर उस फ़र्द (आदमी) के ख़िलाफ़ बग़ावत चाहता हूँ जो हमसे मेहनत कराता है, मगर उसके दाम नहीं

अदा करता।' इसमें उन्हें सफलता भी मिली। तभी उन्हें चेखव, गोर्की, मोपासाँ जैसी दुनिया के बड़े लेखकों में शुमार किया जाता है। लेकिन उन्हें वह सम्मान नहीं मिला जिसके कि वे हक़दार थे। इस बात को उर्दू के मशहूर लेखक कृष्णचंदर ने बहुत मार्मिकता से कहा है। उनकी तुलना गोर्की से करते हुए उन्होंने लिखा कि प्रगतिशील लोगों ने अपने महान लेखकों के लिए म्युजियम बनवाए, उनकी मूर्तियाँ लगवाईं, उनके नाम पर नगर तक बसा दिए और हमने मंटो पर मुकदमे चलाए, उन्हें भूखा रखा, पागलखाने तक पहुँचाया।

मंटो को बहुत उपेक्षा मिली, लेकिन वे टूटे नहीं। कहानी कला को उन्होंने ऊँचाई दी उसमें अनेक वर्ज्य प्रसंगों को आंदोलनकारी ढंग से उठाया, जो उस समय तक लेखकीय कल्पना से बाहर थे, जैसे वेश्याओं के जीवन पर कहानियाँ, अन्य मानवीय कार्य व्यापार की भाँति यौनाचार की दुर्बलता, स्त्री की यौनिकता को लेकर पुरुष मानसिकता। उन्होंने उनके जीवन में गहरे झाँकने और उन्हें औरत समझते हुए उनकी पीड़ा को मार्मिकता के साथ दिखाने का साहस किया। देश के बँटवारे के समय, दंगा, लूट, हत्या और बलात्कार जैसे विषय उन्होंने कहानियों में अद्‌भुत त्वरा के साथ समेटा और हतप्रभ कर देने वाले चित्र खींचे कि कैसे सियासत, मज़हब के इस्तेमाल से आम आदमी को कितना अमानवीय, हिंसक और घृणित बना देती हैं! लेकिन उनके पात्र केवल खल पात्र नहीं हैं, कथा-विवरणों के बीच वे परिस्थितिजन्य असहायता के चलते पाठकीय सहानुभूति भी अर्जित करते हैं। 'ठंडा गोश्त' कहानी इसकी मिसाल है। 'टोबा टेक सिंह' देश के बँटवारे से उपजी घृणित और हिंसक मानसिकता को सामने लाती दिल दहला देने वाली कहानी है। विभाजन के बाद पागलों और कैदियों के बँटवारे को लेकर यह कहानी अपने कथा शिल्प के चलते दुनिया भर की मशहूर कहानियों में शामिल है। इसका नाट्य-रूपांतरण भी बहुत महत्त्वपूर्ण है जिसके सैंकड़ों नुक्कड़ नाटक हो चुके हैं।

अपने 42 वर्ष के जीवन में उन्होंने विपुल साहित्य रचा। उन्होंने हमें बाईस कहानी संग्रह, एक उपन्यास, पाँच नाटक और दो रेखाचित्र दिए। उनकी कहानियों को उनके विषयवस्तु के आधार पर दो भागों में बाँटा जा सकता है : देश के बँटवारे से पहले की कहानियाँ और उसके बाद की कहानियाँ। लेकिन इन कहानियों में जो विवादास्पद हैं, उनकी चरचा सबसे अधिक होती है। उन पर अश्लीलता के मुकदमे चले। उनकी छह कहानियों पर मुकदमे दायर हुए। इन्हें भी उपर्युक्त के अनुसार दो भागों में बाँटा जा सकता है 'काली सलवार', 'धुआँ' और 'बू', बँटवारे से पहले की और 'ठंडा गोश्त', 'खोल दो' और 'ऊपर, नीचे और दरमियान' बँटवारे के बाद की। इन सभी में यौन चर्चा अवश्य हैं, पर यह पात्रों की अलग-अलग मानसिकता से उपजी है। यह नितांत परिस्थितिजन्य है और उनमें कहीं भी नैसर्गिक आनंद के व्यापार की पैठ नहीं है। एक विद्रूप का चित्रण है जिसके पाठ से हम विचलित होते हैं, पात्रानुकूल मानसिकता में आनंदित होने की सोच भी नहीं सकते।

'ठंडा गोश्त' और 'खोल दो', मंटो की अति चर्चित कहानियाँ हैं। दोनों ही में देश के बँटवारे के दौरान दंगा, हत्या और बलात्कार की रक्त जमा देने वाली घटनाओं को दिखाया गया है। 'ठंडा गोश्त' सरदार ईश्वर सिंह दंगे में एक लड़की को बलात्कार के इरादे से उठा ले जाता है, लेकिन एकांत में पाता है कि वह तो लाश है। इस पर उसे इतना झटका लगता है कि बाद में जब वह अपनी पत्नी से संबंध बनाना चाहता है तो नाकाम रहता है। प्रेमालाप में संवादों के बीच पत्नी बेवफ़ाई के शक़ में सरदार को ख़ंज़र से घायल कर देती है और कहानी के समापन तक उसकी मृत्यु हो जाती है। 'खोल दो' बहुत ही मार्मिक कहानी है। सिराजुद्दीन की बेटी दंगे में लापता हो जाती है और सामूहिक बलात्कार का शिकार होती है। किसी प्रकार पिता को पता चलता है कि उसकी बेटी अस्पताल में लाश की तरह पड़ी है। बंद कमरे में डॉक्टर जब लड़की को नब्ज़ देखने लगता है तो पिता से खिड़की खोलने का संकेत करते हुए कहता है, 'खोल दो'। तभी हृदय को दहलाने वाली बात यह होती है कि 'खोल दो' शब्दों को सुनते ही लड़की अवचेतन में अपना सलवार खोल देती है।

'काली सलवार' में एक वेश्या की मार्मिक कहानी है।

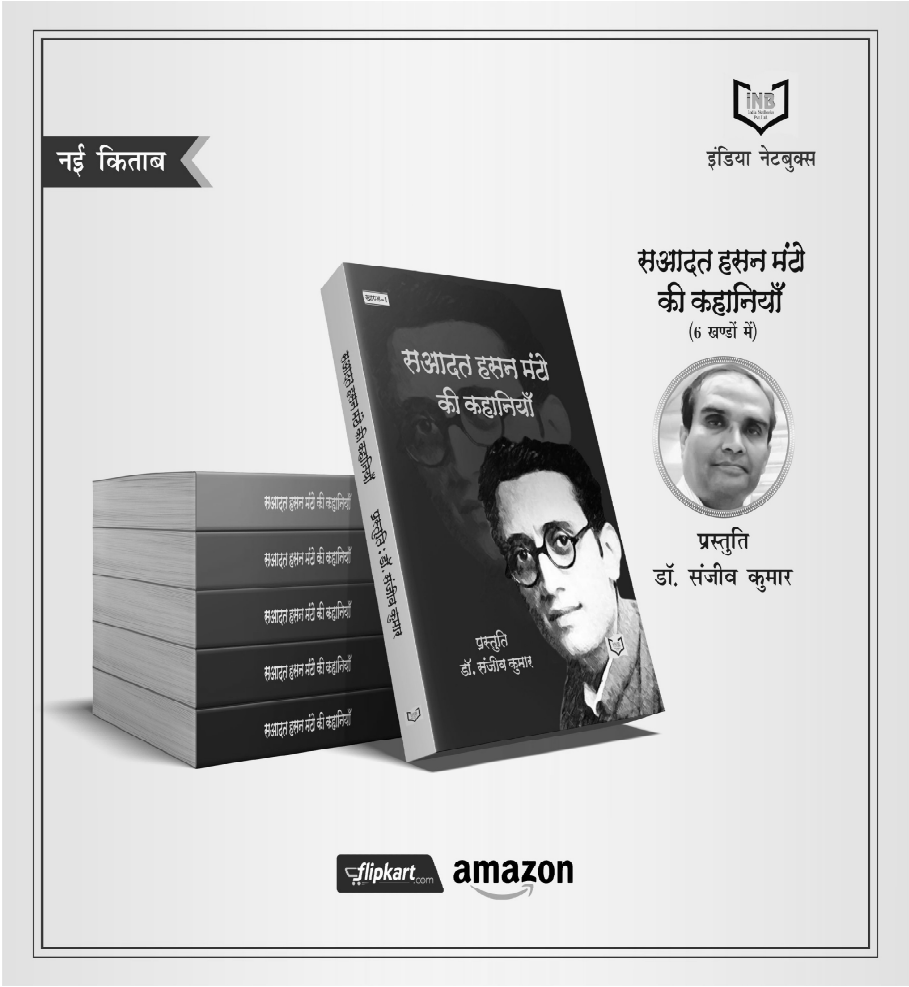

व्यक्तिगत अनुभवों की ही कहानी नहीं है, उसका सामाजिक दायरा भी है। फर्क इतना है कि हम उस पर खुलकर चर्चा नहीं करते, आपसे में फुसफुसाते हैं। 'काली सलवार' के अलावा वेश्या जीवन पर उनकी अन्य मशहूर कहानियाँ है हतक, बाबू गोपीनाथ, अंजाम बख़ैर, शारदा आदि। 'अल्लाह दत्ता' दंगे में लुटे-पिटे परिवार की वह विडम्बनात्मक कहानी है जिसमें बाप अपनी बेटी के साथ मुँह काला करता है। यौन-विवरणों वाली कहानियों के बारे में मंटो के विचार उनकी कहानी 'चुगद' में आए हैं, जिसमें वे कहते हैं कि यौन इच्छा एक पशु प्रवृत्ति है। इसके लिए किसी स्कीम की ज़रूरत नहीं पड़ती...मंटो की कहानियों में घृणा, हिंसा और तथाकथित अश्लीलता से भरे दृश्यों के चित्रण से उस समय के समाज के अलम्बरदार और छद्म बुद्धिजीवी बौखला उठे और उन पर मुकदमे दायर कर दिए। लेकिन मंटो तो मंटो थे, वे डरे नहीं और लगातार बेबाक़ी से लिखते रहे। अधिकतर मुकदमों में सफाई खुद ही सफ़ाई दी। मज़े की बात यह कि अश्लीलता का कोई भी आरोप सिद्ध नहीं हुआ। अश्लीलता के आरोप पर मंटो का एक ही जवाब था कि अगर आपको उनकी कहानियाँ अश्लील या गंदी लगती हैं, तो जिस समाज में आप रह रहे हैं, वह

'धुआँ' नाबालिग भाई-बहन के किशोर जीवन में आ रहे यौन-बदलाव की कहानी है। बाद में यह बहन के लेस्बियन होने की कहानी कहती है। यह गहरे सरोकार की कहानी है। 'बू' एक ऐसे युवक की कहानी है जो एक लड़की के साथ यौन संबंध बनाता है और उसकी प्राकृतिक देह गंध, यानी बू को कभी नहीं भुला पाता। यहाँ तक कि अपनी सुहागरात में भी वह उससे पीछा नहीं छुड़ा पाता। नीचे और दरमियान' उम्रदराज़ दंपत्ति की यौन-आकांक्षा की कहानी है। इन दोनों कहानियों में वह सामाजिक सरोकार नहीं दिखता जो मंटो की अन्य कहानियों में सहज ही द्रष्टव्य है। तथापि, यह

अश्लील और गंदा है। मेरी कहानियाँ तो सच दिखलाती हैं। जो बुराइयाँ हैं, वे युग की बुराइयाँ हैं।

कहानियों के अलावा मंटो ने बग़ावती तेवर वाले कई लेख लिखे। 'हिंदुस्तान को लीडरों से बचाओ' उनका ऐसा ही एक लेख है, जिसमें वे कहते हैं, "हम एक अरसे से यह शोर सुन रहे हैं कि हिंदुस्तान को इस चीज़ से बचाओ, उस चीज़ से बचाओ मगर वाक़िया यह है कि हिंदुस्तान को उन लोगों से बचाया जाना चाहिए जो इस क़िस्म का शोर पैदा कर रहे हैं।

ये लोग शोर पैदा करने के फ़न में माहिर हैं। इसमें कोई शक़ नहीं, मगर इख़लास (सच्चा प्रेम) से बिलकुल ख़ाली हैं। रात को किसी जलसे में गर्मागर्म तक़रीर करने के बाद जब ये लोग अपने पुर तकल्लुफ़ बिस्तरों में सोते हैं तो उनके दिमाग़ बिलकुल ख़ाली होते हैं। उनकी रातों का ख़फ़ीफ़ तरीन हिस्सा भी इस ख़याल में नहीं गुज़रा कि हिंदुस्तान किस मर्ज़ में मुब्तला है।

दरअसल, वो अपने मर्ज़ के मुआलिजे में इस क़दर मसरूफ़ रहते हैं कि उन्हें अपने वतन के मर्ज़ के बारे में ग़ौर करने का मौक़ा नहीं मिलता। इसी लेख में वे आगे युवाओं का आह्वान करते हैं, ज़रूरत है कि फटी हुई क़मीसों वाले नौजवान उठें और अज्म ओ ख़श्म को अपनी चौड़ी छातियों में लिए इन नाम निहाद लीडरों को इस बुलंद मुक़ाम से उठा कर नीचे फेंक दें। जहाँ ये हमारी इज़ाज़त लिए बग़ैर चढ़े बैठे हैं। उनको हमारे साथ, हम ग़रीबों के साथ हमदर्दी का कोई हक़ हासिल नहीं।

'सियाह हाशिए' उनकी मशहूर रचना है, जिसमें छोटी-छोटी 24 कहानियाँ हैं, जिनमें से आज की शैली की कुछ लघुकथाएँ भी हैं। इनमें हिंदू-मुस्लिम दंगाइयों के हिंसक कारनामे हैं, नियोजित बलात्कार हैं, शिकारी दल में शामिल छोटे शिकारियों के भी शिकार हैं, असहाय लोगों की चीखें और मौते हैं और पुलिस के हाथ से छूटा हुआ कानून है। इन कहानियों के कुछेक सन्न कर देनेवाले चित्र देखिए–

हलाल या झटका

मैंने उसके गले पर छुरी रखी। धीमे-धीमे चलाई और उसको हलाल कर दिया।

यह तुमने क्या किया?

क्यों?

इसको हलाल क्यों किया?

आनंद आता है इस तरह।

आनंद आता है के बच्चे! तुझे झटका करना चाहिए था इस तरह!

और हलाल करने वाले का झटका हो गया।

मिस्टेक

छुरी पेट चाक करती हुई नाक के नीचे तक चली गई। इजारबंद कट गया। छुरी मारने वाले के मुँह से तुरंत अफ़सोस के शब्द निकले, "च, च, च, च! मिस्टेक हो गया।"

इस्लाह

कौन हो तुम?

तुम कौन हो?

हर हर महादेव हर हर महादेव... हर हर महादेव!

सबूत क्या है?

सबूत मेरा नाम धर्मचंद है।

यह कोई सबूत नहीं।

चार वेदों में से कोई भी बात मुझसे पूछ लो।

हम वेदों को नहीं जानते, सबूत दो।

क्या?

पायजामा ढीला करो।

पायजामा ढीला हुआ तो शोर मच गया मार डालो, मार डालो।

ठहरो, ठहरो, मैं तुम्हारा भाई हूँ। भगवान की कसम, तुम्हारा भाई हूँ।

तो यह क्या सिलसिला है?

जिस इलाके से आ रहा हूँ, हमारे दुश्मनों का था। इसलिए मजबूरन मुझे ऐसा करना पड़ा, सिर्फ अपनी जान बचाने के लिए एक यही चीज गलत हो गई है, बाकी बिलकुल ठीक हूँ।

उड़ा दो गलती को।

गलती उड़ा दी गई। धर्मचंद भी साथ उड़ गया।

घाटे का सौदा

दो दोस्तों ने दस बीस लड़कियों में से एक चुनी और 42 रुपये देकर उसे खरीद लिया। रात गुजारकर एक दोस्त ने पूछा, 'तुम्हारा नाम क्या है?'

लड़की ने नाम बताया तो वह भन्ना गया, "हमसे तो कहा गया था कि तुम दूसरे मजहब की हो।"

लड़की ने जवाब दिया, 'उसने झूठ बोला था।'

यह सुनकर वह दौड़ा-दौड़ा अपने दोस्त के पास गया और कहने लगा, 'उस हरामजादे ने हमारे साथ धोखा किया है। हमारे ही मजहब की लड़की थमा दी। चलो, वापस कर आएँ।'

मंटो को दुनिया से गए क़रीब सत्तर साल होने को आए, लेकिन सामाजिक स्थितियाँ नहीं बदलीं वे चाहे इधर की हों या उधर की। आज भी दोनों तरफ़ साम्प्रदायिक मुद्दों पर गंदी राजनीति हो रही है, आए दिन दंगे हो रहे हैं, स्त्रियों की इज़्ज़त लूटी जा रही है, आदमी की अधोगति बनी हुई है। पुलिस प्रशासन नाकारा बना हुआ है। न्यायालय कुछ लोगों के लिए ही बने हुए दिखते हैं। ऐसे में मंटो का लेखन आज भी प्रासंगिक बना हुआ है।

दुनिया की मूल समस्याएँ आज भी पहले ही की तरह मुँह बाए खड़ी हैं, मसलन भूखे को रोटी की ज़रूरत, स्त्री की इज़्ज़त पर ख़तरा, मज़हब का इनसानी रूप का न होना, पत्रकारिता का अपने उद्देश्य से डिगना, या फिर भाषा की लड़ाई। उनका लेखन हमें व्यक्ति और सामाजिक प्रतिनिधि के रूप में न केवल अपने भीतर झाँकने पर मजबूर करता है, बल्कि कुछ हद तक जिम्मेदार ठहराते हुए कटघरे में भी खड़ा करता है। उनके लेखन की कुछ बातें आज भी हमारे ज़ेह्न पर तारी हैं, जैसे—

दुनिया की जितनी लानते हैं, भूख उनकी माँ है।

आदमी या तो आदमी है वरना आदमी नहीं, गधा है, मकान है, मेज़ है या और कोई चीज़ है।

हर औरत वेश्या नहीं होती, लेकिन हर वेश्या औरत होती है।

कोठे की तवायफ़ और एक बिका हुआ पत्रकार दोनों एक ही श्रेणी में आते हैं, लेकिन इनमें तवायफ़ की इज़्ज़त ज़्यादा होती है।

मैं अदब और फ़िल्म को एक ऐसा मयख़ाना समझता हूँ, जिसकी बोतलों पर कोई लेबल नहीं होता।

हिन्दुस्तान में सैंकड़ों की तादाद में अख़्बारात-ओ-रसाइल छपते हैं, मगर हक़ीक़त ये है कि सहाफ़त (पत्रकारिता) इस सरज़मीन (मुल्क) में अभी तक पैदा ही नहीं हुई है।

हिन्दी के हक़ में हिंदू क्यों अपना वक़्त ज़ाया करते हैं। मुसलमान, उर्दू के तहफ़्फ़ुज़ के लिए क्यों बेक़रार हैं? ज़बान बनाई नहीं जाती। वह ख़ुद बनती है और न इंसानी कोशिशें किसी ज़बान को फ़ना कर सकती हैं।

पहले मज़हब सीनों में होता था, आजकल टोपियों में होता है। सियासत भी अब टोपियों में चली आई है। मजहब जब दिलों से निकलकर दिमाग पर चढ़ जाए तो वह ज़हर बन जाता है। मत कहिए कि हज़ारों हिंदू मारे गए या फिर हज़ारों मुसलमान मारे गए, सिर्फ़ यह कहिए कि हज़ारों इनसान मारे गये।

एक आदमी का मरना मौत है। एक लाख आदमियों की मरना तमाशा है।

कहना न होगा कि आज के समाज की तस्वीर की कल्पना दोनों देश के निर्माताओं ने कदापि न की होगी। लेकिन यह तस्वीर दिनोंदिन और बदरंग होती जा रही है। भोगवादी प्रवृत्ति में रमते-रमते हमारी संवेदना भोथरी हो चुकी है। हम ख़ुद को इनसान समझें और देश-दुनिया को सही दिशा में ले जा सकें इसके लिए आज हमें मंटो के क़लम की ज़रूरत है।

उनके सोच को लेखन में उसी धार के साथ उतारने की ज़रूरत है कि कुछ सकारात्मक बदलाव दिखे। कलावादी लेखकों को आईना दिखाते और दुनिया के बुनियादी मसलों को क़लम के औज़ार से हल करने की कोशिश करने वाले हर दिल अजीज़ अफ़सानानिगार को नमन!

दुनिया इधर उधर

डॉ. देवेन्द्र नाथ सिन्हा

आज विश्व के सभी देश स्वार्थ के कारण मित्रता करते हैं। और वह भी एक-एक सम्मेलन कर बाद में शिखर वार्ता। कुछ बातों के लिये एकता व्यापार ही एक कारण बन गया है। जिसमें थोड़ा बहुत कार्य कुछ देशों में होता है, अन्यथा सभी देश एक दूसरे को ऊपर नीचे करने में लगे हैं। बड़े देश का व्यापार युद्ध या विनाश के लिए सामानों का निर्यात करना कमजोर देश को भोजन, हथियार बेचना ही मित्रता का मूल कारण है, और इसी से विश्व के देशों पर अधिपति दिखाना एक दूसरे देश को लड़वाना आपसी मन मुटाव को बढ़ाना ही कूटनीति का कार्य हो गया है। यदि दो देश आपस में लड़ते हैं तो उनके बीच भाई-चारे की बात नहीं करते हैं। चाहते हैं, वे लड़ते रहें मेरी रोटी सेंकी जाती रहे यही विदेश नीति का आधार हो गया है। इसी उद्देश्य को लेकर अपना ग्रुप बनाते और कार्य हो जाने पर अपने मनसूबों को अलग करते हैं। ईंधन एक बहुत बड़ा कारण है। तेल क्षेत्र की रूप रेखा अलग है। वे प्राकृतिक सम्पदा पर गर्व करते हैं और अपना व्यापार करते हैं। तेल बेचते दुनिया पर अपनी साख का पताका लहराते हैं। तेल भी एक युद्ध का कारण है। किस तरह तेल के कुएँ को प्राप्त कर लिया जाए, पूर्व में कुछ युद्ध इन्हीं कारणों से हुए हैं। जबकि तेल एक प्राकृतिक सम्पदा है जब तेल के कुएँ समाप्त होंगे तो धरती का क्या होगा? पर्यावरण, मानवअधिकार, गरीबी उन्मूलन एवं कुपोषण पर बात नहीं करते। इसमें देशों को मदद करनी पड़ेगा।

संयुक्त राष्ट्र संघ का मुख्यालय अमेरिका में है। वह भी आज अभाव में आ गया है। खर्चा चलाने के लिए पैसों की आवश्यकता है। पहले वो जिस उद्देश्य के खातिर बनाया गया था आज उन उद्देश्यों की जगह अर्थात उन उद्देश्यों का प्रभाव कम हो गया है। यह संघ हर वर्ष राष्ट्र अध्यक्षों को बुलाकर भाषण करवाता है, फिर उन पर विचार किया जाता है तथा देश अपनी समस्याओं व चिंताओं को सम्पूर्ण विश्व को इस संघ (संगठन) के माध्यम से अवगत कराते हैं और लोगों से समाधान की आशा रखते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ अब पत्थर की मूर्ति बन गया है। खामोश ही रहना पसन्द करता है। हर वर्ष विश्व के देश कुछ मिनटों के भाषण के लिए इसपर कितना खर्च करते होंगे। आज यही आर्थिक अभाव में अपनी प्राचीन गरिमा पर तरस रहा है।

गरीब देश की बात की क्या चिन्ता है? पर्यावरण, शिक्षा, चिकित्सा, दैवी आपदा, ग्लोबल वार्मिंग, रहने के लिए मकान, कपड़ा और रोटी की बात कौन करे? डिवलपमेंट की बातें हो रही हैं। रोजगार का दायरा ई अक्षर लगाने से हल हो रहा है। ई अक्षर जिस शब्द के पहले लग जाए वह मोक्ष प्राप्त कर लेगा। रोजगार भी एक प्रकार के युद्ध के समान ही है किन्तु इसका समाधान नामुमकिन लगता है।

वसुधैव कुटुंबकम का नारा भारत ही लगाता है। यहाँ की संस्कृति और सभ्यता काफी पुरानी है। यह बुद्ध और गाँधी का देश है जो युद्ध नहीं चाहता क्योंकि सत्य और अहिंसा का उपदेश भारत से ही विश्व के कई देशों में गया है और जिसे अपनाने की इच्छा देशों ने दिखाई। युद्ध कई बार हुए किन्तु उसे जीतने वाला कोई इस दुनिया में स्थायी नहीं रहा। नयी टेक्नोलॉजी के आने से घर पर बैठे ही पड़ोसी या दुनियां को तबाह किया जा सकता है, लेकिन किसकी जीत होगी और कौन हारेगा ये सब बातें लोगों को मालूम है फिर युद्ध एवं सुरक्षा की तैयारी में देश गरीबों पर पैसा न लगाकर हथियार का सौदा कर रहे हैं। सम्राट अशोक ने कलिंग युद्ध के बाद "बुद्धम शरणम् गच्छामि" सिद्धांत को अपनाया, आखिर जीवन है ही कितने दिनों का। मानवता बनी रहेगी किन्तु मानव तो अमर नहीं हो सकता कितना भी उपाय क्यों न किया जाए, उस पर कोई विचार नहीं करता। युद्ध की परिभाषा मानव मस्तिष्क की कमजोरियों से जुड़ी हुई है। मनुष्य में सोचने की शक्ति कम हो जाती है तथा मानवता के प्रति उसका लगाव कम हो जाता है, उसी समय यह विकार कष्ट दायक निर्णय देता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में सभी बातों का उल्लेख है। लेकिन अमल नहीं किया जाता। जी.डी.पी. को नापते रहते लेकिन कोई खास परिवर्तन दिखाई नहीं देता। प्रकृति अपनी संतुलन प्रणाली पर निर्भर है। पृथ्वी 75 प्रतिशत चारों तरफ से समुद्र अर्थात खारे पानी से घिरी हुई है। समुद्र से लगे हुए देश अपने 2 युद्ध पोतों को लेकर सुरक्षा में लगे हुए हैं। व्यापार का साधन भी है। समुद्र जल मार्ग का साधन बहुत पुराना है। व्यापार आजकल देशों से समुद्र जल मार्ग से होता है। समुद्र का पानी खारा होता है तो पीने योग्य पानी महँगा पड़ता है। वातावरण परिवर्तन से कार्बन डाइऑक्साइड का उत्सर्जन बहुत बढ़ गया है। गर्मी बढ़ती जा रही है, ग्लेशियर पिघल रहा है। सम्पूर्ण पानी धीरे-धीरे आबादी एवं नदियों से होते हुए समुद्र में चला जा रहा है। पीने के पानी की कमी अब बोतल बंद पानी व्यापार में आ गया है। यह भी एक विशाल समस्या आ खड़ी हुई है। अतः कहा जा सकता है कि भविष्य में पानी भी एक सामाजिक युद्ध का कारण बनेगा। यह भी समुद्र मंथन जैसी समस्या पैदा करेगा। जब तेल के कुएँ के लिए युद्ध हो सकता है तो पानी (जो कि जीवन का आधार है) के लिए युद्ध न हो यह कैसे संभव है अर्थात लोग आपस में ही लड़ मरेंगे। जल स्त्रोत अब पहाड़ों पर कम मिलने लगे हैं अर्थात पहाड़ों पर जल स्त्रोतों का अभाव होता जा रहा है।

ANATOMY OF AGING

DR. DEVENDRA NATH SINHA

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥

दैवीय आपदा जैसे भूकम्प, बाढ़, पहाड़ों का गिरना, अत्यधिक वर्षा, जंगलों में आग लगना, समुद्र का बढ़ना जैसे सुनामी इत्यादि कब आ जाएँ तब जीवन का क्या होगा ऐसे ही विनाश के लक्षण साफ दिखाई दे रहे हैं। नेता दिन भर विकास और परिवर्तन जो कि एक नयापन लिए हुए हो के लिए सोचते रहते हैं। लेकिन जब हो जाएगा एक दूसरे पर कारण डाल देते हैं। युद्ध के लिए आंतरिक कारण, वाह्य कारण तथा अंतर्राज्यीय कलह आदि सभी हो सकते हैं। बीमारी आजकल बेइलाज हो रही है। इस पर कार्य नहीं हो रहा है। बीमारी इन्स्योरेन्स से लड़ रही है। पैसा, गोला बारूद की तरह विनाशलीला देखते निहाल हो रहा है। गरीबी से युद्ध में ईश्वर भी हार रहे हैं।

कुछ दिनों पहले अमेरिकी राष्ट्रपति 'डोनाल्ड ट्रम्प' और कोरियन तानाशाह 'किम जोंग उन' हथियारों के लिए आपस में एक दूसरे से बात करते हैं। अखबार और चैनलों में बैठकर लोग युद्ध के बारे में बात करते हैं। अखबार व चैनल देश के चौथे स्तम्भ हैं। उनको कौन फण्ड देता है। दिनभर सेटलाइट का इस्तेमाल अपनी टी.आर.पी. बढ़ाने के लिए करते हैं। कुछ चैनल तो युद्ध का उन्माद बढ़ाने में लगे रहते हैं। युद्ध होगा तो उनका क्या होगा। सामाजिक व्यवस्था में युद्ध जैसे हालात पैदा करते हैं और समझते हैं कि यही विकास का नारा है। युद्ध उन्माद को कैसे बढ़ाया जाता है ये तो सोशल मीडिया से सीख सकते हैं। मीडिया देश के अंदर कृषि एवं शिक्षा के बारे में ज्यादा बल नहीं देते फिर भी वो सब देशभक्त हो जाते हैं। सामाजिक व्यवस्था को कितना अच्छा बनाया जाए, उसकी चर्चा होनी चाहिए। कार्य को स्वरुप में परिणत करके धरातल में उतारने सम्बन्धी चर्चाएँ हों जिससे लोगों में विश्वास और परायणता की भावना जाग्रत हो। जीवन मूल्य है जिसकी सीमा और उम्र है। सभी को विकास का अनुभव हो। इसमें सभी के टैक्स का पैसा लगता है, और फिर कृषि प्रधान देश की खबर कृषि संबंधित सबसे कम ऐसा क्यों सोचना पड़ेगा। जिस देश की अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण अंचलों की हो फिर उन ग्रामीण अंचलों के लोगों का अधिकार सिर्फ वोट देने तक ही सीमित कर दिया जाए ये कैसा न्याय है। लोकतंत्र में लोक गायब कर तंत्र के सहारे शासन को चलाया जाता है। जनता सिर्फ तमाशबीन होकर देख सकती हैं वो भी मूक और बधिर होकर। समय को देखें, सुनें और कार्य करें। इतिहास में आप भी रहेंगे किन्तु बाद में नए पृष्ठ जोड़ दिए जायेंगे और आप फिर कहीं नहीं होंगे। नए भारत की रचना लोग करेंगे। डिजिटल इंडिया का नारा लगेगा।

संवाद

"भाषा और संस्कृति एक दूसरे के पूरक हैं" : गिरीश पंकज

आलोक सक्सेना की गिरीश पंकज से बातचीत

मन में बहुत उत्सुकता थी कि वरिष्ठ साहित्यकार गिरीश पंकज जी से लंबी बातचीत की जाए। आखिर वह मौका आ ही गया और मैंने उनसे 'हिंदी है संस्कृति हमारी' विषय को लेकर अपनी बातचीत की। हिंदी है संस्कृति हमारी और भाषा को लेकर नव ज्ञान प्राप्त किया और भारतीय समाज कल्याण निहित इस साक्षात्कार का जन्म हुआ। मैंने उनसे बातों ही बातों में जो बातों का सिलसिला आरंभ किया तो वह एक उत्कृष्ट साक्षात्कार का रूप धारण कर गया। श्रीमान गिरीशचंद्र उपाध्याय को हिंदी साहित्य जगत में गिरीश पंकज के नाम से जाना जाता है। आदरणीय गिरीश पंकज सद्भावना दर्पण, भारतीय एवं विश्व साहित्य के अनुवाद की त्रैमासिकी के संपादक भी हैं। वे हिंदी सलाहकार समिति, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत एवं साहित्य अकादमी, नई दिल्ली (2008-2012), के सदस्य रहे। आजकल वे छत्तीसगढ़ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के प्रांतीय अध्यक्ष हैं। आपको वर्ष 2018 में व्यंग्यश्री सम्मान से सम्मानित किया गया। 10 उपन्यास, 28 व्यंग्य संग्रह, 4 कहानी संग्रह, 7 ग़ज़ल संग्रह सहित अब तक उनकी 100 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रस्तुत हैं उनके साथ हुए साक्षात्कार संवाद के अंश

भाषा और संस्कृति एक-दूसरे के पूरक हैं

प्रश्न-1 : 'हिंदी है संस्कृति हमारी' उक्त संबंध में आपके क्या विचार हैं?

उत्तर : संस्कृति हमारे जीवन का अमूल्य हिस्सा है। संस्कृति के माध्यम से किसी भी समाज का एक रूप हमारे सम्मुख होता है। जब हम संस्कृति कहते हैं, तो इसका अर्थ यह है कि हम अपने जीवन को अलंकृत कर रहे हैं। सजा रहे हैं। सँवार रहे हैं। संस्कृति एक तरह से हमें, हम सबको नित नवीन करती है। संस्कृति से संस्कार शब्द भी जुड़ा हुआ है। जब हिंदी की संस्कृति बोलते हैं, तो उसका मतलब यह हुआ कि यह भाषा हमारी प्राचीन परंपरा का हिस्सा है। उसने ही हमें जीवन जीने के व्यवस्थित संस्कार दिए। संस्कृति एक तरह से व्यवहार ही है। हम जिस भाषा का व्यवहार करते हैं, उस भाषा की परम्परा भी आत्मसात करते चलते हैं। हमारी हिंदी हमारी संस्कृति है जिसमें लोक मंगल की कामना, लोक परिष्कार, लोक कल्याण जैसे उदारवादी चिंतन समाहित हैं। हिंदी भाषा संस्कृत की कोख से निकली है। जिसके शब्द में ही संस्कार है। सुकृति है। कह सकते हैं कि संस्कृत भाषा गंगोत्री है, जहाँ से हिंदीरूपी गंगा का उद्गम हुआ है। जब हम हिंदी की संस्कृति कहते हैं, तो इसमें सहज, सरल भाषा, उसका उन्नत व्याकरण, उसका सुमधुर व्यवहार यह सब सम्मिलित होता है। संस्कृति दरअसल ऐसी महान प्रविधि है जो हमारे जीवन को सुगम करती है। जीवन को एक लय में लाती है। एक अनुशासन में डालती है। संस्कृति से परे जा कर हम जीवन जी नहीं सकते।

प्रश्न-2 : भाषा और संस्कृति अलग-अलग हैं क्या?

उत्तर : भाषा और संस्कृति एक दूसरे के पूरक हैं। हर भाषा की अपनी संस्कृति होती है और हर संस्कृति की अपनी भाषा होती है। हर भाषा की ही भांति हिंदी भाषी के अपने अलग संस्कार हैं। भाषा के साथ उसके संस्कार भी आते हैं। संस्कार यानी रीति-रिवाज, उसकी अपनी परंपराएं, उनकी उपासना पद्धति। हम देखते हैं कि जो लोकभाषा होती है, वहाँ के भाषा बोलने वालों के अपने संस्कार होते हैं। उस पूरे ग्रामीण परिवेश की अपनी कुछ विशिष्ट गतिविधियाँ होती हैं। संस्कृति और भाषा का अटूट संबंध है। संस्कृति हमें बेहतर मनुष्य बनाए रखती है। और उसका एक बड़ा उपादान भाषा होती है। भाषा के माध्यम से जो साहित्य रचा जाता है,वह हमारे जीवन को नवाचारी करता है। हमारे

संस्कारों को, हमारी परंपराओं को और प्रवहमान बनाए रखता है। जैसी भाषा होगी, वैसा साहित्य रचा जाएगा, फिर वैसे भावोदय होंगे। वैसे ही संस्कार मिलेंगे। वैसी संस्कृति विकसित होगी। जैसे गाय हमारी भारतीय संस्कृति का हिस्सा है। वह विश्व माता कही जाती है। इसलिए हम उसकी पूजा करते हैं। संस्कृत भाषा और हिंदी में भी गाय पूजनीय है। कुछ भाषाओं में गाय एक सामान्य जीव है, जिसका भक्षण भी किया जा सकता है। ऐसी भाषा में मानवता के संस्कार कम दिखते हैं, जबकि हिंदी की संस्कृति में मानवता से परिपूर्ण है। संस्कृति एक नदी की तरह प्रवाहित रहती है। उसके कारण भाषा भी निरन्तर नवीन बनी रहती है।

प्रश्न-3 : भाषा और संस्कृति के संबंध को आप किस तरह लेते हैं?

उत्तर : इस प्रश्न का उत्तर ऊपर मैंने दिया है। भाषा के बिना संस्कृति अधूरी है और संस्कृति के बिना भाषा। इसका आपस में अन्योन्याश्रित संबंध है। दोनों एक दूसरे के बगैर अपूर्ण हैं। भाषा संस्कृति का निर्माण करती है और उसी संस्कृति के सहारे लोक व्यवहार चलता है। मनुष्य पहले भाषा गढ़ता है, फिर संस्कृति का निर्माण करता है। पुरातन काल में संकेतों की भाषा थी। जैसे-जैसे मनुष्य विवेकवान होता गया, उसने अभिव्यक्ति हेतु अपनी भाषा गढ़ी। उसकी लिपि बनाई। उसका व्याकरण भी बनाया। और इतना सब करते हुए एक संस्कृति भी विकसित हुई, जिसने हमारी उपासना पद्धति को हमारी जीवन पद्धति को भी निर्धारित किया। मेरी अपनी सोच के अनुसार भाषा संस्कृति एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक तरफ भाषा तो दूसरी तरफ संस्कृति है। संस्कृति और भाषा मनुष्य ही बनाता है। हालाँकि बिना भाषा के भी संस्कृति हो सकती है। मगर एक भाषा है तो उसकी एक संस्कृति विकसित हो चुकी होती है।

प्रश्न-4 : समाज की कोख से भाषा और संस्कृति का जन्म क्यों? कैसे हुआ होगा।

उत्तर : आवश्यकता को आविष्कार की जननी कहा गया है। बस, इसी कारण भाषा और उसकी संस्कृति का जन्म हुआ। हमको पता है कि जैसे-जैसे मनुष्य समाज विकसित हुआए तो का वक्त मनुष्य संकेतों के सहारे संवाद करता था। लेकिन जैसे-जैसे वह ज्ञानवान बनता गया उसकी समझ विकसित होती गई, तो उसने अपने लिए भाषा विकसित की। यह मनुष्य की विवशता थी कि वह अपने आप को सुव्यवस्थित तरीके से अभिव्यक्त करे। इसे समझने के लिए आज हम किसी शिशु का उदाहरण ले सकते हैं। शिशु के पास अपनी कोई भाषा नहीं होती। वह सांकेतिक तरीके से खुद को अभिव्यक्त करता है। जब उसे भूख लगती है, तो ज़ोर-ज़ोर से रोने लगता है। जब उसे पानी चाहिए होता मम-मम बोलता है। उसे आगे बढ़ना होता है तो वह पैंया-पैंया चलता है। शिशु अपनी क्षमता के अनुरूप खुद को व्यक्त करने की निरंतर कोशिश करता है। धीरे-धीरे वह बड़ा होता है, तो उसे शिक्षण के जरिये भाषा का ज्ञान होता है। तब व्यवस्थित ढंग से बोलने-बताने लगता है। और उसी भाषा की संस्कृति से जुड़ कर व्यवहार करने लगता है।

प्रश्न-5 : तो ऐसे में भाषा को, संस्कृति को क्या माना जाए?

उत्तर : भाषा और संस्कृति को हमें अपने जीवन का अनिवार्य घटक मानना चाहिए। भाषा, संस्कृति के बिना हमारा जीवन अधूरा है। या कह सकते हैं कि जिस के पास भाषा नहीं, वह मनुष्य होते हुए भी अमानुष ही है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने इसी बात को अपनी चार पँक्तियों में इस तरह से अभिव्यक्त किया हैः 'जिसको न निज भाषा तथा निज देश का अभिमान है/वह हर नहीं, नर पशु निरा, और मृतक समान है।' तो भाषा और संस्कृति को जीवन का अनिवार्य अंग माना जाए। इसके बिना जीवन बेमानी है। भाषा हमें जीवंत बनाए रखती है, तो संस्कृति हमें लालित्यपूर्ण। ये दोनों हमारे जीवन की अमूल्य धरोहर हैं।

प्रश्न-6 : भारतीय संस्कृति के बारे में आप क्या कहना चाहते हैं?

उत्तर : भारतीय संस्कृति विश्व की सर्वाधिक महत्वपूर्ण और प्रणम्य संस्कृति है। यह वसुधैव कुटुंबकम की बात करती है। यह कहती है, सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु

निरामयः की बात करती है। यह सब को सुखी देखना चाहती है। सबको निरोगी देखना चाहती है। हर तरफ सुंदरता की पक्षधर है यह उदात्त संस्कृति। यह वह संस्कृति है जो विश्व बंधुत्व की बात करती है। यह वह संस्कृति है, जहाँ नास्तिक और आस्तिक समान रूप से रहते हैं यह वह संस्कृति है, जो सभी धर्मों का समान रूप से आदर करती है। जहाँ सबकी अलग अलग उपासना पद्धति है। जिसके तैंतीस कोटि (यानी प्रकार) देवता हैं। यह वह संस्कृति है जो गाय, गंगा, गायत्री को पूजती है। जो नर में नारायण को देखती है। जो कहती है, "यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता।" भारतीय संस्कृति यानी यह कैसी सनातन संस्कृति जिसमें विश्व मानवता को दिशा दी। यही कारण है कि भारत को विश्वगुरु कहा गया। दुनिया के जिज्ञासु लोग भारत आकर तक्षशिला में आकर शिक्षा ग्रहण किया करते थे। संस्कार क्या होता है, विश्व को भारत ने ही बताया।

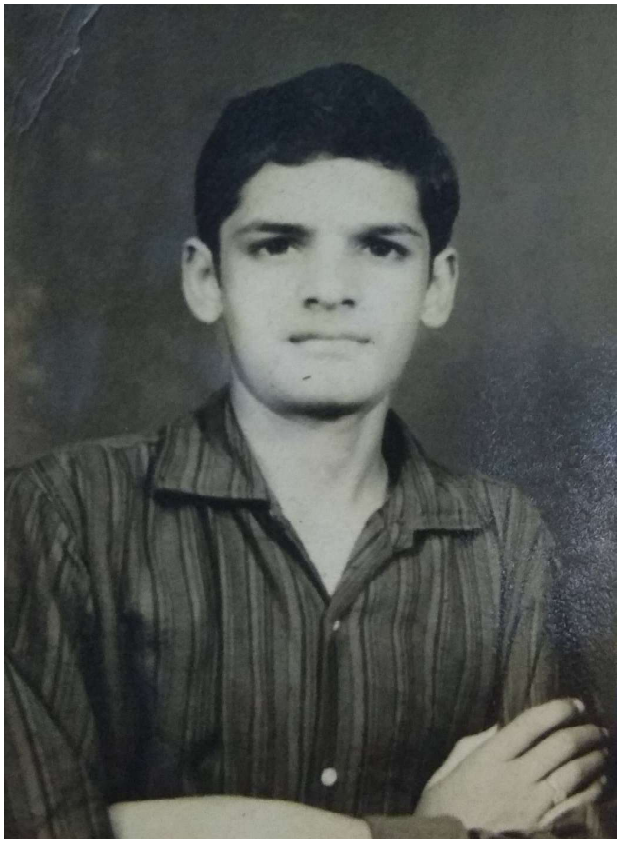

प्रश्न-7 : आज हिंदी भाषा और संस्कृति को लेकर समाज में क्या चल रहा है?

उत्तर : वर्तमान परिदृश्य काफी निराशाजनक है। हिंदी भाषा और संस्कृति संक्रमण काल से गुजर रहे हैं। हिंदी जैसी बेहद सरल और महान भाषा अब धीरे-धीरे हाशिये पर जा रही है। इसकी जगह एक विदेशी भाषा अँग्रेज़ी का उपयोग अधिक बढ़ गया है। हिंदी में अँग्रेज़ी शब्दों की बहुलता के कारण उसका एक नया नामकरण हिंग्लिश या हिंग्रेज़ी भी हो गया है। समाज में तथाकथित आधुनिक होने या कहें कि बाज़ारू होने की ऐसी अंधी ललक विकसित हुई है, जिसके कारण वह अपनी फटी जींस को भी पहनना अपनी शान समझता है। जबकि हमारी संस्कृति में फटे वस्त्र पहनना वर्जित रहा है। अगर वे फट गए हैं तो उसे किसी भी तरीके से सिल कर ही पहनना है। भाषा का तो विनाश हो ही रहा है, हमने अपनी संस्कृति को भी तिलांजलि दे दी है। गाय की जगह कुत्ते पालना लोगों को ज्यादा पसंद है। हमारी पावन नदी गंगा को हमने प्रदूषित कर दिया है। देश की समस्त नदियों को हमने गंगा की तरह पूजा, लेकिन उन्हीं नदियों को हमने नष्ट भी किया। हमारी चेतना का वह बोध जाने कहाँ चला गया कि नदियों को स्वच्छ रखना है। क्योंकि नदिया ही हमारी पास बुझाती हैं, हमें जीवन प्रदान करती हैं। पूजा-पाठ हमारी संस्कृति रही है, उससे भी नई पीढ़ी दूर होती जा रही है। कुल मिला कर भाषा और संस्कृति दोनों का विनाश होता दिखाई दे रहा है। जो चिंता कर रहे हैं, वे मुट्ठी भर हैं। ये लोग लोग बचाने की कोशिश कर रहे हैं लेकिन निराश हैं क्योंकि पतन तेजी के साथ हावी है।

प्रश्न-8 : निज भाषा सम्मान के बिना निज संस्कृति के सम्मान की बात कोरी कल्पना है। इस संबंध में आपका क्या कहना है?

उत्तर : भारतेंदु हरिश्चंद्र ने तो कहा ही है कि 'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल/बिन निज भाषा

ज्ञान के, मिटे न हिय को शूल!' अगर हम अपनी भाषा को सम्मान नहीं देते, इसका सीधा मतलब है कि हम अपनी संस्कृति से भी प्यार नहीं करते। भाषा से प्यार करने का मतलब है, अपनी माँ से प्यार करना।

उस माँ से प्यार करना, जो हमें भाषा के जरिये संस्कार देती है। अपनी माँ का अनादर करने वाला कपूत कहलाता है। उसी तरह अपनी भाषा का अनादर करने वाला भी एक तरह का कपूत ही तो है। हमें अपनी संस्कृति बचानी है तो पहले अपनी भाषा को बचाना होगा।

भाषा के जरिये ही तो नई पीढ़ी को हम अपनी संस्कृति और संस्कारों से परिचित कराते हैं। हम समय निकालकर अपने बच्चों को मातृभाषा से जोड़ें। राष्ट्रभाषा का महत्त्व समझाएं, और हिंदी की संस्कृति से भी उनका परिचय कराएँ। हिंदी की संस्कृति क्या है, इसे मैंने अति संक्षेप में बताने की विनम्र कोशिश की है। हालाँकि नई पीढ़ी पर बाज़ारवाद का भयंकर दबाव है। उसके लिए समलैंगिकता, लिव इन रिलेशनशिप में आधुनिकता है, मगर नैतिकता, मूल्यपरकता, संस्कृति, संस्कार की बात करना पिछड़ापन है। इस गर्हित मानसिकता के विरुद्ध भाषा का सहारा लेकर ही मुकाबला किया जा सकता है।

प्रश्न-9 : भाषायी विभाजन संस्कृतियों की विभाजन रेखा भी तय करती है क्या?

उत्तर : बिल्कुल सही बात। भाषा और संस्कृति एक रहते हैं। शरीर से अगर आत्मा निकल जाती है तो शरीर बेकार हो जाता है। बिलकुल मिट्टी। उसी तरह संस्कृति भी भाषा की आत्मा है।

हर भाषा की अपनी संस्कृति होती है। अगर उसी भाषा से कोई दूर हो जाएगा तो स्वाभाविक है कि वह अपनी संस्कृति से भी दूर होता चला जाएगा।

हिंदी से दूर होकर अगर कोई अँग्रेज़ी भाषा की ओर जाएगा तो वह हिंदी की संस्कृति से दूर हो कर अँग्रेज़ी की संस्कृति से जुड़ जाएगा। जहाँ न जाने कितना विचलन है, अराजकता है, नग्नता है। इसलिए भाषा से दूर होना अपनी संस्कृति से दूर होना है। यह बात सिर्फ हिंदी के लिए ही लागू नहीं है, हर भाषा के लिए भी यही बात लागू होती है।

प्रश्न-10 : तो आज हिंदी भाषा और उसमें अंतर्निहित संस्कृति के संरक्षण, विकास के नाम पर क्या हो रहा है?

उत्तर : दुख की बात है कि हिंदी संस्कृति के संरक्षण के लिए जितना काम अपेक्षित था, उतना बिल्कुल नहीं हो रहा एक तरह से केवल विलाप हो रहा है। कुछ लोग जरूर चिंता कर रहे हैं, लिख-पढ़ रहे हैं, बोल भी रहे हैं, लेकिन यह सब नक्कारखाने में गोया तूती की आवाज है। जिसका कोई असर नहीं होने वाला। इस दिशा में जब तक सामूहिक प्रयास नहीं होंगे, सफलता नहीं मिलेगी।

इसके लिए हिंदी के पाठ्यक्रम में बदलाव लाया जाए। उसे भारतीय संस्कृति से जोड़ा जाए। प्राथमिक शिक्षा अँग्रेज़ी के बजाए मातृभाषा में, हिंदी में देनी चाहिए। हिंदी को राष्ट्र की प्रमुख भाषा बनाने का संकल्प लेना चाहिए। यानी राष्ट्रभाषा। वैसे तो देश में बोली जाने वाली हर भाषा राष्ट्र की भाषा ही है।

लेकिन हर राष्ट्र की अपनी एक प्रमुख भाषा होती है। लेकिन दुर्भाग्य से भारत में ऐसी कोई एक भाषा नहीं है। यह तो हिंदी का परम् सौभाग्य है कि उसे राजभाषा का दर्जा दिया गया, लेकिन काम आज भी अँग्रेज़ी में ही हो रहा है। हिंदी पर कृपा करके उसका अनुवाद जरूर प्रस्तुत कर दिया जाता है।

अब समय आ गया है कि देश में भाषा संस्कृति मंत्रालय बनना चाहिए, विशुद्ध रूप से हिंदी भाषा के उन्नयन के लिए ही काम करे। सर्वोच्च न्यायालय सहित समस्त न्यायालयों में हिंदी में कामकाज होना चाहिए।

हिंदी में बहस होनी चाहिए। हिंदी में फैसले होने चाहिए। हिंदी बोलने वाले बच्चों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। हिंदी में रोजगार के अवसर बढ़ने चाहिए। तभी हिंदी और हिंदी की संस्कृति बचेगी। वरना तो आने वाला समय भयावह दिखाई दे रहा है।

कथा-कहानी

मैं अपने सपने बेचती हूँ

मूल कहानी : गैब्रिएल गार्सिया मार्खेज़ अनुवाद : सुशांत सुप्रिय

एक सुबह नौ बजे, जब हम चमकते सूर्य तले हवाना रिविएरा होटल की छत पर नाश्ता कर रहे थे, समुद्र से आई एक विशाल लहर ने समुद्र के किनारे की सड़क पर चल रही और किनारे पर खड़ी कई कारों को उछाल दिया और उनमें से एक कार को होटल के बग़ल की दीवार में घुसा दिया। यह सब डायनामाइट के विस्फोट जैसा था और इससे उस बीस मंज़िला होटल की सभी मंज़िलों पर घबराहट की वजह से भगदड़ मच गई। इससे होटल के शीशे का प्रवेश द्वार भी चूर-चूर हो गया। उस भयावह लहर ने होटल के प्रतीक्षाकक्ष में बैठे पर्यटकों और सारे सामान को भी हवा में उछाल दिया। बहुत से लोग टूट गए शीशे की बौछार से घायल हो गए। वह लहर अवश्य ही विराट रही होगी क्योंकि वह समुद्र के किनारे बनी ऊँची दीवार को लाँघ कर, उस चौड़ी, दोतरफ़ा सड़क को पार करके होटल से जा टकराई और तब भी उसमें इतना वेग था कि इमारत की सभी काँच की खिड़कियाँ चकनाचूर हो गईं।

क्यूबा के खुशमिजाज़ स्वयं सेवकों ने वहाँ के दमकल विभाग की मदद से छह घंटों से भी कम समय में पूरा मलबा हटा दिया। उस पूरे इलाक़े को बंद करके वहाँ मरम्मत का काम चालू कर दिया गया और जल्दी ही स्थिति सामान्य हो गई। सुबह कोई भी होटल की दीवार में धँसी कार को देखकर चिंतित नहीं हुआ क्योंकि सबने यही सोचा कि यह सड़क के किनारे खड़ी कारों में से एक होगी। लेकिन जब क्रेन ने आ कर उस धँसी हुई कार को दीवार में से बाहर निकाला तो उन्हें चालक की सीट पर सीट बेल्ट में बँधी एक महिला का शव मिला। उस विराट् लहर का धक्का इतना ज़ोरदार था कि उस महिला के शरीर की एक भी हड्डी साबुत नहीं बची थी और उसके कपड़े चिथड़े-चिथड़े हो गए थे। उसने अपनी उँगली में सोने की सर्पाकार अँगूठी पहन रखी थी जिसकी आँखें पन्ने की थीं।

तहक़ीक़ात करके पुलिस ने यह पता लगा लिया कि वह महिला नए पुर्तगाली राजदूत और उनकी पत्नी के रहने वाले घर की देखभाल करती थी। वह दो हफ़्ते पहले ही उनके साथ हवाना आई थी और उस सुबह एक नई कार में बाज़ार जाने के लिए निकली थी। जब मैंने समाचार पत्र में उसका नाम पढ़ा तो मुझे कुछ भी याद नहीं आया। लेकिन पन्ने की आँखों वाली उस सर्पाकार अँगूठी ने मुझमें जिज्ञासा और कौतुहल उत्पन्न कर दी। हालाँकि मैं यह नहीं जान पाया कि उस महिला ने वह अँगूठी अपनी किस उँगली में पहनी थी।

यह एक महत्वपूर्ण जानकारी थी क्योंकि मुझे लगा कि यह वही न भुलाई जा सकने वाली महिला थी जिसका वास्तविक नाम मैं कभी नहीं जान पाया। वह महिला अपने दाएँ हाथ की तर्जनी में वैसी ही अँगूठी पहनती थी। उस ज़माने में यह आज से भी अधिक विरली बात थी। उससे मेरी मुलाक़ात चौंतीस वर्ष पहले विएना में हुई थी। वह एक ऐसे शराबखाने में बीयर पी रही थी और गुलमा और उबले हुए आलू खा रही थी, जहाँ लातिन अमेरिकी छात्र-छात्राएँ अक्सर आया-जाया करते थे। मैं उसी सुबह रोम से लौटा था और मुझे उसके उठे हुई उरोज, उसके कोट के कॉलर पर लटके उसके घने, नुकीले, अलसा, बाल और उसकी मिस्र की वह सर्पाकार अँगूठी आज भी याद है। वह बिना साँस लेने के लिए रुके एक धात्विक लहज़े में कामचलाऊ स्पेनी भाषा बोल रही थी। मुझे लगा कि काठ की लम्बी मेज के साथ मौजूद कुर्सी पर बैठी वह वहाँ एकमात्र आस्ट्रियाई महिला थी। किंतु नहीं। उसका जन्म कोलम्बिया में हुआ था और वह विश्वयुद्धों के बीच के वर्षों में आस्ट्रिया आई थी। तब वह किशोरावस्था में थी और वह यहाँ संगीत की शिक्षा प्राप्त करती रही थी। अब वह तीस साल की हो गई थी लेकिन उसने अपने रूप रंग की ज़्यादा देखभाल नहीं की

थी। वह कभी भी पारम्परिक रूप से खूबसूरत नहीं रही थी ए और अब उसकी उम्र समय से पहले ढलने लगी थी। लेकिन वह फिर भी एक आकर्षक महिला थी। और वह आपको पूरी तरह विस्मित कर देने वाली महिलाओं में से एक थी।

विएना तब भी एक शानदार और प्रतापी शहर था। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद उत्पन्न दो परस्पर विरोधी धड़ों के बीच अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण विएना काला बाज़ारी और अंतरराष्ट्रीय जासूसी का स्वर्ग बन चुका था। मैं अपनी भगोड़ी हमवतन के लिए इससे उपयुक्त किसी जगह की कल्पना भी नहीं कर सकता था। वह अब भी अपने उद्‌भव के प्रति वफ़ादारी की वजह से सड़क के कोने पर मौजूद उस शराबखाने में ही भोजन करती थी जहाँ विद्यार्थी आया-ज़ाया करते थे। दरअसल वह इतनी धनी थी कि वहाँ मौजूद सभी साथियों के भोजन का भुगतान वह आसानी से कर सकती थी। उस महिला ने हमें कभी अपना वास्तविक नाम नहीं बताया। हम सभी लातिन अमेरिकी छात्र-छात्राएँ उसे कठिनाई से बोले जा सकने वाली जर्मन भाषा के उस नाम से बुलाते थे, जिसे हमने गढ़ा था फ्राउ फ्रिएडा। उस महिला से मेरा परिचय हाल ही में करवाया गया था। तब मैं उससे यह पूछने की सुखद धृष्टता कर बैठा कि क्विनडाओ की तूफ़ानी खड़ी चट्टानों से बिल्कुल अलग इस दुनिया में वह कैसे चली आई। और उसने इसका बड़ा विध्वंसक उत्तर दिया "मैं अपने सपने बेचती हूँ।"

असल में यही उसका पेशा था। वह पुराने कैल्डास में रहने वाले एक धनी दुकानदार के ग्यारह बच्चों में से तीसरी संतान थी। बचपन में जैसे ही उसने बोलना शुरू किया, उसने अपने परिवार में मौजूद एक बढ़िया प्रथा को अपना लिया। उस प्रथा के तहत वे सब सुबह के नाश्ते से पहले अपने सपनों के बारे में चर्चा करते थे और उनके अर्थ बताते थे। उनके मुताबिक़ यह वह समय था जब उनके भविष्य सूचक गुण अपने शुद्धतम रूप में उनमें मौजूद होते थे। जब वह महिला सात साल की थी तो उसे सपना आया जिसमें उसके भाई को बाढ़ का पानी अपने साथ बहा कर ले गया। धार्मिक अंधविश्वास के कारण उसकी माँ ने खड्ड में उस लड़के के तैरने पर प्रतिबंध लगा दिया। तैरना उस लड़के का पसंदीदा मनोरंजन था। किंतु फ्राउ फ्रिएडा का भविष्यवाणी करने का अपना अलग ही हिसाब किताब था।

मेरे सपने का अर्थ यह नहीं है कि भाई डूब जाने वाला है। दरअसल उसे मिठाई नहीं खानी चाहिए क्योंकि उसे मिठाई से ख़तरा है।"

उसकी यह व्याख्या एक पाँच वर्ष के बच्चे के मामले में दुष्टता थी, विशेषकर तब जब वह बच्चा हर रविवार को मिठाई खाने का मज़ा लूटे बिना नहीं रह पाता था। लेकिन उसकी माँ को अपनी बेटी के सही भविष्यवाणी करने के गुण पर पूरा भरोसा था। इसलिए उसने भाई के प्रति बहन की चेतावनी को गम्भीरता से लिया और बेटे को मिठाई खाने से पूरी तरह वंचित कर दिया। लेकिन लापरवाही के अपने पहले पलों में छिप कर मिठाई का एक बहुत बड़ा टुकड़ा खाते समय उस लड़के का दम घुट गया और उसे बचाया नहीं जा सका।

फ्राउ फ्रिएडा स्वयं यह नहीं समझती थी कि अपनी इस योग्यता को वह अपनी आजीविका का माध्यम बना सकती थी। लेकिन विएना की क्रूर सर्दियों में उसका जीवन बेहद कठिन हो गया और खुद के प्रति उसे अपनी राय बदलनी पड़ी। तब जिस घर में वह रहना चाहती थी ए उसने उस पहले मकान में काम की तलाश शुरू कर दी। जब उससे पूछा गया कि वह क्या कर सकती थी, उसने केवल सच्चाई बयान कर दी "मैं सपने देखती हूँ।" उसे घर की महिला को अपने काम के बारे में संक्षेप में बताना भर पड़ा और उसे उतने वेतन पर काम पर रख लिया गया जितने में उसका गुज़ारा हो जाता था। रहने के लिए उसे एक बढ़िया कमरा दे दिया गया। उसे तीन वक़्त का खाना भी मिल जाता था, विशेष रूप से सुबह का नाश्ता, जब वह पूरा परिवार अपना तात्कालिक भविष्य जानने के लिए उसके इर्द-गिर्द जमा हो जाता था। उस परिवार में पिता एक सेवानिवृत्त पूँजीपति थे, माँ रोम के संगीत के प्रति समर्पित एक ख़ुशमिज़ाज महिला थी और ग्यारह और नौ वर्ष के उनके दो बच्चे थे। वे सभी धार्मिक प्रवृत्ति वाले थे और पुरातन अंधविश्वासों में आस्था रखते थे। इसलिए फ्राउ फ्रिएडा को नौकरी पर रखने में उन्हें

खुशी हुई। अपने देखे गए सपनों के आधार पर परिवार के सभी सदस्यों के क़िस्मत की व्याख्या करना ही फ्राउ फ्रिएडा की एकमात्र ज़िम्मेदारी थी।

वह अपना काम बखूबी करती रही, ख़ास करके बहुत समय तक युद्ध के दिनों में, जब वास्तविकता दुरूस्वप्न से भी अधिक डरावनी होती थी। परिवार के हर सदस्य को किसी भी दिन क्या करना है और कैसे करना है, इसका निर्णय केवल वही लेती थी। धीरे-धीरे उसकी भविष्यवाणी को उस घर में एकमात्र अधिकार मिल गया। उस पूरे परिवार पर उसे परम नियंत्रण प्राप्त हो गया। हल्की-सी साँस भी उसकी अनुमति से ही ली जाती थी। जब मैं विएना में था, तभी उस घर के मालिक का देहाँत हो गया। वह इतना सुशिष्ट था कि वह अपनी जायदाद का एक हिस्सा उस महिला के नाम छोड़ गया। शर्त केवल यह थी कि वह उसके परिवार के लिए तब तक सपने देखने का काम करती रहेगी जब तक उसके सपने ख़त्म नहीं हो जाते।

मैं एक महीने से अधिक अवधि तक विएना में रहा और अन्य विद्यार्थियों की तरह दुखद परिस्थितियों का सामना करता रहा। दरअसल मैं घर से रुपए पैसे आने की अंतहीन प्रतीक्षा कर रहा था। फ्राउ फ्रिएडा का अप्रत्याशित रूप से हमसे मिलने शराबखाने में आना उनकी उदारता का परिचायक था। हमारी ग़रीबी की हालत में उनका वहाँ आना किसी पर्व-त्योहार का आनंद देता था। एक रात बीयर के सुखा-भास में उस महिला ने बिना देर किए दृढ़ धारणा के साथ मेरे कान में फुसफुसा कर कुछ कहा।

मैं केवल तुम्हें यह बताने आई हूँ कि कल रात मुझे तुम्हारे बारे में सपना आया, उसने कहा। "तुम्हें यहाँ से अभी ही चले जाना चाहिए, और अगले पाँच वर्षों तक तुम्हें लौट कर विएना नहीं आना चाहिए।"

उसका दृढ़ विश्वास इतना वास्तविक लग रहा था कि मैं उसी रात रोम जाने वाली अंतिम रेलगाड़ी में सवार हो गया। जहाँ तक मेरी बात है, मैं उस महिला की बात से इतना प्रभावित हुआ कि उस समय से मैं खुद को किसी अघटित महा विपत्ति के अनुभव से जीवित बच गया व्यक्ति मानने लगा। मैं आज तक दोबारा विएना नहीं गया।

हवाना में घटी दुर्घटना से पहले मेरी मुलाक़ात बासीलोना में फ्राउ फ्रिएडा से ऐसी अप्रत्याशित और आकस्मिक परिस्थितियों में हुई कि मुझे वह रहस्यमय लगी। यह घटना उस दिन हुई जब गृहयुद्ध के बाद पहली बार पाब्लो नेरूदा ने स्पेन की सरज़मीं पर अपने कदम रखे। वे वालपरीसो तक की लम्बी समुद्री-यात्रा के बीच में यहाँ रुके थे। उन्होंने एक सुबह हमारे साथ बिताई, जब वे पुरानी पुस्तकें बेचने वाली किताबों की एक दुकान में शिकार करने से सम्बन्धित पुस्तकें तलाशते रहे। पोर्टर में उन्होंने एक फटी हुई पुरानी किताब ख़रीदी। उस किताब के लिए उन्होंने दुकानदार को इतनी रक़म दी जो रंगून के दूतावास की उनकी नौकरी के दो महीने के वेतन जितनी थी। नेरूदा भीड़ में किसी बीमार हाथी की तरह चल रहे थे। हर काम के होने के अंदरूनी तौर-तरीक़े को वे एक बाल-सुलभ कुतूहल से देख रहे थे। पूरा विश्व उन्हें एक ऐसे चाभी भरे खिलौने-सा लग रहा था जिससे जीवन का आविष्कार हुआ हो।

मैंने इससे पहले और किसी को पुनर्जागरण काल के पोप की कल्पना जितना क़रीब नहीं पाया था। वे पेटू होने के साथ-साथ सुसंस्कृत भी थे। उनकी इच्छा नहीं होती तो भी वे हर चीज़ का संचालन करते थे और खाने की मेज़ पर भी प्रमुख भूमिका निभाते थे। उनकी पत्नी मैटिल्डे उनके गले के चारों ओर एक छोटा कपड़ा बाँध देती थी ताकि खाते समय उनकी पोशाक ख़राब न हो जाए। वह कपड़ा भोजन-कक्ष की नहीं, किसी नाई की दुकान की याद दिलाता था। किंतु उन्हें सॉस में नहाने से बचाने का यही एकमात्र तरीक़ा था। कार्वालेरास में वह दिन विशिष्ट था। उन्होंने तीन पूरे समुद्री झींगे खा लिए। वे किसी शल्य-चिकित्सक की तरह उनकी चीर-फाड़ कर रहे थे। साथ ही वे बाक़ी सभी लोगों की थालियों में मौजूद भोजन को भी अपनी भूखी निगाहों से चखते जा रहे थे। वे यह काम बेहद ख़ुश हो कर कर रहे थे, जो भोजन करने की इच्छा को संक्रामक बना रहा था।

वहाँ खाने के लिए गैलिशिया और कैन्टब्रिया की अलग-अलग क़िस्म की सीपियाँ, अलिकांते के झींगे, और कोस्टा ब्रैवा के समुद्री घोंघे उपलब्ध थे। इस बीच फ्रांसीसी लोगों की तरह वे केवल अन्य स्वादिष्ट खाद्य-पकवानों की

बातें करते रहे। उन्होंने विशेष रूप से चिले की प्रागैतिहासिक शंख मीन का ज़िक्र किया जो उन्हें बहुत प्रिय थी। अचानक उन्होंने खाना बंद कर दिया और वे समुद्री झींगे की स्पर्श-श्रृंगिका को छूते हुए धीमे स्वर में मुझसे बोले, "मेरे पीछे कोई बैठा है जो लगातार मुझे घूरे जा रहा है।"

मैंने उनके कंधों के पीछे देखा और उनकी बात सही निकली। तीन मेज़ों की दूरी पर एक निर्भीक महिला पुराने प्रचलन की टोपी और बैंगनी रंग का दुपट्टा पहने आराम से खाती हुई उन्हीं को घूर रही थी। मैं देखते ही उसे पहचान गया। वह थोड़ी बूढ़ी और मोटी हो गई थी, किंतु वह फ्राउ फ्रिएडा ही थी और उसने अपनी तर्जनी में वही सर्पाकार अँगूठी पहन रखी थी।

वह नेप्ल्स से उसी समुद्री जहाज़ में लौट रही थी जिसमें नेरूदा और उनकी पत्नी यात्रा कर रहे थे, हालाँकि जहाज़ पर उनकी मुलाक़ात नहीं हुई थी। हमने साथ में कॉफ़ी पीने के लिए फ्राउ फ्रिएडा को भी आमंत्रित कर लिया। मैं उसे अपने सपनों के बारे में बात करने के लिए प्रोत्साहित करता रहा क्योंकि मैं नेरूदा को विस्मित करना चाहता था। लेकिन नेरूदा ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। दरअसल उन्होंने शुरू में ही कह दिया था कि भविष्यवाणी करने वाले सपनों में उन्हें कोई यक़ीन नहीं था।

"केवल कविता ही परोक्षदर्शी होती है।" उन्होंने कहा।

दोपहर के भोजन के बाद जब हम रैम्ब्लास पर टहल रहे थे, मैं जानबूझ कर धीमी गति से चलने लगा ताकि मैं अकेले में फ्राउ फ्रिएडा के साथ अपनी पुरानी यादें ताज़ा कर सकूँ। उसने मुझे बताया कि उसने आस्ट्रिया में मौजूद अपनी सारी सम्पत्ति बेच दी थी और अब वह ओपोर्टो, पुर्तगाल में रह रही थी। वहाँ के अपने मकान को उसने पहाड़ पर बने एक नक़ली दुर्ग की संज्ञा दी। उसने बताया कि वहाँ से वह समुद्र के उस पार अमेरिका तक देख सकती थी। हालाँकि उसने यह कहा नहीं, किंतु उसकी बातचीत से यह स्पष्ट हो गया कि अपने सपनों की व्याख्या करते हुए धीरे-धीरे उसने विएना में मौजूद अपने प्रशंसातीत संरक्षक की पूरी जायदाद पर क़ब्ज़ा कर लिया था। मैं इस बात से हैरान नहीं हुआ क्योंकि मुझे हमेशा से यह लगता था कि उसके स्वप्न अपनी आजीविका चलाने की उसकी चतुर नीति मात्र थी। और मैंने उसे यह बता दिया।

वह अपनी अत्यंत सम्मोहक हँसी हँसी। " तुम अब भी पहले जैसे गुस्ताख़ हो ए " उसने कहा। इसके बाद वह चुप हो गई। दल के बाक़ी सदस्य श्री नेरूदा की

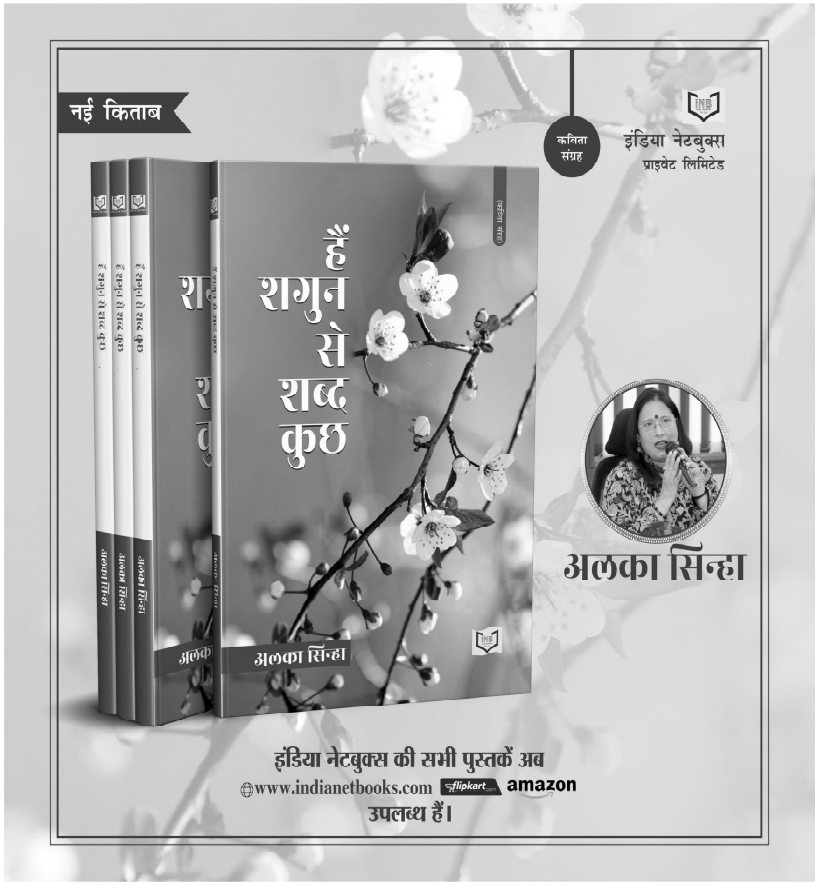

रैम्ब्ला दे लोस पैजारोस पर मौजूद तोतों से चिले की ख़ास भाषा में हो रही बातचीत के ख़त्म होने की प्रतीक्षा करने लगे। जब हमने दोबारा बातचीत शुरू की तो फ़्राउ फ़िरएडा ने विषयांतर कर दिया।

" अब तुम विएना जा सकते हो ए " उसने कहा। तब जा कर मुझे याद आया कि हमारी पहली मुलाकात से अब तक तेरह वर्ष बीत चुके थे।

" यदि तुम्हारे सपने झूठे हों तब भी मैं वहाँ कभी नहीं जाऊँगा। क्या पता एक्या हो जाए। " मैंने कहा।

हम तीन बजे उससे अलग हो गए। दरअसल नेरूदा के दोपहर के पावन आराम का समय हो गया था। हमारे घर में सोने से पहले नेरूदा ने विधिवत तैयारी

की। यह तैयारी पारम्परिक जापानी चाय समारोह जैसी थी। कुछ खिड़कियों को खोला गया और कुछ अन्य को बंद कर दिया गया ताकि कमरे का तापमान सही हो जाए। उस कमरे में किसी ख़ास दिशा से ख़ास तरह की रोशनी होनी ज़रूरी थी। और वहाँ परम शांति की आवश्यकता थी। नेरूदा को जल्दी ही नींद आ गई और ठीक दस मिनट के बाद वे जग गए। बच्चे अक्सर ऐसा करते हैं ए जब हमें इसका बिल्कुल अंदेशा नहीं होता। वे बिल्कुल तरो ताज़ा हो कर बैठक में नज़र आए। उनके गाल पर तकिये का गुम्फाक्षर छपा हुआ था।

"मुझे सपने देखने वाली उस महिला के बारे में सपना आया। " उन्होंने कहा।

मैटिल्डे उनके सपने के बारे में और जानना चाहती थी।

" मुझे उसके बारे में यह सपना आया कि वह अपने सपने में मुझे देख रही थी। " वे बोले।

" यह तो ठीक बोर्गेस की कहानी का अंश लग रहा है। " मैंने कहा।

उन्होंने निराशा से भर कर मुझे देखा।

" क्या बोर्गेस ने यह बात पहले ही लिख दी है घ् "

" यदि उन्होंने अब तक यह बात नहीं लिखी है तो कभी-न-कभी वे इसे ज़रूर लिख देंगे। यह उनकी भूलभुलैया नामक दूसरी रचना का अंश होगा।

शाम के छह बजे जैसे ही नेरूदा जहाज़ पर चढ़े, उन्होंने हमसे विदा ले ली। वे एकांत में पड़ी एक मेज़ के साथ रखी कुर्सी पर बैठ गए और हरी स्याही वाली कलम से धाराप्रवाह कविताएँ लिखने लगे। इसी हरी स्याही से वे तब फूलों, मछलियों और चिड़ियों के चित्र बनाया करते थे जब उन्हें अपनी किताबों को किसी को समर्पित करना होता था। साथ आए लोगों के लौट जाने पर मैंने फ्राउ फ्रिएडा की ओर देखा जो जहाज़ की छत पर पर्यटकों के लिए बनी जगह पर मौजूद थी। हम बिना एक-दूसरे से औपचारिक विदा लिए ही लौट जाने वाले थे। वह भी आराम करके यहाँ आई थी।

'मुझे उस कवि के बारे में सपना आया।' वह बोली। विस्मित हो कर मैंने उससे उसके सपने के बारे में पूछा।

'मुझे सपना आया कि कवि महोदय मेरे बारे में सपना देख रहे थे।' उसने कहा। मेरे चेहरे पर मौजूद चकित होने के भाव ने उसे क्षुब्ध कर दिया।

'तुम्हें किस बात की उम्मीद थी? इतने सपनों के बावजूद कभी-कभी ऐसा कोई सपना भी आ जाता है जिसका वास्तविक जीवन से कोई लेना-देना नहीं होता है।'

इसके बाद मैं न कभी उस महिला से मिला, न ही कभी मैंने उसके बारे में सोचा। जब हवाना रिविएरा की दुर्घटना में मैंने सर्पाकार अँगूठी पहने एक महिला की मृत्यु का समाचार सुना तब मुझे उसकी याद दोबारा आ गई। कुछ महीने के बाद जब एक राजनयिक स्वागत-समारोह में मेरी मुलाक़ात पुर्तगाल के राजदूत से हुई तो मैं उस महिला के बारे में उनसे पूछताछ करने से स्वयं को नहीं रोक सका। राजदूत ने बड़े उत्साह और प्रशंसा से उसका ज़िक्र किया।

'आप सोच भी नहीं सकते कि वह कितनी असाधारण महिला थी।' वे बोले 'यदि आप उन्हें जानते तो आप उनके बारे में कहानी लिखने से स्वयं को नहीं रोक पाते।' और राजदूत महोदय उसी स्वर में अद्भुत विस्तार से उस महिला के बारे में बातें करते रहे। किंतु उनकी बातों से मुझे कोई स्पष्ट संकेत नहीं मिला कि क्या यह वही महिला थी जिसे मैं जानता था।

'असल में वह क्या काम करती थी?' अंत में मैंने पूछा।

'वह कुछ नहीं करती थी, वे मोह भंग होने वाले अंदाज़ में बोले, 'वह केवल सपने देखती थी।'

जूही के फूल

किशोर दिवसे

उस रोज़ देर तक झमाझम बारिश हुई थी। शुरुआत में माटी की सोंधी महक थी। बाद में छपाक-छपाक और आसमान जामुनी सा हो गया। जिस वक्त बरसात की पहली फुहारों ने मिट्टी से उड़ती धूल को सड़क किनारे ख़ामोश बैठने पर मजबूर कर दिया था, साकेत अपनी स्कूल से घर की राह पर था। घर रवाना होने से पहले टिफिन बक्से में रखा नाश्ता जैसे ही ख़त्म किया बारिश की मोती-मोती बूँदें गिरने लगी थीं। पहले धीरे, फ़िर तेजी से...टप टप... टप टप टप टप...!

एक बार अपने कमरे में साकेत यूँ ही खड़ा था खिड़की के पास। ओम गार्डन्स स्थित अपार्टमेंट की खिड़की से निहारते हुए बारिश की बूँदों को। सामने वाले मैदान में लगे आम के पेड़ों, गुलाब की झाड़ियों, और जूही की बेलों को तर-ब-तर कर चुकी थीं। बारिश की बूँदों से जूही के फूल भी मानो सर हिलाकर अपने खुश होने की हामी भर रहे थे। एक तरह से उस हरीतिमा में अद्‌भुत सम्मोहन था। वैसे भी प्रकृति की हर एक अदा में ज़बरदस्त चुम्बकीय आकर्षण होता है जिसका एहसास मुझे उम्र के कुछ पड़ाव पार कर लेने के बाद हुआ था।

'साकेत...! इस तरह खिड़की के पास मत खड़े रहो...तुम्हें सर्दी लग जाएगी। अच्छे बेटे की तरह सो जाओ या फ़िर अपनों किताबें पढ़ो!' साकेत ने आवाज की तरफ मुड़कर देखा। सुरेखा मौसी कमरे के भीतर जा चुकी थी। अच्छे बच्चे की तरह साकेत अपने बिस्तर पर आ गया।

उसने अपने दाहिने पैर को इस तरह बाएँ पैर पर मोड़कर रखा था कि बायाँ पैर ज़मीन छू रहा था और दूसरा अधर में लटक रहा था। साकेत का दाहिना पैर बाएँ से कुछ छोटा था।

'माँ क्या कर रही है सुरेखा मौसी!' साकेत ने पूछा। स्कूल से लौटने के बाद उसने अपनी माँ को देखा तक नहीं था। और देखता भी कैसे?...जैसे ही वह स्कूल से घर आता सुरेखा मौसी ही दरवाज़ा खोलती। कन्धे पर लटकता स्कूल बैग और हाथ से पानी की बोतल अपने हाथों में ले लेती। फ़िर यूनिफॉर्म बदलकर घर की निकर और शर्ट पहनाती और खाना भी परोस देती। माँ तो बस अपने ही कमरे में दरवाज़ा बन्द कर अपने कैसेट और सीडी कलेक्शन से संगीत सुनती रहती।

"माँ अपने कमरे में है साकेत" सुरेखा मौसी ने अपनी चिर-परिचित मीठी आवाज़ में कहा और वह मेजपर रखे सामान तरतीब से सजाने लगी। बिखरे हुए कपड़े तह करने लगी थी।...खिड़कियों के अधखुले परदे भी बन्द हो चुके थे।। वैसे भी साकेत यह समझने लगा था कि सुरेखा मौसी के जवाब का अधूरा हिस्सा है, उस वक्त जब वह कहती, 'माँ अपने कमरे में है साकेत!' तेरह बरस के साकेत ने अपना शरीर ढीला छोड़ दिया था। सुरेखा मौसी ने हमेशा की तरह उसके नंगे पैरों पर लिहाफ़ ओढ़ा दिया,। हालांकि उसे सर्दी का एहसास नहीं हो रहा था उसी तरह जैसे किशोरवयीन बच्चे सपनों भरी नींद में देहभान भुलाकर सोते हैं।

साकेत भी दो-तीन घंटे सोता रहा। नींद खुलने के बाद भी वह बिस्तर से उठा नहीं बल्कि खिड़की के परदे और चौखट के बीच की झिर्री से देर शाम का आकाश निहारता रहा। उसे मालूम था कि जल्द ही सुरेखा मौसी दूध भरा गिलास लेकर आएगी जिसमें तीन चम्मच कॉम्प्लान डला होगा। "बेटा साकेत! अच्छी तरह सोये कि नहीं?" मौसी ने बिस्तर की बाजू वाले नन्हें तिपाए पर गिलास रखकर पूछा। सर हिलाकर साकेत बिस्तर पर बैठ गया। बाहर आसमान में ढेर सारी स्याही घुल गई थी। लिहाज़ा सुरेखा मौसी ने परदे खींचे पर रोशनी कमरे में दाखिल नहीं हुई। कॉम्प्लान भरा गिलास लेकर साकेत ने अपना ध्यान दीगर कमरों से आती अजनबी आवाज़ों पर लगाकर एक ही लम्बी साँस में उसे खाली कर दिया। बाएँ हाथ से गिलास रखकर साकेत ने दाहिनी हथेली का पिछला हिस्सा मुँह पर रखा और होठों पर बनी सफ़ेद भूरी लकीरें पोंछ दीं।

'माँ चली गई क्या?' अपने पावों से चादर हटाते हुए

साकेत ने पूछा? सुरेखा मौसी ने हामी सूचक सर हिलाया। यूँ तो संगीत के कार्यक्रमों का कोई समय नहीं हुआ करता। फ़िर भी क्रिसमस या दिवाली की छुट्टियों में या फ़िर गणेशोत्सव और दुर्गापूजा के दौरान संगीत निशाओं की धूम रहती है। वैसे साकेत को मालूम था कि उसकी स्टेज आर्टिस्ट माँ को भी उस रोज़ कार्यक्रम देना है। अमूमन हर माह की सात तारीख को संगीत कार्यक्रम रहता था। साकेत ने कभी अपनी माँ को संगीत का कार्यक्रम देते हुए नहीं देखा था। लोगों के मुँह से सुना जरूर कि वह एक बेहतरीन कलाकार हैं।

जब भी कोई संगीत कार्यक्रम होता कार्यक्रम के आयोजक गाड़ी भिजवाते थे। पिताजी दफ्तर से सीधे वहीं जाते और वापसी में माँ और पिताजी एक साथ लौटते। आम तौर पर संगीत कार्यक्रमों के दौरान वे देर से ही घर वापस आया करते थे। तब तक साकेत गहरी नींद में सो चुका होता। साकेत उठकर सीधे बाथरूम में जा घुसा।

जब तक वह फ्रेश होकर वहाँ से निकला सुरेखा मौसी बिस्तर ठीक-ठाक कर चुकी थी। "चलो! अब जाकर कुछ देर टीवी देखो और फ़िर सो जाओ", मौसी का आदेश था। साकेत के लिए शाम व रात का यही प्रोटोकाल तय था। ड्राइंग रूम के बाएँ कोने में खिड़की के नीचे टीवी की स्क्रीन पर उसका पसंदीदा डिस्कवरी चैनल आ रहा था। साकेत सोफे पर बैठकर सेंटर टेबल पर रखी मैगजीन के पन्ने यूँ ही पलटने लगा। उसके पिताजी जब भी घर में होते अखबारों में सर गड़ाए रहते। वैसे दफ्तर के काम काज के अलावा उन्हें कुछ भी पसन्द नहीं था।

'और बेटा, कैसा रहा आज का दिन?" अमूमन रोज़ रात उसके पिताजी यही सवाल किया करते। हाँ ऽऽऽ हूँ ऽऽऽ कुछ ख़ास नहीं ऽऽऽ ठीक है ऽऽऽऽ जैसे तयशुदा शब्दों की औपचारिकता के बाद पिताजी माँ के पास शयनकक्ष में चले जाते। मिकी माउस और स्कूबी डू कार्टून चैनल में साकेत के प्रिय किरदार थे। उस दौरान किचन में सुरेखा मौसी की आवाजें बर्तनों की खनखटाहट के सुर से ताल मिलाती हुई कानों में गूँजती रहती। वह समझ जाता कि मौसी खाना बना रही है। साकेत, मैगज़ीन को टेबल पर छोड़कर कमरे से बाहर निकल आया।

गलियारे से होकर कुछ आगे माँ के कमरे का दरवाज़ा बन्द था। अक्सर इस कमरे का दरवाज़ा बन्द ही रहता था। माँ यहाँ पर संगीत का रियाज करती और घंटों तक यही सिलसिला चला करता। रात को जब चारों ओर सन्नाटा छा जाता संगीत के सुर ही गूँजा करते। अमूमन हर शख्स नींद की बाहों में कैद होता। उन जूही के अनगिनत फूलों के सिवाय जो निशिगंध के साथ मस्ती में बतियाते हुए मादक महक में महका करते।

जवानी की दहलीज़ पर कदम रखने के बाद साकेत को यह बात समझ में आई कि माँ के लिये वह कमरा महज कमरा नहीं एक शरणस्थली भी थी। बन्द कमरे के दरवाज़े को देखकर साकेत को लगता मानो वह माँ को उससे शारीरिक तौर पर अलग करने वाली दीवार हो। शारीरिक रूप से ही क्यों ही हों उस किवाड़ ने पूरी बदतमीज़ी से उसे माँ के मस्तिष्क के उस कोटर में भी दाखिल नहीं होने की साजिश रची थी जो शायद उसके लिए ही बना था।

ऐसा भी हो सकता है कि माँ ने खुद ही अपने दिमाग में जगह न देने सुरों की दुनिया का पुख्ता ताना-बाना बुन लिया हो। कहीं ऐसा तो नहीं कि गीत-संगीत में गुथे स्वर या सरगम पिघलकर ऐसी दीवार बन जाते हों जो माँ के मस्तिष्क में साकेत से जुड़े विचारों के इलेक्ट्रॉन्स को भीतर न आने देती हो! वैसे, साकेत को यह भी याद नहीं कि कब या कैसे उसकी माँ को अपने ही बेटे को ज़िंदगी के हाशिये पर रखने की ज़रूरत आन पड़ी। यह एहसास कमोबेश ऐसा ही था जैसे किसी अंकुर को ज़मीन के भीतर से सर उठाने आसमान या हवाओं के इशारे की मोहताज़गी नहीं होती।

जानकारियों के अलावा साकेत में ऐसा सिक्स्थ सेन्स विकसित हो चुका था जिसके तहत उसके विचारतंतु यथास्थिति को पूरी पारदर्शिता से स्वीकार करने लगे थे। बगैर कोई सवाल किये और स्वतः स्फूर्त भी। साकेत ने अपनी विकलांगता को पूरे आत्मविश्वास से स्वीकारा था। शायद उसका एक पैर छोटा होने से जुड़ी विकलांगता माँ के मन को भी सालती होगी...नोंचती, खसोटती और लहूलुहान कर देती होगी।

"कहीं मेरी माँ इस अन्तर्द्वंद्व से बचने गीत-संगीत के चक्रव्यूह में तो नहीं खोई रहती!", उसका बाल मन सोचने लगा था, 'माँ को कहीं अपने विकलांग बेटे के लिए कुछ न कर पाने का रंज तो नहीं होगा?' मैं शायद अपनी माँ का गाया हुआ बेसुरा गीत तो नहीं जो कभी सुरों से सज ही नहीं सकता! हो सकता है मेरी तरह अनेक लड़के-लड़कियाँ और बुज़ुर्ग भी होंगे, शारीरिक मानसिक विकलांगता के अभिशाप से जूझना जिनकी नियति बन चुका होगा!"

साकेत के कमरे के बाईं ओर बड़ा सा बैडरूम था जहाँ पर उसके माता-पिता सोया करते थे। जुगुप्सा के वशीभूत वह कमरे के भीतर गया।

अँधेरे कमरे में स्विच टटोलकर उसे ऑन किया। सबसे पहले उसे एक बड़ा सा डबल बेड नज़र आया। बिस्तर के बाईं ओर फर्श पर जूही के फूल बिखरे पड़े थे। शायद उस वेणी से अलग छिटककर गिरे होंगे जो माँ ने अपने जूड़े में लगाकर रखी थी। जूही के फूलों से माँ को बेहद लगाव था। अक्सर कार्यक्रमों के दौरान वह बालों में वेणी लगाया ही करती।

फ़िर साकेत की नज़र पड़ी ड्रेसिंग टेबल की ओर। आईने में उसने अपने आपको देखा। पतली बाहें, छोटे-छोटे कटे हुए बाल...बड़ी-बड़ी आँखें और शरीर कुछ दाहिनी ओर झुका हुआ। टेबल के ऊपर ही सौंदर्य प्रसाधन सजे हुए थे। आईने में अपनी ही छबि को देखते हुए जैसे-जैसे कुछ पल बीतते गए एक अनचीन्हीं झुरझुरी उसके बदन पर मकड़ी के सरकते पाँवों का एहसास कराने लगी। साकेत ख़ौफ़ज़दा होकर आईने से कुछ पीछे हटा। उसका प्रतिबिम्ब कुछ छोटा हुआ लेकिन ऐसा लगा मानो उसकी छवि और वह ख़ुद दोनों एक-दूसरे को घूर रहे हों। अब वह समझ गया था कि उसे क्या करना होगा।

साकेत पीछे मुड़ा और पैर की विकलांगता जितनी इजाजत देती थी उतनी तेजी से वह कमरे के बाहर आ गया। गलियारे से होता हुआ बड़े दरवाज़े से वह बागीचे में दाखिल हो गया। हालांकि वह नंगे पाँव था लेकिन पार करते वक्त मैदान की घास से पैर के तलुए भीगने का एहसास तक उसे नहीं हुआ। हरी घास का मैदान पार कर साकेत जूही की बेलों के पास आ गया। ड्राइंग रूम की खिड़की से छनकर आता रोशनी का आयताकार टुकड़ा जूही से गलबहियाँ कर रहा था। बारिश की पत्तियों का हरा रंग और भी चमका दिया था। जूही के फूल दूधिया चमक बिखेर रहे थे। बुद्ध की तरह समाधिस्थ खड़े बाँसों की कतार का ध्यान भी जूही की अठखेलियों से बेअसर था। भले ही जूही पीतवणी बाँसों से लिपटी हुई थी।

एक ही झटके में साकेत ने ज़मीन में गड़े बाँस को जूही सहित उखाड़ फेंका। अजनबी उन्माद के वशीभूत उसने उसी बाँस से जूही की सारी बेलें और झुरमुटतहस-नहस कर दिए। भीतर से सुरेखा मौसी उसे बुला रही थी। साकेत के माथे पर अनगिनत स्वेद बिन्दु चमकने लगे थे। छितराई हुई पूरी अधूरी पत्तियों के कुचले हुए टुकड़े... बेलों और डंठलों के अवशेष... बिखरे हुए दूधिया फूल जूही की खूबसूरती को अन्तिम अलविदा कह रहे थे। फोन पर घंटी अनवरत बज रही थी। ट्रिन... ट्रिन... ट्रिन... ट्रिन...! कुछ ही पल में सुरेखा मौसी वहाँ पहुँचने वाली थी... जूही का उजड़ा हुआ गुलशन पुष्परुदन गाथा का गवाह था।

साकेत ने योद्धा की तरह बांस फेंक दिया। उसकी साँसें धौंकनी की तरह चल रही थीं और जिस्म थरथरा रहा था। उसे ऐसा लगा मानो उसका मस्तिष्क बारिश बरसा चुके रीते बादलों की तरह हो चुका है। बाहर सड़क पर मरकरी लाइट की रोशनी से परे चमगादड़ों का झुण्ड बदलते वर्तुल में एक-दूसरे का पीछा कर रहा था।! बेटा साकेत!..." कहते हुए सुरेखा मौसी जब पहुँची वह अवाक रह गई थी। सब कुछ देखकर वह अपने काम-काज में लग गई।

लौटकर साकेत ने देखा नन्हे स्टूल पर एक लिफाफा अधखुला पड़ा था। साकेत ने मज़मून पढ़ा, अंतरराष्ट्रीय विकलांग चेतना मंच की मेज़बानी में एक निःशुल्क शिविर पुणे महाराष्ट्र में 7 नवंबर को आयोजित है। आपके पुत्र साकेत का पंजीयन हो चुका है। ऑपरेशन के बाद उसका पाँव पूरी तरह सामान्य हो जाएगा। साकेत ने जूही के फूलों के मुर्दा जिस्म...बेलों और पत्तियों को देखा। उन पत्तियों और फूलों की पंखुड़ियों पर साकेत का कहीं अधूरा, पूरा चेहरा सम्राट अशोक की तरह नज़र आ रहा था।

देवास की वीरा

डॉ. जया आनंद

प्रकृति और मन दोनों एकाकार हो रहे थे, बाहर बादलों का गर्जन और मन के भीतर असहनीय पीड़ा का नर्तन देवास की महारानी वीरा की आँखें पथरा गई थीं, अश्रु आँखों में जम से गए थे, कैसे हो गया ये सब एक भी ऐसी स्थिति का चिंतन तक नहीं किया।

एक शून्यता, एक स्तब्धता से महारानी वीरा घिर गई थीं कि अचानक आकाश में बादलों के बीच कड़कती हुई बिजली चमकी, महारानी वीरा की स्तब्धता में स्मृतियों की झनकार हुई। उस दिन महाराज वीरभद्र युद्ध से लौटे ही थे। महारानी वीरा, महाराज वीरभद्र के साथ परिसर के उद्यान में सरोवर के पास अठखेलियां कर रही थी।

'महारानी आप बहुत प्रसन्न प्रतीत हो रही हैं!'

'क्यों न हूँ महाराज! आप शत्रुओं को पराजित कर सकुशल लौटे हैं'

'हाँ यह तो ठीक है महारानी, लेकिन कभी आपने चिंतन किया है कि कभी मैं युद्ध में वीरगति को प्राप्त हो जाऊँ और देवास की सेना आपके पास मात्र मेरी तलवार लेकर वापस लौटे!'

'कैसी बातें कर रहे हैं महाराज!' महारानी वीरा बीच में ही बोल पड़ी...ऐसा कभी नहीं होगा महाराज!, आखिर महाराज वीरभद्र और महारानी वीरा चिरसंगी जो हैं एक-दूसरे के उचित है महारानी! आपका आशा और विश्वास से भरा दृष्टिकोण, पर मनुष्य को हर कठिन परिस्थिति के लिए तैयार रहना चाहिए, और हाँ मुझे इस बात का किंचित भी संदेह नहीं कि मेरी महारानी वीरा पूर्ण सक्षम है महाराज, धीर गंभीर होकर बोले।

'महाराज आप कैसी गंभीर बातें ले कर बैठ गए' महारानी वीरा ने हँसते हुए सरोवर का जल लेकर महाराज वीरभद्र की ओर फेंका।

पर जल की फुहार महारानी वीरा के तन को भिगो रही थी वहीं आँखों के अश्रु उसके मन को भिगो रहे थे। महाराज इस बार भी युद्ध में गए थे पर वह स्वयं नहीं लौटे बस उनकी तलवार और उनकी पगड़ी वापस आई थी, वह वीरगति को प्राप्त हुए थे। यही सत्य था जिसे महारानी वीरा झुठला देना चाहती थी। अभी तो उनके विवाह को मात्र एक वर्ष छः मास ही बीते थे। यह कैसा वज्रपात, यह कैसा असहनीय आघात, यह कैसी हृदय भेदी पीड़ा उफ्फ उसी क्षण किसी के कोमल हाथों का स्पर्श महारानी वीरा ने अनुभव किया। भीगी पलकों को जब उसने ऊपर उठाया तो सामने पाया वत्सलमयी सासू माँ का अंक।

माँ...माँ! कहते हुए फूट-फूटकर महारानी वीरा महाराज वीरभद्र की माँ यानी राजमाता के गले लगकर रोने लगी। राजमाता के चेहरे पर एक दिव्यता एक सौम्यता थी।

वह अपनी पीड़ा को छुपाए शांत भाव से महारानी वीरा से बोलीं 'महारानी वीरा! आप मेरी पुत्रवधु ही नहीं बल्कि मेरी बेटी जैसी हैं, आपकी पीड़ा को मैं नहीं समझूँगी तो कौन समझेगा? आखिर मैंने भी तो अपना पुत्र खोया है मेरे हृदय का टुकड़ा बोलते-बोलते राजमाता की आवाज़ लड़खड़ा सी गई पर दूसरे ही क्षण स्वयं को सम्हालते हुए बोली' मुझे गर्व है मेरे पुत्र पर जिसने देवास की रक्षा करते हुए अपने प्राणों की आहुति दे दी। महारानी वीरा! आप भी उसी देवास की महारानी हैं। अब देवास की बागडोर आपके हाथ है।

'माँ माँ!! मैं कैसे करूँगी यह सब नहीं हो पायेगा मुझसे यह सब! मैं स्वयं को सम्हालने में असमर्थ हो रही हूँ और आप राज्य सम्हालने की बात' महारानी वीरा फफक कर रो पड़ी।

'बेटी वीरा आप न केवल मेरी वधू, मेरी बेटी हैं बल्कि देवास की महारानी भी है। देवास आपके संरक्षण की बाट जोह रहा है। और महाराज वीरभद्र तो सदैव कहते थे कि महारानी वीरा किसी भी कठिन परिस्थिति के समक्ष घुटने नहीं टेक सकती।

महारानी वीरा सुबकते हुए राजमाता की बातें सुन रहीं थी। राजमाता महारानी वीरा के सर पर हाथ फेरते हुए जाने लगी तो महारानी वीरा ने उनका हाथ अपने हाथों में ले लिया

और आँखों में आँसू लिए कहने लगी 'माँ! आप जैसी सासू माँ को पाना मेरे लिए परम सौभाग्य की बात है आप मेरी माँ समान ही हैं।'

प्रातः काल दरबार सज गया था। राजमाता पधार चुकीं थीं। महारानी वीरा के लिए सभी दरबारी और राज्य की जनता प्रतीक्षारत थी। महारानी वीरा अपने कक्ष से निकल कर दासियों के साथ दरबार की ओर प्रस्थान कर रहीं थीं। बार-बार महारानी की आँखें महाराज वीरभद्र का स्मरण करते हुए नम हो जाती और पुनः वह उन अश्रुओं को छलकने से बचाते हुए चेहरे पर कठोर मुद्रा धारण कर लेतीं। आज अकेले ही महारानी वीरा को दरबार सम्हालना था, राज्य का कार्यभार लेना था।

महारानी वीरा ने महाराज वीरभद्र की छवि को चित्र में निहारा और फिर अपने आँसू पोंछ लिए। महारानी वीरा ने देवास राज्य का कार्यभार कुशलता से सम्हाल लिया। गृहकार्य की निपुणता हो या अस्त्र-शस्त्र चलाने की दक्षता दोनों में ही वह पारंगत थीं। प्रतिदिन वे तलवार बाज़ी, घुड़सवारी का अभ्यास करतीं।

दिनभर राज्य के कार्यों में स्वयं को व्यस्त रखतीं। सन्ध्या काल वह महल के पीछे बने उद्यान में अकेले भ्रमण करतीं, वहीं बहते सरोवर में हंस-हंसनी का जोड़ा उनके हृदय को हर्ष और विषाद दोनों स्थितियों में एक साथ ले जाता। एक ओर उस जोड़े को देखकर महाराज वीरभद्र का स्मरण हो आता तो मन हर्ष से भर जाता तो वहीं दूसरे ही क्षण उनके न होने का यथार्थ मन को विषाद से भर देता।

देवास राज्य का कार्य सुचारू रूप से चलने लग गया। एक दिन राजमाता महारानी वीरा के पास आईं 'बेटी वीरा! यहाँ अब वह उनकी बेटी ही हो गई थी आज हमसब पहाड़ी पर स्थित माँ चामुण्डा के दर्शन के लिए चलते हैं। माँ चामुण्डा देवास की सदैव रक्षा करती हैं।' अवश्य माँ! हम सब उनके दर्शन के लिए प्रस्थान करते हैं 'महारानी वीरा ने उत्फुल्लता प्रकट करते हुए कहा राजमाता, महारानी वीरा, मंत्री, सेनापति और कुछ दास दासियों के साथ पहाड़ी पर स्थित माँ चामुण्डा के दर्शन किये। माँ चामुण्डा! देवास की सदैव रक्षा करना और हमें आत्मबल, साहस, धैर्य देना महारानी वीरा भरे मन से प्रार्थना कर रहीं थीं।

उधर राजमाता करबद्ध माँ चामुण्डा के सामने अपनी व्यथा व्यक्त कर रही थीं 'माँ तुमसे बढ़कर मेरी पीड़ा कौन समझ सकता है। मैंने तो अपना पुत्र खोया है किंतु माँ! मैं अपनी पुत्रवधू और राज्य के समक्ष दुर्बल नहीं होना चाहती। मुझे साहस, शील प्रदान करो, देवास की सदैव रक्षा करो।' महारानी वीरा, राजमाता, मंत्री, सेनापति और दास-दासियों सहित महल वापस आ गईं।

उद्यान में महाराज और महारानी वीरा बड़े ही शौर्य और वीरता के साथ तलवार बाज़ी कर रहे थे। 'महारानी! आप मुझे नहीं हरा सकती' महाराज हंसते हुए महारानी वीरा से बोले।

'मैं महारानी वीरा आपकी पत्नी हूँ, मैं आपको हराना नहीं चाहती पर जीतना अवश्य चाहती हूँ। तलवार की टंकार की गूंज से महारानी वीरा की निंद्रा भंग हो गई! महारानी वीरा स्वप्न देख रही थी ऐसा स्वप्न जो पहले सच हो चुका था पर अब शायद।'

उसी समय एक सेविका ने आकर सूचना दी महारानी! मंत्री वर सिंहमित्र पधारे हैं।

'उन्हें भीतर आने दो' महारानी वीरा ने आदेश दिया।

'सादर नमस्कार महारानी वीरा!'

'क्या समाचार है मंत्रीवर'

'महारानी! सूचना मिली है कि अंग्रेज देवास पर आक्रमण करने वाले हैं और अपना आधिपत्य जमाने वाले है।'

'क्या अंग्रेज़ों का इतना दुस्साहस! हम देवास की रक्षा के लिए प्राण पण से तैयार हैं। आप दरबार में चलिए, हम अभी वहाँ उपस्थित होते हैं' महारानी वीरा की आवाज़ में गाम्भीर्य प्रतीत हो रहा था।

राजमाता कक्ष के बाहर से यह समाचार सुन रहीं थीं। मंत्री सिंह मित्र के जाते ही राजमाता ने महारानी वीरा के कक्ष में प्रवेश किया।

'प्रणाम माँ! महारानी वीरा ने खड़े हो कर अभिवादन किया।'

'बेटी वीरा! मैंने समाचार सुना, अब कैसे!!'

'हाँ माँ! मैं भी बहुत चिंतित हूँ कैसे होगी देवास की रक्षा? हमारे पास तो सैन्य शक्ति भी अधिक नहीं और न उत्कृष्ट तकनीकि युक्त बड़े तोप गोले या हथियार हैं और महाराज वीरभद्र भी नहीं' बोलते हुए महारानी वीरा की आवाज़ मद्धम पड़ गई, चेहरे का गाम्भीर्य बह चला और एक सामान्य स्त्री की सी चिंता, घबराहट चेहरे पर व्याप्त हो गई।

'माँ! कैसे होगा अब, कैसे?' राजमाता का हाथ पकड़ कर महारानी वीरा चिंतित स्वर में बोल उठी।

'होगा बेटी, सब होगा। आप भीमाबाई को जानती हैं'

'भीमाबाई!!'

'हाँ भीमाबाई , इंदौर के महाराज यशवंत राव की पुत्री और अहिल्याबाई होल्कर की नातिन भीमाबाई। उन्हें भी बहुत कम आयु में वैधव्य का सामना करना पड़ा था। लेकिन उन्होने साहस, धैर्य का साथ नहीं छोड़ा। जब अंग्रेज़ो ने आक्रमण किया तो उन्होंने गोरिल्ला युद्ध के द्वारा अंग्रेज़ो को पराजित किया। कर्नल मैकमल को मुँह की खानी पड़ी। इस तरह वह स्वतंत्रता संग्राम की प्रथम महिला बनी। बेटी वीरा आपको भी उनसे प्रेरणा लेनी चाहिए।

'माँ! मैं अपने अंदर आत्मविश्वास भरती हूँ पर फिर कहीं न कहीं से दुर्बलता आ कर घेर लेती हैं, मन टूटने लगता है,' महारानी वीरा विह्वल हो कर राजमाता से बोले जा रही थीं 'हाँ बेटी! बहुत स्वाभाविक है यह, कई बार ऐसी स्थिति आती है जब सर्वत्र अंधकार दीखता है, निराशा कई बार हमें आच्छादित किये रहती है पर उन सबके बीच हमें आशा का दीपक जलाए रहना होता है, आत्मिक शक्ति से मन को सम्बल देना होता है। बेटी वीरा! मुझे आप पर और आपकी क्षमता पर पूर्ण विश्वास है। आप भीमा बाई को अपनी प्रेरणा बनाइये।'

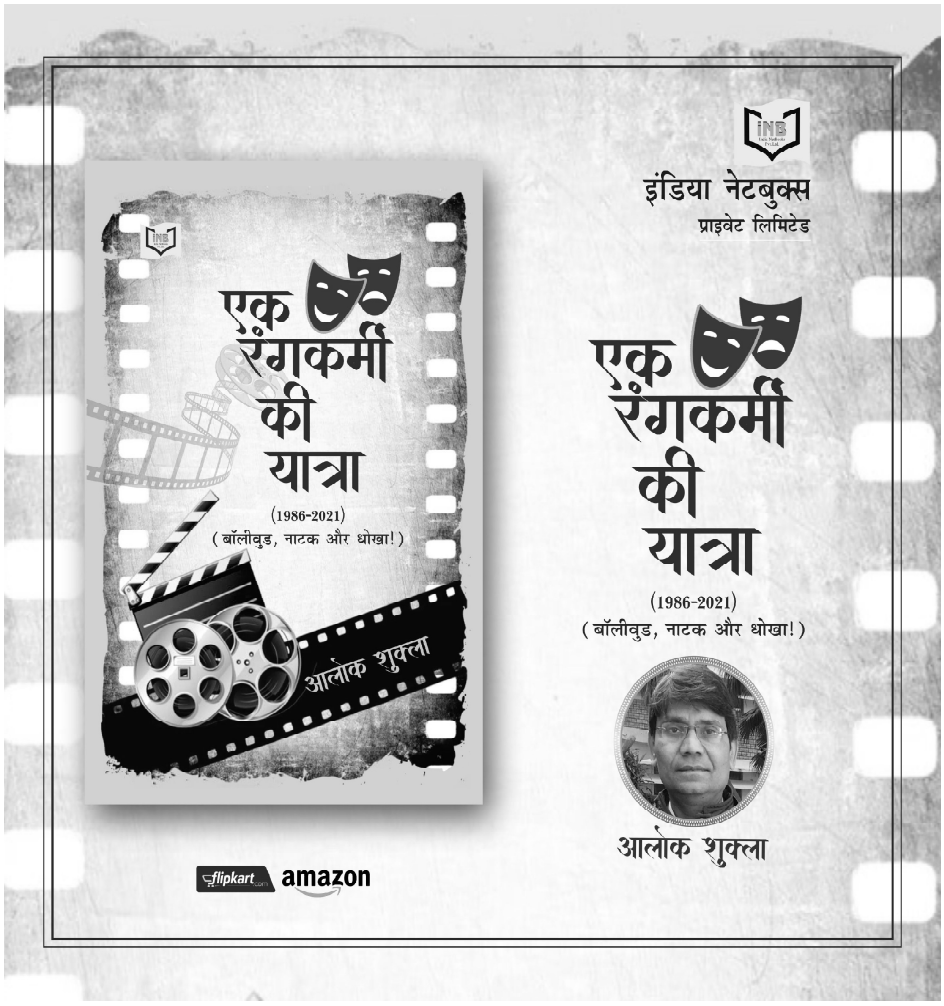

वस्तुतः जीवन का पग-पग प्रेरणाओं से अनुप्राणित होता है। महारानी वीरा ने आत्मविश्वास को पुनः जागृत किया और एक तेजोमयी दृष्टि के साथ दरबार में

उपस्थित हुईं।

'मंत्रिवर! हमारे पास समुचित सैन्य शक्ति नहीं है और आधुनिक हथियारों का भी अभाव है जबकि अंग्रेज़ आधुनिक तकनीकि के हथियारों से परिपूर्ण हैं इसलिए हम उनसे गुरिल्ला युद्ध करेंगे। हमारी प्रजा से जो भी योद्धा इस युद्ध में सम्मिलित होना चाहते हैं, उन्हें संदेशा भेजिए।'

मात्र दो दिवस की अल्पावधि में अनेक नागरिक योद्धा तैयार हो गए। अगले ही दिन महारानी वीरा, सेनापति, मंत्री, सैनिक और नागरिक योद्धाओं ने देवास के पास जंगल में डेरा जमाए अंग्रेजों पर संध्याकाल में अचानक ही आक्रमण कर दिया। अंग्रेज़ हतप्रभ थे, उन्हें इसकी तनिक भी भनक भी न थी।

'जय माँ चामुण्डा, जय भवानी' सर्वत्र यही आवाज़ गुंजायमान थी।

'व्हाट इज़ दिस, व्हाट इज़ हैपनिंग हियर यह क्या हो रहा है' अंग्रेज़ों की यही आवाज़ सुनाई पड़ रही थी।

'हमारे देवास की पुण्यभूमि पर आधिपत्य जमाना चाहते हो!! यह असंभव है, यह स्वप्न तुम्हारा कभी साकार नहीं होने वाला' महारानी वीरा ने ललकारते हुए तलवार के वार से अंग्रेज सिपाहियों की गर्दन धड़ से अलग कर दी। सैंकड़ों अंग्रेज़ सैनिक मारे गए।

वे भयभीत हो उठे। जब तक वे अपने आधुनिक हथियारों के साथ आगे बढ़ते, महारानी वीरा और उनके सैनिक गुरिल्ला युद्ध करते हुए अदृश्य हो गए। इस प्रकार गुरिल्ला युद्ध से त्रस्त अंग्रेज़ों ने अपनी हार मान ली और उन्होंने देवास पर अधिकार करने का सपना छोड़ दिया। माँ चामुण्डा के आशीर्वाद से देवास सुरक्षित रहा।

'देवास के सभी नागरिकों को मेरा सादर प्रणाम!, आप सब लोगों के सहयोग से हम अंग्रेज़ों के विरुद्ध विजयी हुए, उन्हें मुँह की खानी पड़ी' महारानी वीरा दरबार में गौरवान्वित हो कर सभा को संबोधित कर रही थी। राजमाता का चेहरा स्वाभिमान से दमक रहा था।

'महाराज वीरभद्र की जय, महारानी वीरा की जय, राजमाता की जय, माँ चामुण्डा की जय, देवास भूमि की जय!!' समस्त सभा जयकारों से गुंजित थी।

'माँ! माँ!' नम आँखों से महारानी वीरा सभा समाप्ति के बाद राजमाता के चरणों मे झुक गईं।

'उठो बेटी! आपका स्थान चरणों मे नहीं मेरे हृदय में है। आपने देवास की रक्षा कर हम सब का मान बढ़ाया हैं। आपके जैसी पुत्रवधू पाकर मैं धन्य हूँ। वीरांगना भीमाबाई की नीतियों का आपने अक्षरशः पालन किया। बेटी वीरा! आपने स्त्री शक्ति को भी गौरवान्वित किया है "राजमाता का स्वर गर्व से दीप्त था।

'...किंतु माँ मैं भीतर से कहीं टूटन अनुभव करती हूँ, प्रतीत होता है कि महाराज के बिना मेरा कोई अस्तित्व नहीं। मैं तो बस अपना उत्तरदायित्व निभा' डबडबाई आँखें लिए महारानी वीरा का स्वर भर्राए गले के साथ अधूरा ही रह गया।

बात को बीच में काटते हुए राजमाता बोलीं 'बेटी वीरा! प्रत्येक जीवन महत्त्वपूर्ण होता है, वह चाहे फिर स्त्री का हो या पुरुष का और आप ऐसा क्यों सोचती हैं कि महाराज वीरभद्र के पश्चात आपके जीवन का कोई अर्थ नहीं।

आपका जीवन आज भी उतना ही महत्त्वपूर्ण और सार्थक है जितना कल था और देवास की रक्षा कर आपने प्रमाणित भी कर दिया। आप वीरा हैं, तन और मन की ऊर्जा, सामर्थ्य से परिपूर्ण।

'माँ! माँ!!!! 'महारानी वीरा की आँखों से अश्रु की धारा अति आवेग से बहने लगी अपने अश्रुओं को पोंछते हुए महारानी वीरा कहने लगीं' माँ! मुझे आप जैसी सासू माँ पर गर्व है। मैं धन्य हूँ आपको पाकर। राजमाता ने स्नेहातिरेक से महारानी वीरा को अपने अंक से लगा लिया। एक आशीष भरा हाथ, स्नेह, अनुराग, हृदय सहलाता एक भाव, सम्बल देता एक मन बहुत कुछ जीवन को दे जाता है। यों तो जीवन में अपूर्णता बनी ही रहती है!!

महामनवों के काम आने
वाली वस्तुएँ चाहे सौ की
ही क्यों न हों, वो हज़ारों
और लाखों की होती हैं।

आज खाने में क्या बना लूँ

मेघा राठी

बेचारी पत्नियाँ हर तरह से दुखी हैं, पति को महत्व दें तो परेशानी न दें तो परेशानी। सयानी होने के साथ ही हर लड़की को आते-जाते कोई न कोई किसी भी बहाने से नसीहत दे जाता है कि पति से बिना पूछे कोई काम मत करना ताकि आगे कोई दिक्कत न हो। पति की आज्ञा सर्वोपरि होती है। पति से बना कर रखने और खुश रखने में ही पत्नी की समझदारी है।

दादी नानी, आंटी चाची सभी आदर्श पत्नी के गुण सिखाने का कोई न टोटका गांठ बंधवा ही देती हैं।

और तो और हमारी फिल्में भी पीछे कैसे रह सकती हैं, गाने अक्सर कानों में पड़ते ही रहते हैं 'भला है बुरा है जैसा भी है, मेरा पति मेरा देवता है।' तुम्हीं मेरे मंदिर तुम्हीं मेरी पूजा तुम्हीं देवता हो।' और कुछ नहीं तो आधुनिक शब्दों का प्रयोग करके पति का महिमंडन करता हुआ गीत आजकल बहुत प्रचलन में है। नई नवेली दुल्हनें काला चश्मा लगाकर मटकते हुए भावी पति को खुश करने के लिए गाती हैं, 'मेरे सैया सुपर स्टार मेरे सैंया सुपर स्टार, मैं फैन हुई उनकी'!

तो भई अब बचपन से लड़कियों ने जिस बात को घुट्टी में घोल घोल कर पिया है, वे उससे मुँह कैसे मोड़ लें! पतिदेव खुद मानते हैं कि वे सर्वज्ञ हैं, सब जानते हैं इसीलिए तो टीवी का रिमोट उनके हाथ में होना आवश्यक है। एक पति परायण मॉर्डन स्त्री के कर्तव्यों में एक यह भी जुड़ चुका है कि जैसे ही पति रूपी देवता का आगमन हो वह

अपने तमाम सीरियल अनुपमा वगैरह छोड़ कर, बच्चों के कान पकड़कर वहाँ से उठ जाए और सोफे के सामने की मेज पर पतिदेव के पैर फैलाने हेतु स्थान बना दे तत्पश्चात उनके हाथ में रिमोट पकड़ा कर स्वयं रसोई में जाकर उनके क्षुधापूर्ति हेतु भोजन का प्रबंध करे तथा जब तक भोजन व्यवस्था में विलंब हो तब तक उनके हेतु चाय अथवा कॉफी रूपी पेय का प्रबंध कर कुछ नमकीन बिस्कुट भी सामने रख दे।

बदबू मारते पतिदेव के मोजों को श्रद्धापूर्वक उठाकर नाक सिकोड़ते हुए वाशिंग मशीन में डालकर पुनः चेहरे पर मुस्कुराहट लाते हुए रसोई में प्रवेश करें।

पर पतिदेव की खिन्नता तब जाग्रत अवस्था में आती है जब पत्नी विनम्रतापूर्वक उनसे आदेश लेने आती है कि खाने में आज क्या बनाऊँ। तत्काल पति देव किंचित रोष में आकर परंतु पूर्ण रूप से अपने अधिकार का प्रयोग कर विभिन्न पकवानों के नाम बताना आरंभ करते हैं परंतु पत्नी विवश होती है कि उनमें से अधिकांश व्यंजनों हेतु सामग्री उपलब्ध नहीं होती।

पतिदेव कार्यालय से आने के पश्चात इतने थके हुए क्लांत अवस्था में होते हैं कि वे टीवी चैनल बदलने के अतिरिक्त अन्य किसी भी कार्य को करने हेतु स्वयं को असहाय घोषित कर देते हैं अंत में आखिरकार लौकी, तोरई या आलू की सब्जी बना देने का आदेश ही पारित कर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर देते हैं भले ही बच्चे रोज इन सब्जियों को देख कर मुँह बनाए परंतु पिताश्री के सम्मुख एक अक्षर भी न बोल कर वे चुपचाप माँ से मैग्गी की हामी भरवा लेते हैं।

कार्यालय में व्यस्त पतिदेवों के पास जैसे ही पत्नीश्री का संकटपूर्ण प्रश्न फोन के माध्यम से पहुँचता है कि आज खानें क्या बनाऊँ वे महत्वपूर्ण से महत्वपूर्ण फाइल एक तरफ रख इस विचार विमर्श में व्यस्त हो जाते हैं, आखिर इंसान कमाता किसलिए है, खाने के लिए ही न।

यहाँ तक तो सब ठीक है लेकिन इस समस्या को जब राष्ट्रव्यापी समस्या घोषित कर सोशल मीडिया पर पति स्वयं के लिए जब एक ऐसे चिराग की माँग कर बैठते हैं जिसका जिन्न उनको सिर्फ इतना भर बता दे कि शाम को खाने में क्या बनना है तब परमपिता परमेश्वर से जिन चरणों में लोटकर प्रार्थना करता है कि उसे इस आपदा से बचा लिया जाय।

जबकि देखा जाए तो पत्नियों को इस चिराग की आवश्यकता सबसे अधिक है क्योंकि पतिदेव की आज्ञा बिना लिए अगर उन्होंने टिंडे बना लिए तो वे मुँह फुलाकर बाजार में कचौड़ी, छोले भटूरे खाने चले जाएँगे, बच्चे भी आदरणीय पिताश्री की राह का अनुगमन करते हुए स्वयं के लिए ऑनलाइन ऑर्डर कर लेंगे और टिंडे आयेंगे पत्नी जी के हिस्से में निपटाने के लिए क्योंकि सब्जियाँ इतनी महंगी जो हो गई हैं।

फिर पतियों को शिकायत हो जाती है कि हर बार हमसे क्यों पूछती हो, बना लिया करो कुछ भी। अब बेचारी पत्नियों क्या गलती जो अपने पति को हर सवाल का जवाब समझती हैं, इसलिए पूछती हैं कि खाने में क्या बना लें।

पति रूपी देवताओं की इच्छा के विरुद्ध भी कुछ नहीं पकाया जा सकता है और उनसे बार-बार पूछने पर उनके रूष्ट होने की आशंका पत्नियों का गला सुखा देती है क्योंकि ये देवता आसानी से अपने मठ में भी तो नहीं आते।

लो जी, इन सब बातों के चक्कर में मुझे याद आया कि रात के खाने का समय हो गया है, जरा मैं भी पतिदेव को फोन करके पूछ लूँ कि आज क्या सब्जी बनानी है हालांकि तोरई और आलू के अलावा सिर्फ बैंगन ही है उनके चयन हेतु परंतु है पत्नियाँ पति की आज्ञा शिरोधार्य कर वही बनाएँगी जो वह कहेंगे।

ठहराव ठहरे हुए तालाब की तरह होता है और 'बदलाव' बहती हुई नदी की तरह होता है।

***

गूँगा और बहरा होना आलसी होने से अच्छा है।

***

खराब वाहन के लिए सभी सड़कें खराब होती हैं।

***

कल महल मिले, इससे अच्छा है आज मकान मिले।

मुकम्मल जहाँ

मीनू त्रिपाठी

'एक और लीजिये' कविता ने गर्मागर्म घी चुपड़ी रोटी पति के बॉस शुभम सक्सेना की थाली में रखी तो वह हँसकर बोले, 'दो से ऊपर नहीं लेता हूँ पर आज चार रोटी खा ली। पेट भर गया पर मन नहीं इतना स्वादिष्ट खाना बनाना कहाँ से सीखा आपने।'

शुभम की तारीफ पर कविता संकोच से सिमट गई पर सुधीर बोल पड़ा, 'अरे सर, कविता बहुत घरेलू है। घरेलू औरतों को ये सब सीखना नहीं पड़ता है।'

'सच कहूँ तो घरेलू होना नायाब है, और घर गृहस्थी संभालना कला' शुभम बेसाख्ता बोले तो सुधीर हँसा, 'अरे, सर गृहस्थी चलाने में कौन सी क्वालिफिकेशन चाहिए।'

'गृहस्थ जीवन एक तरह से तपोभूमि है। समर्पण त्याग जैसी क्वालीफिकेशन चाहिए इसके लिए और ये तो विरलों को ही मिलती है। जानते हो, पिछले दिनों मेघा के साथ एक हाईफाई ढाबे में गया। पाँच सितारा सुविधाओं वाले तथाकथित ढाबे के वातानुकूलित डाइनिंग हॉल में जमीन में मखमली रेशम के नर्म गद्देनुमा आसन बिछे थे।

चमचमाती चौंकियों पर रखे थाल में परंपरागत तरीके से भोजन परोसा जा रहा था। चम्मच और काँटे हमें नहीं दिए गए थे। हाथ से खाना खाने में अनुपम अनुभूति तो जरूर हुई पर हँसी भी आई कि जमीन से उठे हम कभी जमीन पर बैठकर हाथ से खाना खाने को दकियानूसी मानते थे। और यहाँ जमीन से जुड़ना स्टाइल आईकॉन माना जा रहा है। कुछ ऐसा ही होगा

आने वाले युग में घरेलू होना...

'ये भी सही है सर, आजकल घरेलू औरतें बस नाम की घरेलू रह गयी है। खाना बनाने के लिए उन्हें भी कामवालियों का मुँह ताकते देखा है...' 'पर कविता जी के हाथ का बना खाकर लगता है इन्होंने कामवाली का मुँह कभी नहीं देखा। जानते हो सुधीर, आज मैं अपनी माँ को याद करके नॉस्टालजिक हो जाता हूँ। घर की जिम्मेदारी बखूबी सँभालती थी। रोज शाम को तैयार होकर पिताजी का इंतज़ार करती थी।

पिताजी लाख तनाव लेकर घर आएँ पर माँ का मुस्कुराता चेहरा देखकर मुस्कुरा ही पड़ते थे। आज कितनों को नसीब होती होगी ऐसी शाम। इसलिए जो है उसकी कद्र करो। मुझे तो तुम्हारी किस्मत से ईर्ष्या हो रही है।'

'और मुझे आपकी' जवाब में सुधीर कहना चाहता था पर चुप रहा।

एक हफ्ते पहले कंपनी की सिल्वर जुबली में बॉस के साथ आई उनकी पत्नी मेघा को देखकर वह बेतरह चौंका था वह कुछ प्रतिक्रिया देता उससे पहले मेघा ने ही पूछ लिया, 'तुम जमशेदपुर से हो न?'

'जीजी' वह हकबका गया था।

'तुम दोनों एक-दूसरे को जानते हो क्या?' बॉस के पूछने पर मेघा बोली, 'ये जनाब मेरी सहेली को देखने आए थे पर वो इन्हें पसंद नहीं आई...'

'अच्छा कौन थी?'

'थी एक, बच गयी।" कहकर वह खिलखिला पड़ी...उसकी हँसी तीर की तरह चुभी थी। विश्वास ही नहीं हुआ कि यह वही मेघा है जिसे वह एक दिन देखने गया था।

'क्या हुआ, खा नहीं रहे, और सब्जी दूँ क्या...' कविता के टोकने पर सुधीर वर्तमान में आया।

सुधीर के प्रति कविता का कंसर्न शुभम को अद्‌भुत लगा। उस दुर्लभ दृश्य को देख उनके मन में कसक उठी।

वह और मेघा तो अलबत्ता साथ खा ही नहीं पाते और खाते भी है तो डाइनिंग टेबल पर अपने-अपने कार्यक्षेत्र को लेकर ही चर्चा होती है।

मेघा न तो खाने में कोई जोर जबरदस्ती पसंद करती है न दूसरो के लिए करती है। वैसे भी कुक इतनी वेराईटी परोस देता है कि देखते ही पेट भर जाए।

"तुम्हारी पत्नी पर अन्नपूर्णा का आशीर्वाद है। इस स्वाद और सत्कार से आत्मा तृप्त हो गयी।"

चलते समय शुभम बोले तो तो कविता ने भी हाथ जोड़कर कह दिया, "सादा सा खिला पाई। किसी दिन मेघा जी को भी लिवा लाइ, तब कुछ ढँग से सत्कार करूँ।'

'सुधीर बहुत दिनों से घर बुला रहा था। यहाँ किसी काम से आया तो चला आया। मेघा बहुत बिजी रहती है। फिर भी कोशिश करूँगा कभी हम दोनों आएँ।' शुभम सरलता से बोले। उनके जाने के बाद सुधीर कविता पर झुंझला उठा, 'तमीज है ज़रा भी मेघा जी एक मल्टीनेशनल कंपनी की बड़ी अधिकारी है...शुक्र करो नहीं आई, वरना क्या कहती तुम्हें देखकर। कपड़े चेंज नहीं कर सकती थी।'

सुधीर का गुस्सा उसकी मुसी हुई तेल-मसालों से गंधाती साड़ी पर उतरा।

कविता को अफ़सोस हुआ कि मौक़ा निकालकर कपड़े क्यों नहीं बदले। क्या करती वह भी...सुधीर ने अचानक सूचना दी, 'बॉस का फोन आया है। यहाँ पास ही किसी काम से आए हैं। घर आने को बोल रहे हैं। पाँच-दस मिनट में चाय-पानी की तैयारी कर लो...' सुनते ही वह रसोईं में जुट गयी। जब तक वहाँ से फुर्सत पाती बॉस पधार चुके थे।

चाय नाश्ते के बाद देर तक रुक गए तो सुधीर ने औपचारिकता वश खाने को पूछ लिया तो वह भी उनसे आग्रह कर बैठी, 'खाना खाकर जाइये' स्नेहभाव को वह नज़रंदाज़ नहीं कर सके और तैयार हो गए। उसने तो बिना शिकन के फटाफट खाना तैयार किया और खिलाया तो उन्होंने भी मन से खाया इसमें गलत क्या हो गया।

रसोईं समेटकर वह कमरे में गयी तो सुधीर को कमरे की छत ताकते देख समझ गयी कि अभी भी नाराज है।

हमेशा की तरह अपने मान अभिमान की चिंता किये बिना वह बोली, 'अच्छा ये तो बताओ खाना कैसा था?'

'खाने का क्या है कविता... तुम्हारी दुनिया तो बस

उसी के इर्द-गिर्द घूमती है। मैंने तो खाने के लिए औपचारिकतावश पूछा तुम तो उनके पीछे ही पड़ गयी...'

'मैं कैसे समझती कि आप औपचारिकता कर रहे है।'

'समस्या यही है... तुम दुनियादारी नहीं समझती। ऐसा सादा खाना अपने बॉस को खिलाकर खुश होऊंगा क्या?'

'क्या ठीक नहीं बना था।'

'अब फाइवस्टार जैसा तो था नहीं उनका बड़प्पन था सो तुम्हारी तारीफ़ कर गए' कहकर उसने आँखे मूँद ली पर मन भटक रहा था। बॉस तो सीधे-सादे है पर मेघा? वह घर आती तो सारी इज्जत धरी की धरी रह जाती। कहाँ घरेलू सीधी-सादी कविता और कहाँ आत्मविश्वास से लबरेज मेघा अगली बार नियोजित कार्यक्रम के अनुसार ही बुलाना होगा...कविता से कहना होगा खाना काफी नहीं, प्रेजेंटेशन पर ध्यान दे।

आज स्टील के बर्तनों में खाना परोसना अजीब लगा था। बोनचाइना का सेट है पर वह बैठक के दीवान वाले बॉक्स में रखा है उनके सामने निकाल ही न पाए...और कविता जो जबरदस्ती खाना थाली में डालती है वो भी अजीब लगता है।

उस दिन जब वह मेघा से मिला तब हाईटी के समय उसे भरी हुई प्लेट पकड़ाई जाने लगी थी तब वह कितनी अदा से नो-नो आई विल हेल्प माई सेल्फ कहकर बस थोड़ा सा ढोकला लिया था।

मेघा का ख्याल आते ही विचारों का कारवां अतीत की ओर मुड़ गया।

मेघा को पहली बार देखा था तब वह आम सी लड़की लगी थी। इतना कैसे बदल गयी। उसका पहनावा, चाल-ढाल सब मॉडल जैसा हो गया है। बोलती तो तब भी आत्मविश्वास से ही थी।

'मेघा जी लाइफ से आपकी क्या एक्सपेकटेशन है।' उसने सँभलकर पूछा तो वह बेहिचक बोली, 'मैं उड़ना चाहती हूँ ऊँचा, खूब ऊँचा आम औरतों सा जीवन नहीं बिताना चाहती।'

एम्बीशियस होना ठीक है पर एक सेल्स गर्ल का करियर ग्राफ आखिर कितना बढ़ेगा वह हमेशा की तरह दुविधा में फँसा था।

'लड़की बोल खूब लेती है पर दिखने में कुछ ख़ास नहीं है। अपना सुधीर तो हीरो है मेरी मानो एक बार पानागण वाली भी देख लो।' बुआ ने पानागढ़ वाली लड़की की बात उठाई तो अम्मा बोलीं, 'अरे नहीं जीजी, पक्के रंग की है पर फीचर्स अच्छे है।' वह हमेशा की तरह कन्फ्यूज था। उसका मन कह रहा था, मेघा से पहले वाली लड़की ज्यादा सुन्दर थी और करियर भी अच्छा था पर उसका घर नहीं ठीक लगा इसके साथ रिश्ता समझौता करना जैसा न हो जाए।

जमशेदपुर का कोई कोना नहीं छूटा था जहाँ उसके लिए लड़की न देखी गयी हो पर वह कभी लड़की की शक्ल में खोट निकालता तो कभी बौद्धिकस्तर पर कम आंकता... कोई ज्यादा बोलने वाली लगती तो कोई एकदम चुप किसी की नौकरी का ऑड समय अखरता तो किसी के पैकेज में कमी होती।

अम्मा अब लड़कियाँ देख-देख शर्मिन्दा और बहने खीजने लगी थी। इन्हें कोई लड़की ही पसन्द नहीं आती ये ठप्पा भी लगता जा रहा था सो अम्मा और बहनों ने मेघा के लिए उसका घेराव किया पर मन की क्या कहें जो कह रहा था कि क्या पता पानागण वाली ज्यादा अच्छी हो।

आखिरकार वहाँ भी हो आया गया। बुआ की बताई पानागण वाली लड़की गोरी तो थी पर फीचर्स कोई ख़ास नहीं थे। नौकरी भी मामूली थी। पूर्व में देखी कई लड़कियों से मेघा जरूर कमतर थी पर पानागण वाली से बेहतर थी। यह सोचकर मेघा के लिए उसकी हाँ हो ही गई पर तब तक देर हो चुकी थी। पता चला उसका रिश्ता तय हो चुका है, उससे ज्यादा अच्छे लड़के से 'ज़्यादा भी लड़कियाँ नहीं देखनी चाहिए। औंधे मुँह गिरता है आदमी... आज पाँच साल से रिश्ता ढूँढ रहे है, जाने कौन हूर की तलाश है।' कुछ ऐसी सुगबुगाहटें सुनाई देने लगी थी। महीनों उसके लिए कोई रिश्ता नहीं आया।

मन ही मन वह भी घबराने लगा था। विगत में ठुकराई अच्छी लड़कियों को यादकर सर धुनने का मन होता।

उन्हीं दिनों अम्मा की एक सहेली जो इलाहाबाद से

जमशेदपुर तबादले पर आई थी उनका फोन आया।

बचपन की सहेली से सालों बाद बात करते हुए अम्मा ने अपने मन के छाले उन्हें दिखाए तो सहेली ने कहा, 'जब इतने रिश्ते ठुकराए है तब एक और देख लो। न पसंद आए तो मना कर देना।' अम्मा ने उससे बात की तो बढ़ती चर्बी और झड़ते बाल से आतंकित हो उसने झटपट हाँ कर दी।

मंदिर में कविता को दिखाया गया। साधारण रूपरँग की सीधी-सादी कविता को देख माँ और बहने की आँखों मे कोई चमक नहीं थी। कविता की बड़ी बहन ने कहा, 'कविता के लिए आप लोगों की हाँ हो तो भगवान का आशीर्वाद दिलवा दें।'

उसकी नज़र भगवान की ओर उठी तो वह अपराध बोध से भर उठा। अनगिनत लड़कियों को बेदर्दी से न कहने वाला वह उस दी न नहीं कर पाया।

अम्मा ने हँसकर कहा भी कि 'इतनी जल्दी क्या है घर जाकर बताते है... पर उसके मुँह से निकल पड़ा 'जैसा आप बड़े समझे मुझे आपत्ति नहीं...' उसके हामी भरते ही सभी विवादों पर विराम लग गया।

अम्मा बहनें बहुत खुश नहीं थी। उनके सामने तमाम वो चेहरे घूम गए जिन्हें उन्होंने बड़े अरमान से उसके लिए ढूंढा था। पर लेख संयोग उसके और कविता के मध्य आकर बैठ गया तो हाँ तो होनी ही थी। सबकी फीकी प्रतिक्रिया से मन में दंश सदा के लिए गड़ा गया कि इतनी योग्य लड़कियों को मना करने का नतीजा है कविता-कविता की सादगी, उसकी परिवार परायणता, सेवा निष्ठा सब पूर्व में छोड़ी गई लड़कियों के अफ़सोस की भेंट चढ़ गई।

करवटें बदलता सुधीर बॉस की किस्मत पर रश्क कर रहा था कि मेघा जैसी पत्नी पाकर वह चैन की नींद सो रहे होंगे पर, वह नादान क्या जानता था कि उसके बॉस शुभम सक्सेना भी उसी की तरह बेचैनी से करवटें बदलते सोच रहें है।

भला हुआ जो उस समय कविता ने उन्हें नहीं देखा पर उन्होंने इसी कविता को देखा था। मुजफ्फर नगर की आर्या कालोनी में मालिक मकान सवर्णलता आंटी के घर वह दो-चार दिनों के लिए आई थी। छत पर कभी-कभार ही आती थी तब गाहेबगाहे कमरे की खिड़की से उस पर नज़र पड़ जाती थी। एक दिन कविता छत पर कपड़े फैलाने आई तो माँ ने धीरे से कहा–

'शुभम, उस लड़की को ध्यान से देखने लगा लता की बहन की बेटी है। आजकल की लड़कियों को देखते हुए बड़ी सीधी है।

खाना बहुत अच्छा बनाती है कविता नाम है इसका३ लता बता रही थी कि लड़का ढूँढ रहें है इसके लिए जो तुझे ठीक लगे तो बात चलाऊँ' वह चिहुंक पड़ा था 'कौन वो अरे बिलकुल नहीं...' उसके बाद वह लता आँटी के सामने कम ही पड़ा और कविता के सामने तो बिलकुल भी नहीं बाद में उसका लेख संयोग मेघा के साथ बैठा।

आज उसे सुधीर की किस्मत से रश्क हो रहा था... बार-बार कविता का कभी रोटी, तो कभी सब्जी के लिए पूछना मन को टीस रहा था।

काश! उस वक्त करियर ओरिएंटेड, फैशनेबल लड़कियों की आकांक्षा न पाली होती तो वह कविता के साथ सुकून भरे जीवन को जी रहा होता।

काश! इस फाइव स्टार लग्जरी के बीच कोई ऐसा होता जो घरेलू होता। घर आने पर उसके सुख-दुःख बाँटता, खाना परोसता... 'कुछ और लेंगे... कैसा बना है? आप कुछ खा ही नहीं रहे हैं।' सरीखे सामान्य से प्रश्न पूछता–

'कभी किसी को मुकम्मल जहाँ नहीं मिलता' शुभम के कानों में सहसा मेघा की गुनगुनाहट पड़ी तो वह चौंक उठा, सोच-विचार के तंतु बिखर गए।

लैपटॉप पर झुकी काम करती मेघा को गुनगुनाते देख शुभम सहसा मुस्कुरा उठा। यूँ लगा मानो गीत के बोलों ने जीवन के फलसफे को समझा दिया हो। शुभम ने आँखे मूँद ली। मेघा की गुनगुनाहट अंतर्मन में गहरे उतर रही थी।

'कभी किसी को मुकम्मल जहाँ नहीं मिलता...' इस एक पँक्ति के दोहराव ने मन की सारी उलझने शांत कर दी।

हँसने से भोजन खाए बिना
भी खून बढ़ता है,
रोने से भोजन खाने के
बाद भी खून घटता है।

चटपटा...व्यंजन 'धोखा'

डॉ. सरोजिनी प्रीतम

धोखा देना तो हर किसी के लिए आसान हो गया है, पर धोखा खाकर पचा लेना सबसे कठिन कार्य है। जो पचा कर डकार भी न लें, मुख पर विकार भी न आये और हँसते-हँसते पचा कर, नीलकंठ होकर नीलकंठ की सी पदवी और महत्ता न पाये वही सच्चा योगी है।

धोखा वही खाता है जो कच्चा हो, अनाड़ी हो, जिसने पहले कभी न खाया है वह तो अत्यन्त सरलता से इसका शिकार बन जाता है। इसके स्वाद की बात करो तो धोखा खाने में सत्य सा कसैला होता है, क्योंकि एकदम मिलता तो है, लेकिन इसके मिलने पर ऐसा नहीं लगता कि यह कहीं कोई लाटरी निकली है इसे खाने से पहले मन को आभास नहीं होता है, कोई खाना नहीं चाहता जबरदस्ती ठूंस कर खिलाया जाता है।

जो बार-बार खाते हैं उनको फिर धीरे-धीरे इसे पचाने की आदत यों होती है कि फिर वे उसी धोखे को अपने जीवन का भी चलन बना लेते हैं।

चलन में भी चाल का महत्व अधिक है और चाल यह तो शतरंज का खेल हो गया कोई पैदल कोई सवार शह और मात देने का दौर और इसी दौर में किसी के गले में हार, किसी के गले हार पड़ी।

वैसे धोखा खाने से, मजा चखना, चखाना बेहतर होता है, क्योंकि चखते समय जो आनन्द मिलता है उसमें शबरी के बेर चख-चखकर खिलाने की न तो सरल सुबोध अबोध सी प्रवृत्ति है, न ही स्वादिष्ट व्यंजनों की सोंधी गंध, कि आप में एक ललक हो, एक समूचा पा लेने कीए लपक कर चाट जाने की, चखते-चखते उसे पूरा समाप्त कर देने की प्रवृत्ति हो। हमेशा पीठ थपथपाने वाले ही हाथ जब सहसा पीठ सहलाने के बहाने छुरा भौंक दें।

हमेशा पैर के कांटे चुनने वाले हाथ, जब ऐसा कर्म करते हैं तो समूची पीट एक दर्द की चिता सी बन जाती है। एक ऐसी अग्नि जलती है जिसमें आँसुओं की अनवरत धार भी उसे बुझाने में सक्षम नहीं हो पाती। जो सहृदय हैं सीधे सरल सच्चे कर्मठ हैं वे उसे देने के मामले में कंजूस हैं।

धोखा खाने की मात्रा का, वोल्टेज का आभास पहले से नहीं हो सकता है। बार-बार मिलने पर यह जमा पूंजी बनने लगता है। अगर कहीं इसका खाता खोल सकें तो सबसे अधिक एकाउंट इसी के खुलेंगे। ब्यौरेबार, इसका बखान हो तो सुनने वाले इस पर विश्वास नहीं करेंगे।

धोखा ही ऐसा द्रव है जो व्यक्ति का रूप आकार बदल देता है। चेहरे का कायापलट करके उसके व्यक्तित्व को ऐसे धब्बों से युक्त कर देता है कि वो धब्बे किसी को दिखाई नहीं देते लेकिन जिसने देख लिये है उसे वही विकार बनकर दृष्टिगत होते हैं।

धब्बों युक्त, चकतो वाला यह व्यक्ति औरों के सामने अत्यंत उजला उजला धवल व्यक्ति धारी बगलों सी प्रवृत वाला एक टांग पर खड़े होकर मछली को फांसले को सदा प्रवृत रहता है। उसके मुंह से लार टपकती है और लार से वह मकड़े की तरह जाला बुनता है।

तंत्र-मंत्र से हर किसी को वश में करने के लिए अपना घर उजाड कर अपने पुत्र और अपने नाती-पोते से भी छोटा दिखने के चक्कर में बाल कम मुँह अधिक काला करवाता है।

हर समय धोखा देने की जागरूकता के कारण वह अधिक सचेत सतर्क भी भद्र समाज में ऐसे समाहित है कि अब तो वह समाज का अनिवार्य अंग बन गया है। वह अनेक रूप धारण करके पग-पग पर खड़ा है। वह गुण है जिस पर मक्खियाँ भिनभिनाती हैं और समूचा चाट जाने को बढ़ती हैं।

पांडेय जी गए कश्मीर

लालित्य ललित

अपने पांडेय जी भी वाकई बड़े जीवट वाले बंदे हैं। उम्र के तीसरे पड़ाव पर है और अखरोट तोड़ने का जज्बा मन में रखते है। सुबह सैर जाते हैं और शुगर के साथ उच्च रक्तचाप की गोली भी गटकते हैं। यूँ तो आजकल ये राष्ट्रीय स्तर का दिल धड़काने वाला रोग असंतुष्ट कुमार से लेकर दयाल बाबू को भी है, लेकिन वे स्वीकार करने में डरते है, चुनांचे किसी को कहेंगे तो बात का बतंगड़ न बन जाएँ।

बहरहाल मुद्दे पर लौटें। हुआ क्या पांडेय जी ठहरे बिजली विभाग में हेड क्लर्क। और वे भी पुराने टाइप के।

सुबह घर से निकलना और बस में धक्के खाते हुए आना। रास्ते से आधा किलो जलेबी, पाँच समोसे घर के लिए लाना। यह उनका कोई रोजाना का शगल नहीं है, जब मन में यह बात आ जाए कि भईया घर में भी प्रेम बाँटते रहो तो बाहर भी मामला संभला रहता है। अब धोखे में मत आ जाना।

यहाँ रामखेलावन वाला कोई सीन नहीं, कि कोई फिल्म में शामिल हो तो फूलमतियाँ के डर से हीरोइन को फिल्म से ही निकल जाने को हौले से कह दें और यह कह दे कि सुनो न तुम अपने वॉट्सएप से मुझे डिलीट मार दो और किसी नए नाम से प्रवेश कर जाओ।

आजकल नया नाम शिखा जी, नवलेखन मंच के नाम से एड हुआ है, देखते है कि यह मामला कितने दिन चलता है। फिलहाल आगे बढ़ते हैं।

पांडेय जी जहाज में बैठ गए

अब वे श्रीनगर में हैं, कहते है जन्नत है बॉस। नए लोग, खाने पीने का अद्भुत खजाना और लोग! उनकी तो पूछिए मत।

पांडेय जी लगभग एक हफ्ते की इस यात्रा पर रहेंगे। दिल्ली जो देश की राजधानी है वह इस समय तप रही है और दिल्ली से दूर कश्मीर में पांडेय जी डल लेक में शिकारे में आराम करते हुए कहवा का आनंद ले रहे हैं। रामप्यारी भी साथ में है। पांडेय जी ने जीवन का उसूल बनाया हुआ है कि पत्नी को सुनो तो आपका जीवन स्वर्ग बना रहेगा अन्यथा नरक।

यह गुण बड़ी आत्मीयता से एक बैठकी के दौरान राधेलाल जी ने दिया है। सुना है राधे लाल जी को यह ज्ञान विश्रामपुर के संत ने दिया काला कुत्ता की कथा सुनाते समय। बहरहाल मुद्दे पर लौटते हैं।

पांडेय जी नियम के पक्के हैं, दिल्ली में रहे तब भी और दिल्ली से बाहर रहे तब भी, उन्हें अपनी कविताएँ पोस्ट करने से कोई रोक नहीं सकता। आज तो हद तब हुई जब गुलमर्ग से लौटे, मौसम आशिकाना था और मोबाइल पर जगजीत सिंह की गजल सुनी जा रही थी और उंगलियाँ लेखन में व्यस्त थी कि पांचवी कविता पोस्ट हो गई।

किसी विद्वान का निधन होने का समाचार भी मिलाएइसी के साथ दिवंगत आत्मा को शांति और प्रभु के श्रीचरणों में रहने की निवेदन स्तुति भी कर दी।उनका मानना है कि रोजाना इतनी हलचल हो रही है तत्काल संज्ञान लिया जाए तो ठीक अन्यथा आप इस दौड़ में फिसड्डी रह जाओगे।

ज्यादा सोचने का नहीं। पांडेय जी ने एक कविता लिखी है, उसका आनंद आप भी लीजिए।

होने को समझना अन्यथा विस्मृत करना / लालित्य ललित

बहुत कुछ होता है
मन में
कई बार
हमेशा के लिए
पहाड़ों को देखा
उसकी शांति को भी
लेकिन यह भी महसूस किया है जब वे नाराज होते हैं
तब मंजर खतरनाक होता है
घरों में
पहाड़ों का रौद्र रूप देखने को मिलता है
पहाड़ों पर जा कर ही उसकी आत्मीयता और सद्भाव

को समझा जा सकता है

महसूस किया मैंने भी

कहे हमने भी

कई बार संभलते गिरते और फिसलते भी बचे

सोचा क्या पता मोक्ष पहाड़ों पर ही लिखा हो

पर नहीं

पहाड़ों की खूबसूरती ने बुलाया है

कि आप आइए और इस खूबसूरती को नजदीक से निहारिए

देखा कि अब बदलाव आया है

लोगों में

कि वे चाहते हैं कि पर्यटकों से कुछ अधिक कमा लिया जाएँ

लेकिन सब ऐसे नहीं

कुछ अच्छे इंसान और फरिश्ते अभी भी मौजूद है

कहते है न कि यदि आप अच्छे होंगे

तो सामने वाला भी मददगार होगा

अब वह ईश्वर हो

अल्लाह हो या उसका ही कोई प्रतिनिधि

बहुत कुछ समझना और समझाना अभी बाकी है

मेरे दोस्त

अपने को समझाया

और इलेक्ट्रिक केटल से चाय बनाई

एक अच्छा सकून मिला

खुश रहने से

खुद से मोहब्बत करने की बात ही कुछ और हैं

बाकी जो लिखा होगा

उसे भी पढ़ेंगे और समझेंगे

जिंदगी एक हसीन अध्याय है जिसे पढ़ने का मन है

और जिजीविषा भी

और कहते है न

कि पढ़ने की कोई उम्र नहीं होती

आजकल हम एक दूसरे को पढ़ रहे हैं

बड़ी शिद्दत से

और प्रेम से।

पांडेय जी की इच्छा हुई चाय पीने कीएलेकिन होटल है कोई घर नहीं। केतली ने काम नहीं किया। चीकू ने अपने कमरे की केतली से चाय बनाई और कप में ले आया।चाय गर्म थी और आदत के अनुसार पाण्डेयजी को चाय मिल गईएइसके साथ उनका दिमाग भी चलने लगा।

शेष सोचने से और बातों को समझने से दिमाग चल पड़ता है अपनी रफ्तार से।

पांडेय जी की आदत है कि सुबह बेशक घर के लोग कुंभकर्ण की नींद ले रहे हो, और अपने पांडेय जी घंटी बजाए कहां मानते हैं। उनका कहना है कि सुबह से स्मरण से भगवान की कृपा बनी रहती है, बात भी सही है। यह अंतर्मन कुमार ने भी माना। अब सोचिए पांडेय जी कश्मीर में है, तभी चीकू से पांडेय जी ने पूछ लिया ओ भइया बी बीसी यह बता आज के समाचार क्या हैं! अब सुनिए चीकू महाराज के समाचार, आपकी अपनी भाषा में मैं चीकू कुमार उर्फ विलायती राम पांडेय का छोटा संस्करण मैं श्रीनगर में हूँ और पहले दिन लोकल साइट सीन करने के बाद दूसरे दिन गुलमर्ग की पहाड़ियों पर जाने का मौका मिला, मैंने घुड़सवारी भी की, भीड़ बहुत है, घोड़े वाले पर्यटकों का उल्लू काटने में लगे है, यहाँ आने वाले उत्तर भारत के ही लोग नहीं है अपितु दक्षिण भारत से भी है, जो लुंगी डांस लुंगी डांस की मुद्रा में है।

अब आइए मुद्दे पर

पापा जी आई मीन अपने विलायती राम पांडेय जो समाचार जानने की इच्छा रखते हैं वह समाचार हाजिर है।

सामने वाले बैग में कई तरह के शाल है जो आपकी सेवा में आपकी श्रीमती इकलौती अर्धांगिनी रामप्यारी पांडेय जी दिखाएंगी, लेकिन ब्रीफ में बता देता हूँ। आपको दिखाने का मतलब यह है कि बिल का भुगतान करने के लिए तैयार रहो पप्पू महाराज। यह कहते हुए चीकू दौड़ गया। पांडेय जी मुस्करा दिए। यही जिंदगी है और जीने का फलसफा भी। वैसे भी फाल्से का जूस रामप्यारी जब बनाती है तो वह दिव्य परी प्रतीत होती है। अंतर्मन ने कहा कि पांडेय जी जब भी कहते है सच ही कहते है।

पांडेय जी का कहना है कि यदि घरवाली खुश नहीं

रहेगी तो बाहरवाली का क्या होगा!

बाहरवाली के संदर्भ में कई सारे मित्र जुड़ेंगे अगले संस्करण में जिसमें लपकुराम, सतपाल मखीजा, लल्लू भईया के साथ राधेलाल जी भी अपनी आपबीती को जाग जाहिर करेंगे, बहरहाल रामखेलावन का नया प्रेम संस्करण जोरों पर।

पांडेय जी बेचारे बड़े सीधे है जस्ट लाइक जलेबी। जब से कश्मीर आए है जलेबियां बनते हुए देख जरूर रहे हैं लेकिन अभी तक स्वाद से कोसों दूर। मन में यह प्रण कि हम होंगे कामयाब एक दिन...पांडेय जी रामप्यारी के साथ कश्मीर में है उनका कहना है कि हर पति यदि अपनी पत्नी में प्रेमिका तलाश ले और वह भी आजीवन तो जीवन में न कोई लफड़ा होगा और न कोई स्यापा।

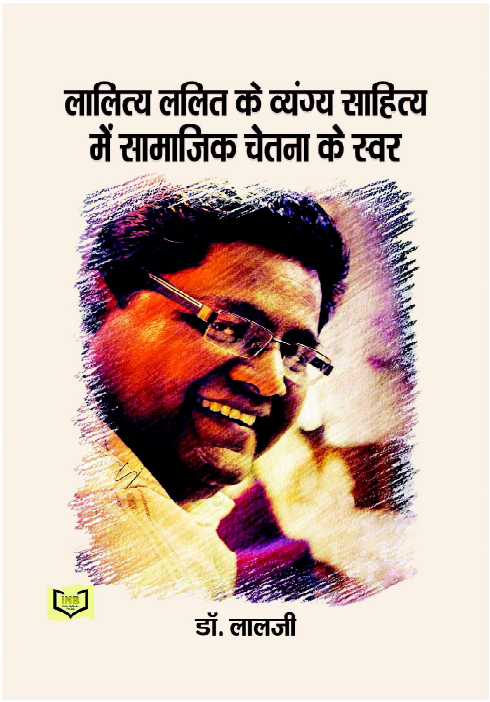

बात तो ठीक है राधेलाल से हुई सपने में यह बात। राधेलाल ने कहा कि बालक बात तो सही है लेकिन मर्दों की तासीर यही है कि बेशक घर में राजमा बनी हो लेकिन दाल मखनी का भी स्वाद निराला है।

तभी टिप्सी मुटरेजा बड़बड़ाती हुई आई और कहने लगीं कि घर बन गया है, छोटा सा मुहरत भी कर लिया है, बुलाऊंगी सभी मित्रो को, बहुत जल्द।

ओ म्हारा रामजी क्या कहना था, भूल गई, मिल कर बताती हूँ। आजकल बच्चों को रील बनाने का भी भूत चढ़ा है और सब मिलकर मुझ से भी एक्टिंग करवा लेते है, मानो मैं कोई पुरानी एक्टर हूँ। टिप्सी को जाते हुए देखने के बाद पांडेय जी ने कहा–

पुराने चावल बहुत महकते है, जाओ काकी...

तभी राम प्यारी ने फोन कर बताया पांडेय जी क्या लिखते रहोगे! गाड़ी आ गई है, सबने नाश्ता भी कर लिया है। चलो आज सोनमर्ग जाना है, वह दूर भी है। चलो, जल्दी करो। उधर पांडेय जी गाना गाने लगे

कोई कैसे उन्हें समझाएँ

काहे बलमा घोड़े पर सवार है...

यहाँ बलमा नहीं बलमा की मिसेज आई मीन रामप्यारी पांडेय पुकार रही है दिल से। और बड़ी शिद्दत से।

इसी चक्कर में पांडेय जी लिफ्ट में जाने के बजाए सीढ़ियों से उतरने लगे। नीचे पहुंचे तो दिल जवानों के सपने की मानिंद धक-धक करने लगा था, जैसे पुरानी अभिनेत्री माधुरी दीक्षित ने सीढ़ियों पर चलने का निवेदन किया हो।

अब पांडेय जी गाड़ी में है। ठंडी हवा गालों को छू रही है, पांडेय जी ने हैंड बैग में टोपी और मफलर रख लिया था, क्या पता मौसम बिगड़ जाएं और ठंड लग जाएं।

रामप्यारी पांडेय जी को प्रेमिल निगाहों से निहारें जा रही है जैसे पांडेय जी कोई हीरो हो!

वैसे हर मुखिया ए.टी.एम होता है लेकिन यहाँ बात एक जिम्मेवार अभिभावक की भी है जो पांडे जी बखूबी निभाते है और सक्षम भी है।

तभी देविका गजोधर का संदेश आया क्या बात हो सकती हैं। तत्काल पांडेय जी ने संदेश का जवाब दिया, कि व्यक्तिगत यात्रा पर कश्मीर में हूँ आप अगले हफ्ते संपर्क कीजिए। परिवार के मामले में नो जनसेवा। यह बात पांडेय जी को राधेलाल ने समझाई थीं। पांडे जी का भी मानना है कि जहाँ से कोई नेक सलाह मिलें फौरन उसे ग्रहण कर लो।

बेगम जी के उपवास की दुश्वारियाँ

अशोक गौतम

मेरी बेगम जी बहुत धर्मपरायण है। अगर वह उपवास लेकर धर्म की रक्षा न करें तो कई बार लगता है जैसे धरती पर से धर्म ही खत्म न हो जाए कहीं। धर्म की ध्वजा जैसे उनके उपवासों के चलते ही धरती पर लहरा रही है।

महीने बाद मेरी बेगम जी का उपवास है। आधे दिन का नहीं, सुबह सात बजे से लेकर शाम को तीन बजे तक। उसके बाद जो डिनर बनने में उस तीन के सवा तीन हो गए तो समझो घर में भूचाल आ गया। कामवाली की तो कामवाली की, तब मेरी भी खैर नहीं। खैर, मेरी तो किसी भी समय खैर नहीं होती। मेरा सिर तो हमेशा बेगमजी के मूसल के नीचे ही सादर हाथ जोड़े जैसे कैसे पड़ा रहता है। सच कहूँ तो वैसे मुझे भी अब अपना सिर बेगम जी के मूसल के नीचे रखने की आदत सी पड़ गई है।

तो हे मेरी तरह के उपवास प्रेमी बेगमों के श्री पतियों! महीने बाद के बेगम जी के उपवास को लेकर इन दिनों घर में तैयारियाँ जोरों शोरों पर हैं। इतनी तैयारियाँ तो हमारे घर में होली के पर्व को भी नहीं होतीं। इतनी तैयारियां तो हमारे घर में दीपावली के आने पर भी नहीं होतीं।

सब कुछ फाइनल करने के बाद भी मैं फाइनल नहीं कर पा रहा हूँ कि उनके इस उपवास को अबके काजू बादाम किस दुकान से लाऊँ? उनके उपवास के लिए पिछले उपवास पर काजू बादाम जहाँ से लाया था उस दुकान के काजू बादाम उन्होंने फेल कर दिए हैं। दूध की बर्फी किस हलवाई की दुकान से लाऊँ? उपवास स्टार्ट होने से पहले वाली जलेबियाँ कहाँ से लाऊँ? उस दिन उनके लिए दूध कितना लिया जाए? वह किस डायरी का हो? आदि आदि। उपवास पर उनके लिए दूध को लेकर न चाहते हुए भी घर में हर बार कलह हो जाती है। केले, अंगूर, सेब, पपीता तो खैर ताजे ताजे ही लाने हैं। और तय है, उसके बाद भी गालियाँ ही मेरे हाथ लगनी हैं।

अबके बेगम जी ने अभी ही साफ वार्निंग दे दी है कि उनके पिछले उपवास को मैं जहाँ से जलेबियाँ लाया था, वे ठीक नहीं थीं। मैं उन जलेबियों को लेकर कतई संवेदनशील नहीं था। क्योंकि मुझे नहीं खानी थीं न! उनमें रस कम क्या बिल्कुल भी नहीं था। इसलिए अबके उनके उपवास से पूर्व तैयारी के लिए मैं जलेबियाँ लाऊँ तो किसी ठीक हलवाई से लाऊँ वर्ना, वह उपवास से पहले जलेबी दूध लिए बिना ही उपवास रख लेंगी। फिर होती हो तो होती रहें कमजोर। आते रहें उन्हें चक्कर। इस सबके लिए तब मैं ही सीधे तौर पर दोषी रहूँगा। उसके बाद जो घर में कलह क्लेश बढ़ेगा, उसके लिए भी जिम्मेदार में ही रहूँगा। तब उस सबका दोष भी मुझे ही वहन करना होगा हर रोज।

दोस्तों! मैं चाहे बेगमजी के उपवास की कितनी ही बेहतर से बेहतर तैयारियाँ क्यों न कर लूँ। बेशर्म कहीं न कहीं, कोई न कोई कमी रह ही जाती है। या कि उसमें अपने पारखी नजरों से वे कोई न कोई कमी निकाल कर ही दम लेती हैं।

अभी से अपने उपवास को लेकर जितनी परेशान वे हैं उससे कहीं अधिक परेशान मैं हूँ। उनके उपवास को लेकर अभी से मेरे हाथ पावं फूले जा रहे हैं। मुझे चक्कर से आ रहे हैं।

मेरे सिर का दर्द बढ़ता जा रहा है। डर रहा हूँ कि मैं अबके भी जो उनके उपवास पर उनके खाने का मैनेजमेंट उनके मन माफिक नहीं कर पाया तो... सच कहूँ! हे मेरी तरह के तमाम पति भाइयो! मैं हर बार उनके उपवास को लेकर उनके खाने में कोई कोर कसर छोड़ना नहीं चाहता। फिर पता नहीं कहाँ मेरी ओर से कमी रह जाती है?

उपवास को लेकर वे अभी से चिड़चिड़ी होने लगी हैं, सिरफिरी होने लगी हैं। उन्हें अभी से उपवास की चिंता खाए जाने लगी है। उनके उपवास को लेकर मैं अभी से चिंतित होने लगा हूँ।

भली शांति थी घर में। कल यों ही पता नहीं क्यों मैंने उनके उपवास के लिए हर बार की तरह दो किलो के बदले डेढ़ किलो दूध लाने की बात कह डाली तो बस, मेरे कहने

लिटरेचर फर्टिलिटी सेंटर

अशोक गौतम

भर की देर थी कि वे आप्पे से बाहर होती मुझ पर मौसम बिलकुल साफ होने के बाद भी भादो के मेघ सी गरजती लरजती बरसीं, 'देखो! दूध अबके डेढ़ किलो नहीं सवा दो किलो आएगा। और वह भी पहले वाली डायरी से कतई नहीं। जैसी उसमें दुर्गंध, उससे भी ज्यादा उसके दूध में दुर्गंध।'

'तो तुम ही कहो कहाँ से दूध लाऊँ अबके मैं वही तो सारे शहर में मात्र एक ऐसा दूध डायरी वाला है जो दूध में पानी दूध के हिसाब से मिलाता है', हालांकि मैंने गुस्से में नहीं, उनसे दोनों हाथ जोड़ निवेदन किया था।

फिर भी बेगम जी ने सिर पर आसमान उठा लिया, तुम्हें तो मेरी कतई चिंता नहीं! जब देखो बस, मेरे उपवास को नीचा दिखाने में लगे रहते हो। आखिर मैं ये उपवास किसलिए रखती हूँ? तुम्हारे लिए ही न! घर में सुख शांति के लिए ही न! अगर मैं तुम्हारे लिए उपवास न रखूं तो अगले ही दिन नरक में न चले जाओ, तब देखना। जब तुम अपने लिए भी उपवास नहीं रख सकते तो मेरे लिए क्या खाक रखोगे?

'नहीं! मेरे कहने का वह मतलब कतई नहीं था जो तुम समझ रही हो देवि,' मैंने दोनों हाथ जोड़ हर बार की तरह इ बार भी निरपराधी वाली याचक मुद्रा बनाई।

हालांकि मुझे पता था कि अबकी बार भी मुझे क्षमा नहीं किया जाएगा। और मजे की बात! इस बार भी मुझे हर बार की तरह क्षमा नहीं किया गया,'मैं जानती हूँ तुम्हारे कहने का मतलब क्या था! तीस साल हो गए मुझे तुम्हारी बातों के मतलब समझते समझते,' बड़ी मुश्किल से बीसियों माफियां मांगने के बाद कहीं जाकर हमारे बीच का वाक् युद्ध रूका। मुझे तो तब लगा था कि आज फिर बेबात महाभारत होकर रहेगा। और ये पांडव पुत्र निश्चित हारेगा ही हर बार की तरह।

हे उपवास! तुम मेरी बेगम पर आते ही क्यों होघ् किसी और की बेगम नहीं मिलती तुम्हें क्या उनके शांत घर में हंगामा करवाने को।

शरीर स्वस्थ हो,
मन में शान्ति हो
तो चटाई भी अच्छा
बिस्तर है।

भोजन के लिए हेल्पलाइन नम्बर

गिरीश पंकज

उसे भूख लगी थी। जैसे सबको लगती है। पर उसके पास भोजन नहीं था। जैसे बहुतों के पास नहीं होता। वह परेशान हो कर भोजन की तलाश में था। जैसे कोई पराजित नेता विजय की तलाश में रहता है। लेकिन विजयश्री उसकी हरकतों के कारण किसी दूसरे का वरण कर लेती है। खैर, तो वह भूखा बन्दा रोटी की तलाश में था।

तभी किसी ने उसे पिछले दिनों शुरू की गई हेल्पलाइन 420 के बारे में बताया। इस नंबर पर डायल करो और अपनी भूख मिटा लो। सरकार की एकदम नई पहल है। आजकल सरकार अनेक तरह के हेल्प नंबर जारी कर रही है, जिसकी मदद से ऐसा कहा जाता है कि लोगों को हेल्प मिल जाती है। मिलती है या नहीं मिलती, यह शोध का विषय है। लेकिन हेल्पलाइन नंबर तो मौजूद रहता है। लोगबाग हेल्पलाइन नंबर डायल करके अक्सर खुद को हेल्पलेस ही महसूस करते हैं क्योंकि कोई खास हेल्प तो मिलती नहीं। बस, नम्बर पे नम्बर डायल करते रहिए।

उस दिन एक गरीब बंदा भी इस चक्कर में फँस गया। वह गरीब तो था लेकिन समय के साथ चल रहा था इसलिए उसके पास बहुत सस्ता मोबाइल फोन था। य अब तो कुछ भिखारी तक मोबाइलधारी हो गए हैं। भीख मांग-मांग कर जब वे बोर हो जाते हैं, तो पता चला वीडियो गेम खेलते हैं। मगर यह सब छुप-छुपकर करते हैं। खुले आम तो उनके हाथ में कटोरा ही नजर आता है लेकिन जब कभी वीडियो गेम खेलने का मूड होता है, तो चालाक भिखारी किसी दीवार की आड़ ले लेते हैं।

यह नया-नया गरीब था। उतना चालाक नहीं था। साधारण मोबाइल से काम चला रहा था। जब उसे पता चला कि हेल्पलाइन नंबर 420 पर फोन करके मनचाहा खाना बुलाया जा सकता है और भूख मिटाई जा सकती है, तो उसने हेल्पलाइन का नंबर मिलाया। वहाँ से किसी कन्या की सुमधुर आवाज आई, 'हेल्पलाइन नम्बर 420 में आपका स्वागत है। अँग्रेज़ी में बात करने के लिए एक दबाइए। हिंदी में बात करने के लिए दो दबाएं। और अगर हमारी केवल परीक्षा लेने के लिए आए हैं, तो कुछ मत दबाइए।'

भूखे ने दो नंबर दबाया।

दूसरी तरफ से आवाज़ आई, 'रोटी खाने के लिए एक नंबर दबाइए। पराठा खाने के लिए दो नंबर दबाइए।'

भूखे ने एक नंबर दबाया। उसे उत्तर मिला, 'सूखी रोटी खाने के लिए एक नंबर दबाइए, घी चुपड़ी रोटी पाने के लिए दो नंबर दबाएं। पूड़ी खाने का मन है, तो तीन नंबर दबाइए। और अगर हमारा सर खाने का मन है, तो जीरो दबाइए।' बंदे को लगा, कोई बेवजह फिरकी ले रहा है इसलिए अंट-शंट निर्देश दे रहा है। उसे तो रोटी खानी थी, किसी का सर क्यों खाता। उसे तो सूखी रोटी खाने का अभ्यास था इसलिए उसने एक नंबर ही दबाया।

उधर से सुमधुर उत्तर मिला, 'कड़क रोटी के लिए एक नंबर दबाइए, सामान्य रोटी के लिए दो नंबर दबाएं।'

भूखे ने दो नंबर दबा दिया।

फिर वहाँ से वही सुमधुर आवाज आई, 'दो रोटी पाने के लिए एक नंबर दबाइए। चार रोटी पाने के लिए दो नंबर दबाएं।' बन्दे को जम कर भूख लगी थी। उसने दो नंबर दबा दिया।

फिर आवाज़ आई, 'पंचतारा होटल वाली रोटी पाने के लिए एक दबाएं, साधारण होटल की रोटी के लिए दो दबाएं और ढाबे की तंदूरी रोटी के लिए तीन दबाएँ।'

भूखे ने सोचा पंचतारा होटल का बड़ा नाम सुना है इसलिए उसने एक नम्बर दबा दिया।

उधर से आवाज आई, 'अब अपना आधार नंबर यहाँ दर्ज करें।'

भूखे के पास आधार कार्ड तो था लेकिन नंबर भरने में वह हड़बड़ा गया और एक अंक कम भर दिया। उधर से मैसेज आया, सॉरी आपका आधार नंबर गलत है। फिर से ट्राई करें।

इतना बोलने के बाद कॉल डिस्कनेक्ट हो गया। भूखा

परेशान। उसने एक बार फिर हेल्पलाइन नंबर को रिंग किया। काफी देर बाद फिर वही रिकॉर्डेड आवाज आई, 'हेल्पलाइन नंबर 420 में आपका स्वागत है। अँग्रेज़ी में बात करने के लिए एक नंबर दबाइए। हिंदी में बात करने के लिए दो नंबर। और केवल मनोरंजन करना हो तीन दबाएँ। भक्ति संगीत सुनना है तो चार दबाएँ। मौसम का हाल जानना हो तो पाँच दबाएँ।'

भूखे ने दो नंबर दबाया। उधर से आवाज आई 'सब्जी पाने के लिए एक नंबर दबाइए, रोटी पाने के लिए दो नंबर। हलुआ और पूरी खाना हो, तो तीन नम्बर दबाएँ।'

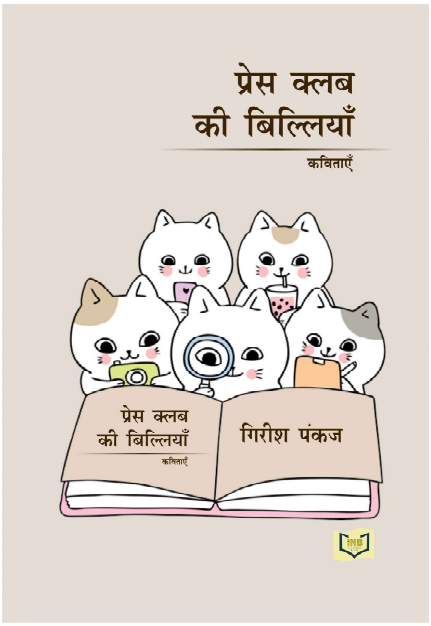

भूखे की तो गोया लॉटरी निकल गई। उस ने सोचा, पता नहीं हलुआ पूरी मिले-न-मिले। रोटी का भी भरोसा नहीं। चलो, अब सब्जी ही बुलवा लेते हैं, इसलिए उसने एक नंबर दबा दिया। उधर से आवाज आई, आलू की सब्जी पाने के लिए एक नंबर दिखाइए। भटे की सब्जी पाने के लिए दो नंबर दबाइए। भिंडी की सब्जी पाने के लिए तीन नंबर दबाइए और करेले की सब्जी पाने के लिए चार नंबर दबाइए। मिक्स वेजिटेबल के लिए पाँच दबाएँ। भूखा सोचने लगा, करेले की सब्जी कड़वी होती है। वह ठीक नहीं रहेगी। भिंडी उसे पसंद नहीं है और भटे से भी उसे एलर्जी है, तो आलू की सब्जी ही ठीक रहेगी। मिक्स वेजिटेबल में अक्सर बची-खुची सब्जी मिला दी जाती है इसलिए उसे बुलाना ठीक नहीं इसलिए उसने एक नंबर दबा दिया। सदाबहार आलू की सब्जी। नम्बर दबाते ही फिर उधर से आवाज आई, 'आलू की रसेदार सब्जी पाने के लिए एक नंबर दिखाइए। भुजिया सब्जी पाने के लिए दो नंबर दबाएं।'

युवक परेशान हो गया सोचने लगा, नंबर पर नंबर दबाए जा रहा हूँ। पता नहीं सब्जी कब आएगी। सामने वाले ने मेरा पता तो पूछा ही नहीं। शायद अंत में पूछे। उस ने आलू की सब्जी के लिए दो नंबर दबा दिया।

उधर से आवाज आई 'बिना मिर्च की सब्जी खाने के लिए एक नंबर दबाइए। मिर्च और प्याज वाली सब्जी के लिए दो नंबर दबाइए। युवक ने मुस्कराते हुए दो नम्बर दबा दिया। फिर उधर से सुमधुर आवाज आई, 'धन्यवाद, हम आपको आपकी मनचाही सब्जी भेजेंगे। कृपा अपना आधार नंबर डालिए और पता टाइप करें।'

युवक ने आधार नंबर सावधानी के साथ डाला। फिर वहाँ से आवाज आई, 'अपना आधार नंबर ठीक से डालिए।'

भूखे ने एक बार फिर आधार नंबर चेक किया और ध्यान से डाला। दूसरी तरफ से आवाज आई, 'कुछ तो गड़बड़ है। फिर ट्राई करें।' भूखे ने फिर ट्राई किया तो इस बार आवाज आई, धन्यवाद, हम आपके पते पर आलू की सब्जी भेज रहे हैं। भूखे ने सोचा, सब्जी तो आ रही है। चलो, एक बार फिर रोटी के लिए ट्राई करते हैं। उसने फिर हेल्पलाइन का नंबर डायल किया। इस बार कोई रिस्पांस नहीं आया। टूं...टूं...टूं...की आवाज आती रही। बार-बार वह नंबर डायल करता रहा, मगर उसे कोई रिस्पांस नहीं मिला। भूखे ने सोचा, चलो कोई बात नहीं, सब्जी खाकर ही भूख मिटा लेंगे, या इस बीच कहीं से रोटी का जुगाड़ भी कर लेंगे। भूखा अब तक सब्जी का इंतजार कर रहा है। पता नहीं वह कब आएगी। न सब्जी आई और न दोबारा हेल्पलाइन का नंबर ही लगा। अब वह हेल्पलाइन नम्बर-420 दबाने से डरता है। भूख मिटाने के लिए कुछ भी आता-जाता नहीं, बस बातें बड़ी स्वादिष्ट होती हैं। भूखा बन्दाव सोच रहा है, काश! मीठी-मीठी बातों से ही अपन का पेट भर जाता, तो क्या बात है।

दादाजी का चश्मा

गिरीश पंकज

पिंकू आज बहुत उदास है। आज क्या, वह तो पिछले कई दिनों से उदास ही रहता है। उसे इस बात का दुख है कि उसके दादाजी का चश्मा टूट गया है और पिताजी बनवाने का नाम ही नहीं ले रहे। कितना पुराना चश्मा हो गया है दादा जी का। उसकी एक डंडी भी टूट गई है। अब तो नया खरीदना चाहिए, लेकिन मेरे पिताजी को तो अपने पिताजी की चिंता ही नहीं।

स्कूल से घर आने के बाद पिंकू रोज दादाजी के पास बैठकर उनसे बातें करता है। दादाजी का उदास चेहरा देखकर पिंकू समझ जाता है कि उनके साथ मेरे माता-पिता दोनों ठीक व्यवहार नहीं करते। जब से दादी जी का निधन हुआ है, तब से दादाजी एकदम अकेले पड़ गए हैं।

उनसे बात करने वाला कोई नहीं। माँ घर के काम में लगी रहती है, पिताजी काम पर चले जाते हैं। दादाजी समय बिताने के लिए कभी अखबार पढ़ते हैं, तो कभी कोई किताब। लेकिन जब से चश्मे की एक डंडी टूटी है और काँच में भी थोड़ा-सा क्रेक आ गया है, तो दादा जी को पढ़ने में काफी तकलीफ होती है। दादाजी भी तीन बार बोल चुके हैं, "बेटा सुरेश! चश्मा तो ठीक करवा दो", लेकिन पिताजी ने कल करवा दूँगा परसों करवा दूँगा बोलकर कितने दिन निकाल दिए।

पिताजी की इस लापरवाही पर पिंकू को काफी दुख होता है। उसने दो बार पिताजी से कहा भी कि दादाजी का चश्मा तो ठीक करवा दीजिए न! उनको एक नया चश्मा भी खरीद कर दे दीजिए। इस पर पिता सुरेश कुमार यही कहते, "जल्दी ही खरीदूँगा।" लेकिन इस बात को कहे हुए कितने दिन हो गए हैं। दादा जी बड़ी मुश्किल से अखबार पढ़ पाते हैं। बार-बार अपना चश्मा ऊपर नीचे करते रहते हैं।

पिंकू ने सोचा, लगता है कि पिताजी दादाजी के लिए चश्मा खरीदना ही नहीं चाहते। अब तो मुझे ही कुछ करना पड़ेगा। कुछ चालाकी करनी पड़ेगी। यह सोचकर पिंकू के चेहरे पर मुस्कान उभरी और वह बाहर खेलने निकल गया।

दूसरे दिन पिंकू ने पिताजी से कहा, "स्कूल में फंक्शन हो रहा है। सब बच्चे पैसे एकत्र कर रहे हैं मुझे भी पाँच सौ रुपये चाहिए।"

पिंकू की बात सुनकर पिता ने खुशी-खुशी पाँच सौ रुपये निकाल कर दिए और कहा, "शाबाश! इसी तरह स्कूल में एक्टिव रहना चाहिए।"

इतना बोल कर वे काम पर निकल गए। पिंकू मन-ही-मन बहुत खुश हुआ और चुपचाप अपने कमरे में जाकर अलमारी में रखे मिट्टी के गुल्लक को निकालकर उसे फोड़ दिया, फिर उसमें जमा रुपये पैसे गिनने बैठ गया। गुल्लक में पूरे तीन सौ रुपये जमा हो चुके थे। यह देख पिंकू बड़ा खुश हुआ। यानी उसके पास अब आठ सौ रुपये हो गए हैं। दादाजी का चश्मा तो शायद एक हजार रुपये में आ ही जाएगा।

अब उसे और दो सौ रुपये चाहिए। पिंकू ने दूसरे दिन अपनी माँ से कहा, "आज शाम को हम बच्चे एक पार्टी कर रहे हैं। इसके लिए सबको दो-दो सौ रुपये जमा करना है। माँ ने दो सौ रुपये देते हुए कहा, ले जा बेटे! मौज कर!

अब पिंकू के पास है पूरे एक हजार रुपये हो गए थे। वह बहुत प्रसन्न हुआ। अब वह अपने दादाजी के लिए नया चश्मा खरीद सकेगा। यह सोचते हुए पिंकू दबे पाँव दादा के कमरे में आया, तो देखा दादा जी आँखें बंद करके लेटे हुए हैं।

बगल में उनका टूटा हुआ चश्मा रखा हुआ है। पिंकू ने चश्मा उठाया और धीरे से घर के बाहर निकल गया। सीधे पहुँचा चश्मे की दुकान और दुकानदार को दादाजी

का चश्मा दिखाते हुए कहा, इस नंबर का नया चश्मा दीजिए और यह जो टूटा चश्मा है, इसकी डंडी भी ठीक कर दीजिए और कांच भी बदल दें। दुकानदार ने चश्मे को उलट-पुलट कर देखा और नया चश्मा पिंकू के सामने रख दिया, फिर टूटे हुए चश्मे को की डंडी बदली और कांच भी लगा दिया। आठ सौ रुपये का चश्मा था और दो सौ रुपये बनवाई लगी। कुल एक हजार हुए। यह सुनकर पिंकू बहुत

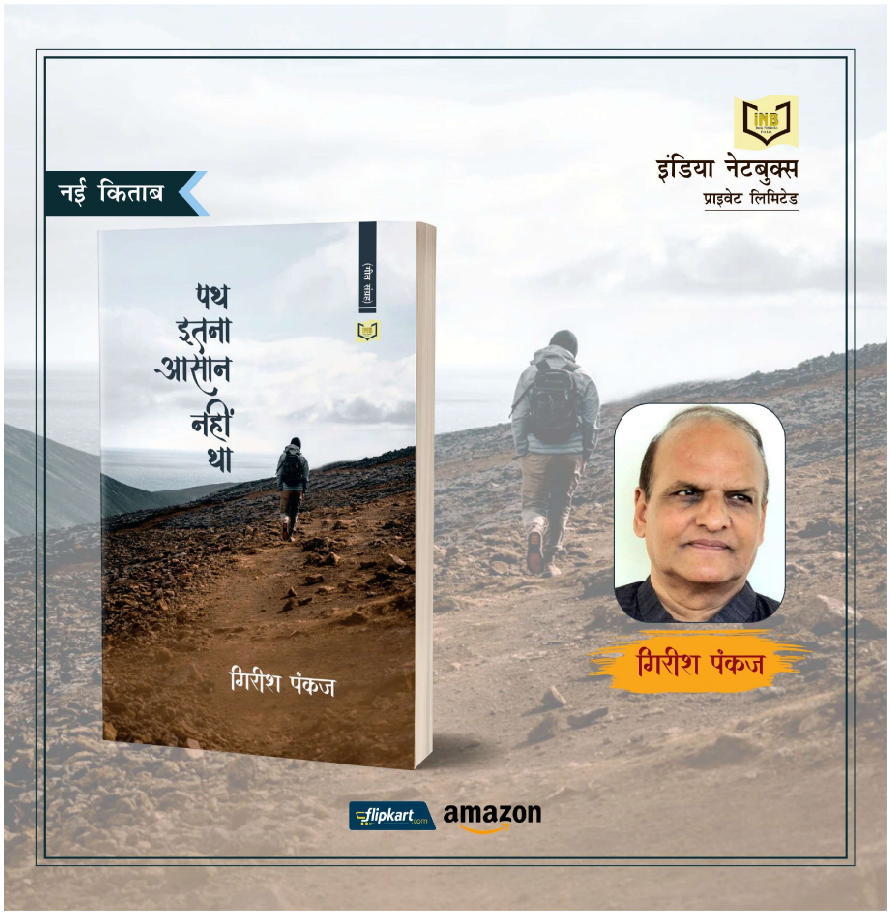

खुश हुआ और उसने दुकानदार को रुपये दिए और घर लौट आया।

घर पहुँचा तो देखा, दादाजी पलंग पर बैठे हैं और कुछ सोच रहे हैं।

पिंकू ने पूछा, दादा जी, आप क्या सोच रहे हैं?

पिंकू को देखकर दादाजी मुस्कुराए और बोले, बस, ऐसे ही कुछ सोच रहा था। यह भी सोच रहा था कि मेरा चश्मा कहाँ चला गया। सुबह तो यहीं था, लेकिन अब नज़र नहीं आ रहा। बुढ़ापे में याददाश्त भी कमजोर हो जाती है न। समझ में नहीं आ रहा कि मैंने चश्मा कहाँ रख दिया है। मिल ही नहीं रहा। आज अखबार ही नहीं पढ़ पाया। तेरे पिता मेरा चश्मा बनवा ही नहीं रहे हैं। बड़ी दिक्कत होती है। रामचरितमानस के बड़े अक्षर होने के कारण उसे थोड़ा-बहुत तो पढ़ ही लेता हूँ, लेकिन आज तो वह भी नहीं पढ़ पाया। पता नहीं चश्मा कहाँ रख दिया।

दादाजी की बात सुनकर पिंकू हँस पड़ा, यह देख कर दादाजी ने पूछा, तू हँस क्यों रहा है? लगता है, मेरा चश्मा तूने ही कहीं छुपा कर रखा है। मैं सही बोल रहा हूँ न पिंकू ने कहा, एकदम सही बोल रहे हैं, दादाजी! मैं ने ही आपका चश्मा छुपा दिया था। यह देखिए, यह रहा आपका चश्मा!

इतना कहकर पिंकू ने दादाजी का पुराना चश्मा सामने रख दिया और बोला, 'यह लीजिए!'

दादा जी ने चश्मे को देखा तो खुश हो गए और बोले, अरे! यह तो ठीक हो गया! मगर कैसे? अच्छा, तो तू बनवा कर ले आया शाबाश, मेरे बेटे! जो काम सुरेश न कर सका, वह काम तूने कर दिखाया। वाह! मेरे पोते, वाह!

इतना सुनकर पिंकू ने कहा, दादा जी! मैंने एक और कमाल किया है। फिर उसने अपनी पेंट के जेब से नया

चश्मा निकाला और दादा जी को और बढ़ाते हुए कहा, यह रहा आपका एक और चश्मा। बिल्कुल नया। अब आप रोज इसे ही पहना कीजिए, और पुराने चश्मे को संभाल कर रखिए। कभी यह टूट जाए या कहीं खो जाए, तो पुराना चश्मा आपके पास रहेगा ही।

नये चश्मे को देखकर दादाजी की आँखों में आँसू आ गए। उन्होंने पिंकू को गले लगाते हुए कहा, तूने तो कमाल कर दिया बेटे! मैंने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि तू मेरी इतनी चिंता करता है। मगर यह तो बता, तेरे पास इतने पैसे आए कहाँ से नया चश्मा तो आजकल सात आठ सौ रुपये से कम में नहीं मिल सकता।

पिंकू ने कहा, दादा जी! मैंने मम्मी-पापा से झूठ बोलकर सात सौ रुपये एकत्र कर लिए थे। तीनसौ रुपये मेरे गुल्लक में जमा थे। तो हो गए एक हजार। इन्हें लेकर चश्मे की दुकान गया और आपके लिए नया चश्मा खरीद कर ले आया।

दरवाजे के पास खड़ी पिंकू की माँ उसकी बातें सुन रही थी। पहले तो उसे गुस्सा आया कि पिंकू ने झूठ बोलकर पैसे मांगे, फिर वह मन-ही-मन सोचने लगी कि बेटे ने जो किया, अच्छा ही किया। पिंकू के पिताजी को समय रहते अपने पिता का चश्मा ठीक करवा देना था। नया चश्मा भी खरीदना था। लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया।

उनका काम उनके बेटे ने कर दिखाया, तो कोई बात नहीं। यह सोच कर पिंकू की माँ दादाजी के पास पहुँची और बोली, आप के पोते ने बहुत अच्छा काम किया है। इसने हमारी गलती सुधार दी।

आपका चश्मा कई दिनों से खराब पड़ा था, लेकिन हमने उस उस ओर ध्यान ही नहीं दिया। आपने कई बार पिंकू के पापा से कहा, पर वे हर बार टालते रहे। यह उनकी गलती थी। लेकिन अपने पिता की गलती को उनके बेटे ने सुधार दिया।

दादाजी हँसते हुए बोले, यह बड़ी खुशी की बात है। जो काम मेरा बेटा न कर सका, वह काम उसके बेटे ने कर दिया। यह एक ही बात है। आखिर खून किसका है। अपना ही तो है। बेटा काम करें या पोता, काम होना चाहिए। देर आयद दुरुस्त आयद!

शाम को पिंकू के पापा घर आए तो उन्हें सारी बात पता चली। अब उन्हें अपनी गलती का एहसास हुआ। उन्होंने पिंकू को प्यार करते हुए शाबाशी दी और कहा, बेटे! आज तूने मुझे एक सबक सिखा दिया। पिताजी के प्रति मेरी यह लापरवाही एकदम ठीक नहीं थी। मुझे सारा काम छोड़कर पिताजी के चश्मे को बनवाना था। नया चश्मा भी खरीदना था। लेकिन यह काम तूने कर दिया। अब से कभी भी ऐसी लापरवाही नहीं करूँगा।

पिंकू ने कान पकड़ते हुए कहा, 'सॉरी पिताजी! मैंने आपसे झूठ बोल कर के पैसे मांग लिए थे। स्कूल में कोई कार्यक्रम नहीं था। बस, दादाजी के के चश्मे के लिए पैसे चाहिए थे इसलिए पिंकू के पापा ने मुस्कुराते हुए कहा, तूने अच्छे काम के लिए झूठ बोला। यह झूठ लाखों सच पर भारी है। आज से कसम खाता हूँ कि पिताजी के मामले में कभी लापरवाही नहीं करूँगा।'

बातचीत चल रही थी, तभी दादाजी खाँसने लगे। पिंकू ने कहा, 'लगता है आपको खाँसी हो गई है।'

दादा जी बोले, 'हाँ, सुबह से कुछ है हरारत सी है। खांसी भी आ रही।'

इतना सुनना था कि पिंकू के पापा बोले, 'मैं अभी बाजार जाकर दवाई ले आता हूँ।' इतना बोल कर वह बाहर जाने लगे, तो दादाजी ने कहा, 'अरे, बाद में ले आना।' लेकिन सुरेश रुके नहीं और यह बोलते हुए बाहर निकल गए कि 'पिताजी, आप ही तो कहते हैं, काल करे सो आज कर आज करे सो अब!'

बेटे की बात सुनकर दादाजी मुस्कुरा पड़े। पिंकू के चेहरे पर भी मुस्कान थी।

साहस में अस्त्रों-शस्त्रों से अधिक शक्ति होती है।

***

सादगी नारी की, पेड़ पृथ्वी की शोभा है।

***

सहायता करने की गति, वायु व वायुयान की तरह होनी चाहिए।

एक स्कूल मोरों वाला

प्रकाश मनु

तान्या कंधे पर बस्ता टाँगे मम्मी के साथ स्कूल जा रही थी। अभी वे स्कूल के पिछवाड़े वाली दीवार के पास ही पहुँचे थे कि एकाएक मोर की प्रसन्न आवाज सुनाई दी, 'केऊँ-केऊँ!' और उसके बाद तो बार-बार हवा को गुँजाने लगी यह टेर, 'केऊँ-केऊँ...केऊँ केऊँ...केऊँ केऊँ...केऊँ...!!'

तान्या अचानक चौंकी। बोली, 'मम्मी-मम्मी, मोर...!' फिर जैसे अपनी बेकाबू हो चुकी उत्सुकता से उसने पूछा, 'मम्मी-मम्मी, यह मोर की ही आवाज है न!'

'हाँ बेटी!' मम्मी ने मुसकराते हुए कहा।

तब तक फिर 'केऊँ-केऊँ' का मीठा सुरीला संगीत शुरू हो गया था। अब तान्या को समझ में आ गया कि मोर एक नहीं, कई हैं।

'तो मम्मी, ये मोर हमारे स्कूल में क्यों आए हैं?' तान्या ने जानना चाहा।

'ये भी तो पढ़ेंगे, जैसे तुम पढ़ती हो।' कहते-कहते मम्मी को हँसी आ गई।

'हैं मम्मी सच्ची!' अब तो मारे अचरज के तान्या की आँखें निकली पड़ रही थीं।

'और क्या? मोर भी तो पढ़ सकते हैं। मोर भला क्यों नहीं पढ़ सकते? वो कोई बुद्धू थोड़े ही ना होते हैं।'

मम्मी ने कहा तो तान्या के भीतर पूरी फिल्म चल पड़ी। डिस्कवरी चैनल की तरह। यह कल्पना वाकई कितनी मजेदार थी कि जिस क्लास में वह पढ़े, उसी में बगल की चेयर पर कोई मोर भी किताब खोलकर बैठा, ध्यान से मैडम का लेक्चर सुनता हुआ लैसन पढ़ रहा हो।

उसे सच्ची-मुच्ची अपने क्लासरूम में आगे की सीट पर बैठे मोर नजर आ गए। उनके पास तान्या की तरह ही स्कूल बैग था, बुक्स, कॉपियाँ, पेंसिल और कलर बॉक्स भी। तान्या सोचने लगी, 'फिर तो मैं स्कूल जाते ही सबसे पहले उन्हें हैलो किया करूँगी।'

'पर मम्मी, मैडम इन्हें मारेंगी तो नहीं' अब तान्या को दूसरी चिंता सताने लगी।

'तान्या बेटी, भला मोरों को कोई मारता है? वे तो इतने प्यारे होते हैं। मैडम जरूर उन्हें प्यार से पढ़ाएँगी।'

'तो मम्मी, मोर पढ़ेंगे कैसे? उन्हें ए.बी.सी.डी बोलना आता है?' तान्या के सवाल खत्म होने में ही नहीं आ रहे थे। 'आता नहीं है तो क्या, सीख जाएँगे! शुरू-शुरू में तुम्हें भी तो कहाँ आती थी इंगलिश। तुम कितना परेशान होती थीं। पर फिर सीख गईं न!' मम्मी ने समझाया।

'वाह मम्मी, फिर तो बड़ा मजा आएगा।' कहकर तान्या तालियाँ बजाकर हँसने लगी। फिर हँसते-हँसते बोली, 'मालूम है मम्मी, हमारे स्कूल में लास्ट पीरियड में सारे बच्चे मिलकर पहाड़े याद करते हैं। फिर तो मोर भी हमारे साथ-साथ पहाड़े याद करेंगे! कितना मजा आएगा ना मम्मी।'

'हाँ, मगर साथ-साथ क्यों? देखना, मैडम तो ऐसा करेंगी कि एक तरफ तुम सारे के सारे बच्चे बोलेंगे और दूसरी ओर से मोर...!'

'वाह मम्मी, फिर तो कमाल हो जाएगा! हम प्रिंसिपल सर से कहेंगे, वे इसकी वीडियो फिल्म बनवा लें।' कहकर तान्या फिर से तालियाँ बजाने लगी। फिर बोली, 'ऐसा हो सकता है न मम्मी...'

'हाँ-हाँ बेटी, क्यों नहीं? जरूर हो सकता है।' मम्मी ने भरोसा दिलाया। पर तान्या को शायद अब भी पूरा-पूरा यकीन नहीं था। सोच रही थी, कहीं मम्मी मजाक तो नहीं कर रहीं।

थोड़ी देर में तान्या स्कूल पहुँची तो देखा, एक-दो नहीं, पूरे चार मोर एक पेड़ के नीचे खड़े हैं। बच्चे दूर से उन्हें देख रहे थे और खुश हो रहे थे। अभी प्रेयर का टाइम नहीं हुआ था, इसलिए कोई उन्हें टोक नहीं रहा था। पर आरती मैडम ने देखा तो पास आकर कहा, 'अरे, यहाँ क्या हो रहा है। चलो सब, अपनी-अपनी क्लास में।'

आरती मैडम की बात पूरी होने से पहले ही सारे बच्चे एक साथ चीखे, 'मैडम मोर...!'

'मैडम तो मोर नहीं हैं, मोर वो रहे सामने।' कहकर आरती मैडम हँसने लगीं।

तब तक रूपा मैडम, मालिनी मैडम, वंदना कौल मैडम, पीटी के देवा सर और कंप्यूटर वाले सक्सेना सर भी आ गए थे। एक साथ चार-चार मोरों को देखकर उन्हें भी बड़ी हैरानी हो रही थी। इतने में स्कूल के पीयन राधेलाल ने पास ही थोड़ा दाना लाकर बिखेर दिया। मोरों को शायद भूख लगी थी। उन्होंने देखा तो झट वहाँ आ गए और मजे में खाने लगे।

'लगता है, अब ये रोज आएँगे!' मेघना बोली।

'मुझे भी लगता है। जरूर इन्हें हमारा स्कूल पसंद आ गया है। फिर यहाँ ऊँचे-ऊँचे पेड़ भी कितने हैं, खूब हरियाली है।' नंदिनी बोली। 'हैं फिर तो बड़ा मजा आएगा।' तान्या खुश हो गई। सच तो यह है कि आज वह इतनी खुश थी कि खुशी उसके भीतर समा नहीं रही थी। उसे लग रहा था, असल में नहीं देख रही, कोई फिल्म चल रही है उसके सामने। 'अच्छा, अब सब लोग चलो अपनी-अपनी क्लास में। इतनी भीड़ देखकर मोर कहीं भाग न जाएँ!' पीटी सर ने चेताया।

'हाँ-हाँ, चलो!' बच्चों ने एक-दूसरे से कहा। पर क्लास में जाते हुए भी वे मुड़-मुड़कर मोरों को ही देख रहे थे। और जब वे क्लास में जाकर बैठे, तब भी सबके खयालों में बस मोर ही थे। और सचमुच जो बच्चों ने सोचा था, वही हुआ। मोर जो उस दिन आए थे, रोज आने लगे। और ऐसा पिछले कोई पंद्रह-बीस दिनों से हो रहा था।

यह इतनी अजब-निराली चीज थी कि इससे देखते ही देखते पूरे स्कूल का माहौल बदल गया। बच्चे इतने उत्साहित थे कि जैसे उन्हें दुनिया का सबसे बड़ा खजाना मिल गया हो। प्रिंसिपल आनंद सर बच्चों से बहुत प्यार करते थे। जब बच्चे इतने खुश थे तो वे भला कैसे खुश न होते? उन्होंने राधेलाल से कहा, 'देखो, मोरों के लिए दाना डाल दो और ध्यान रखना कोई इन्हें नुकसान न पहुँचाये।' फिर जैसे कुछ याद आया, उन्होंने कहा, 'और हाँ, बच्चों से कहना, भीड़ न लगाएँ। नहीं तो हो सकता है फिर ये आना बंद कर दें।'

इधर बच्चों के उत्साह का भी ठिकाना न था। यह तो कुछ ऐसा हो गया था, जिसकी उन्होंने सपने में भी कल्पना न की थी। बच्चे घर से दाना लाकर राधेलाल को दे देते, और राधेलाल मोरों के आगे उन्हें डालता तो वे खुशी के मारे किलकारी भरने लगते। फिर एक दिन प्रिंसिपल सर ने प्रेयर में कहा, 'यह हमारी खुशकिस्मती है कि जैसे तुम सारे के सारे बच्चों को हमारा स्कूल अच्छा लगता है, वैसे ही मोरों को भी यह स्कूल पसंद है। लगता है, मोर घूमते-घूमते निकल आए होंगे और उन्होंने हमारे स्कूल को इसलिए चुनाए क्योंकि उन्हें यहाँ के बच्चे अच्छे लगे। ऐसे प्यारे बच्चे भला उन्हें कहाँ मिलेंगे? अब आप लोग कोई ऐसा काम न करें जिससे इन्हें दुख हो। कहीं ये ऐसा न

सोचें कि हम तो यह समझकर आए थे कि यहाँ के बच्चे अच्छे हैं, पर ये तो बड़े गंदे हैं। तो बताइए आप लोग, कोई बच्चा इन्हें तंग तो नहीं करेगा ना!'

'नहीं!' सब बच्चों की एक साथ आवाज गूँजी।

अब तो हर दिन प्रेयर में प्रिंसिपल सर मोरों को लेकर कुछ-न-कुछ जरूर कहते। सुनकर बच्चों को अच्छा लगता। कुछ बच्चे कविता लिखकर लाते और मंच पर जाकर सुनाते। कुछ बच्चों ने चित्र भी बनाए। प्रिंसिपल सर ने एसेंबली में सब बच्चों को वे चित्र दिखाए।

हर कोई उन्हें देखकर 'वाह-वाह' कह उठा। इससे उत्साहित होकर प्रिंसिपल सर ने स्कूल में एक चित्रकला प्रतियोगिता कराई। सब बच्चों ने वहीं बैठकर मोरों के एक से एक सुंदर चित्र बनाए। कुछ बच्चों ने तो मोर और बच्चों की दोस्ती की सुंदर झाँकी ही पेश कर दी। किस्म-किस्म के चित्र, जिनमें हर बच्चे का कुछ अलग अंदाज था।

तान्या का बनाया चित्र सबको बहुत पसंद आया। उसने एक मोर को गले में बस्ता टाँगकर स्कूल जाते हुए दिखाया। पर इससे भी अच्छा चित्र एक नन्हे बच्चे कर्ण ने बनाया था।

उसमें सारे मोर मिलकर एक उदास बच्चे को खुश करने की कोशिश कर रहे थे। बीच में बच्चा था और आस-पास गोला बनाकर नाचते हे ढेर सारे मोर। उसे देखते ही सब बच्चों ने तालियाँ बजानी शुरू कर दीं। उसी को पहला इनाम मिला।

वाकई स्कूल के हर बच्चे के दिल में मोरों के लिए प्यार था। सब चाहते थे, 'काश, मोर रोज हमारे स्कूल में आएँ!'

शायद बच्चों के दिल की बात मोरों ने भी समझ ली। उन्हें अच्छा लगा तो उनके साथ-साथ कुछ और मोर भी आने लगे। काफी देर तक वे स्कूल में हरेभरे पेड़ों के बीच घूमते, फिर उड़कर कहीं चले जाते।

अब तो आसपास के लोगों का भी इस पर ध्यान गया। वे कहने लगे, 'अरे भई, यह तो मोरों वाला स्कूल है।' यहाँ तक कि धीरे-धीरे स्कूल का नाम 'मोरों वाला स्कूल' पड़ गया।

मोर अब डरते नहीं थे। प्रिसिपल सर ने उनके लिए मैदान में एक तरफ मिट्टी का एक ऊँचा टीला बनवा दिया था। वहाँ हरी-हरी घास और खूब सारे पौधे भी लगवा दिए। मोर वहाँ आकर बैठ जाते और गर्दन ऊँची करके पुकारते, 'केऊँ-केऊँ!'

स्कूल में सभी बच्चे मोरों से बहुत प्यार करते थे। पर एक बार अनहोनी हो गई। एक शरारती बच्चे सुनील ने एक मोर को गुलेल मारी। मोर के पैर में इतने जोर से कंकड़ी लगी कि वह उसी समय जमीन पर बैठ गया। आँखों में दर्द और करुणा।

देर तक हवा में मोरों की दुख भरी आवाजें गूँजती रहीं, जो उस मोर के आसपास घिर आए थे। प्रिंसिपल पास ही राउंड ले रहे थे। वे उसी समय दौड़कर आए और घायल मोर को गोद में उठा लिया। बहुत से बच्चे भी वहाँ इकट्ठे हो गए। सबको पता चल गया कि किसी बच्चे ने मोर को गुलेल मारकर घायल कर दिया है। सबका कहना था कि उस बच्चे का पता लगाकर उसे स्कूल से निकाल दिया जाए।

जल्दी ही प्रिंसिपल सर को पता चल गया कि यह हरकत सुनील ने की है। अगले दिन एसेंबली में उन्होंने सुनील को स्टेज पर बुलाया। कहा, 'देखो सुनील, मोर को बहुत चोट आई है, उसे अभी ठीक होने में हफ्ता भर लगेगा। इस बीच उसकी देखभाल का जिम्मा तुम्हारा होगा।'

सुनील की आँखों में आँसू थे। उसे लगा, प्रेयर में जितने भी छात्र हैं, सबकी आँखों में उसके लिए गुस्सा है।

घायल मोर के चारों ओर बाकी मोर हर वक्त घेरा बनाकर खड़े रहते, जैसे वे शोकमग्न हों। सुनील घर से मोरों के लिए दाना लेकर आता। उन्हें प्यार से खिलाने की कोशिश करता, पर मोर उसकी ओर देखते भी नहीं थे। वह घायल मोर के जख्मों पर दवा लगाता, उसे बीच-बीच में थोड़ा पानी पिलाता। कुछ दिन बाद घायल मोर उड़ने लायक हुआ, तो उसके साथ-साथ सभी मोर उड़ गए।

इसके बाद चार दिनों तक वे मोर नहीं लौटे। स्कूल में जैसे सन्नाटा-सा छा गया।

सबका यही कहना था कि मोर नाराज होकर चले गए हैं और अब वे कभी नहीं लौटेंगे। पर पाँचवें दिन मोर फिर

दिखाई दिए। इनमें वह मोर भी था, जिसके पैरों में गुलेल का पत्थर लगा था। वह अब ठीक था और दूसरे मोरों के साथ पेड़ों के झुरमुट में घूम रहा था।

अब सबसे ज्यादा सुनील ही मोरों के आससास दिखाई देता, जैसे मन ही मन उनसे माफी माँग रहा हो। अगले दिन वह दाना लेकर आया और राधेलाल को देकर बोला, 'अंकल, मेरे हाथ से तो ये नहीं खाएँगे, आप इन्हें दाना खिला दो।'

उसके बाद तो सुनील रोज उनके लिए दाना लेकर आने लगा। फिर एक दिन ऐसा भी आया, जब मोरों ने सुनील के हाथों से दाना लेकर खाना शुरू कर दिया। सुनील इतना खुश था, कि उसका मन हो रहा था, वह खुशी के मारे नाचने लगे।

अब तो जब भी उसे समय मिलता, वह मोरों के पास जाकर खड़ा हो जाता। मोर केऊँ-केऊँ कहकर उसका स्वागत करते, तो वह प्यार से उन्हें पुचकार देता। सब लोग कहने लगे कि सुनील तो बहुत बदल गया है। एक दिन खुद प्रिंसिपल साहब ने देखा।

उन्होंने पास आकर उसकी पीठ थपथपाई और चले गए। सुनील की आँखों में आँसू छलछला आए। पर वे खुशी के आँसू थे।

अगले साल प्रिसिपल सर ने अखबारों में स्कूल का विज्ञापन निकलवाया 'नन्हे बच्चों के लिए प्यारा मोरों वाला स्कूल!...यह नाम सुनने में कुछ अजीब लग सकता है। पर सच में हमारा स्कूल ऐसा ही है मोरों वाला स्कूल। जो बच्चे पशु-पक्षियों से प्यार करते हैं और जिन्हें पेड़-पौधों और प्रकृति की हरियाली से प्यार है, हमारा स्कूल उन्हीं के लिए है। हमें उनका इंतजार है।'

इस पर बहुत से नए बच्चों के मम्मी-पापा स्कूल में उनका नाम लिखाने के लिए आए। दूसरे स्कूलों के बच्चे और अध्यापक भी उत्सुकता से भरकर देखने आते थे कि भला कैसा है यह स्कूल। फिर बारिशों में मोर सप्ताह मनाया गया। उसमें नृत्य और गायन की प्रतियोगिताओं के साथ-साथ खेलकूद के भी रंग थे। शहर के सब स्कूलों के बच्चों ने इसमें हिस्सा लिया। मोरों को देखकर हर किसी का मन नाच रहा था।

'मेरी समझ में नहीं आता, यहीं मोर क्यों आते हैं। हमारे स्कूल में क्यों नहीं आते?' एक गोलू-मटोलू बच्चे ने पूछ लिया।

इस पर पास ही खड़े प्रिंसिपल सर ने मुसकराकर कहा, 'यह तो मैं भी नहीं बता सकता। पर हाँ, इतना जरूर कह सकता हूँ कि यहाँ बच्चे भोले और प्यारे हैं और मोरों को अच्छे प्यारे बच्चों से दोस्ती करना बड़ा अच्छा लगता है। फिर यहाँ पेड़-पौधे और हरियाली भी बहुत है जो सभी को पसंद है मोरों को भी!'

तब से कई बरस बीत गए। मोर अब भी इस स्कूल में वैसे ही झूम-झूमकर नाचते हैं। अब तो मॉडर्न स्कूल को शहर में सभी 'मोरों वाला स्कूल' कहने लगे थे। पेड़ों के झुरमुट के बीच मोरों ने यहाँ अपना स्थायी डेरा बना लिया था। दिल खुश होने पर वे मस्ती से भरकर नाचते। और बारिशों में तो हर रोज ही उनका नाच स्कूल के बच्चों को रोमांचित कर देता।

इस पर नन्हीं तान्या ने भी एक कहानी लिखी है, जिसका नाम उसने रखा है, 'एक स्कूल मोरों वाला'। उसने यह कहानी प्रिंसिपल सर को दी, तो पढ़कर उनके चेहरे पर बड़ी मीठी मुसकान आ गई।

उन्होंने मुसकराते हुए कहा, 'तान्या, तुम्हारी यह कहानी हम सुंदर लिखाई में लिखवाकर वहाँ टाँगेंगे, जहाँ झुरमुट के बीच मोर रहते हैं। ताकि जो भी इन मोरों को पढ़ने आए, वह तुम्हारी कहानी भी पढ़े।'

सुनकर तान्या खुश थी। इतनी खुशए इतनी खुश कि मारे खुशी के वह नाचने लगी, बिल्कुल मोरों की तरह।

बड़ों की डाँट में प्यार और सुधार सम्मिलित होता है।

***

बरसने वाले बादल गरजने वाले बादलों से सौ गुना बेहतर हैं।

***

बिना खुशी के इन्सान अकेला है।

***

अच्छे कार्यों में प्राण होते हैं, वे बोलते हैं।

अपने भीतर झाँकों

दिविक रमेश

एक था सोनू। एक अच्छी पाठशाला में पढ़ता था। एक दिन वह बहुत उदास हुआ। तब वह दुःखी सा, पेड़ के नीचे जाकर चबूतरे पर बैठ गया। अकेला, सोचता रहा कि क्या करूँ? सोचता रहा, सोचता रहा, लेकिन कुछ सूझ ही नहीं रहा था। आखिर उसे एक रास्ता सूझा जंगल।

सो, चल दिया सोनू जंगल की ओर। बिना किसी को बताएँ यह भी ख़्याल नहीं आया कि उसे न पाकर घर वाले कितने परेशान होंगे। चलते-चलते, चलते-चलते आखिर पहुँच गया सोनू जंगल में। अभी सूरज डूबा नहीं था। इतने सारे पेड़! इतने सारे पक्षी! घास! झाड़-झंखाड़! और यह क्या! सामने से फुदककर किसी झाड़ी में छिपता हुआ खरगोश! एकदम नन्हा-सा! सोनू अपने आपमें कहाँ था। पूरी तरह जंगल में रम गया था। पहली ही बार जो जंगल आया था। एक-एक चीज देखकर अचंभे में था। पर अच्छा भी बहुत लग रहा था। थोड़ी ही दूर चलने पर उसे एक नदी मिली। इतना साफ पानी तो उसने पहले-पहल देखा था। उसने सोचा, क्यों न नहा लिया जाए। तैरना तो उसे आता ही था। झट कपड़े उतारे और कूद पड़ा नदी में। ठंडे-ठंडे पानी में नहाकर मजा आ गया। कुछ पानी पिया भी।

साथ में जो बिस्कुट लाया था, उनमें से कुछ खाए। पास ही एक बेर की झाड़ी थी, जिस पर पके हुए बेर चमक रहे थे। दो-तीन बेर भी तोड़कर खाए। उसे लगा कि अब उसे नींद आ रही है। रात तो आनी ही थी, सो आ गई। सूरज की जगह चाँद आ गया और साथ में सितारे भी। पेड़ों के पत्तों से झाँकते हुए। फिर ओझल होते हुए...!

सोनू को लगा कि कोई बहुत पास से उसे पुकार रहा है 'सोनू! सोनू!' सोनू को समझ में ही नहीं आया कि वहाँ उसे कौन जानता है? दूर-दराज तक कोई आदमी भी नहीं दिख रहा था। लेकिन आवाज थी की रह-रहकर आ रही थी। मीठी-मीठी। ठंडक-सी पहुँचाती हुई।

अब सोनू ने ध्यान से उस ओर देखा, जिधर से आवाज आ रही थी। वह तो नदी के पास से आ रही थी। पर वहाँ भी आदमी तो कोई नहीं दिख रहा था। वह हक्का-बक्का रह गया। तभी उसे खिलखिलाहट के साथ आवाज आई 'अरे सोनू, मैं हूँ। मैं ही तुम्हें पुकार रही हूँ।'

अब तो सोनू और भी चौंका। उसने पूछा 'नदी! पर तुम आदमी की तरह कैसे बोल सकती हो।' यह सुनकर नदी फिर एक बार हँस पड़ी। बोली 'अरे, तुमने पंचतंत्र की कहानियाँ नहीं पढ़ी क्या? पेड़, पौधे, जानवर, जंगल और हम सब मनुष्य की तरह बोल सकते हैं।'

सोनू को नदी पर विश्वास ही नहीं हो रहा था। वह तो बस, हैरान था। तब नदी ने बहुत ही मीठी आवाज में कहा 'सोनू बेटे, तुम इस समय जंगल के सुरक्षित हिस्से में हो। लेकिन आगे का हिस्सा भयानक और खतरनाक है। वहाँ भयानक जानवर हैं, खून के प्यासे पेड़ हैं और जहरीले, लेकिन सुंदर फलों वाली झाड़ियाँ हैं। और हाँ, आग उगलता तालाब है इसके अलावा और भी बहुत कुछ है, मैं तो कहती हूँ कि तुम घर लौट जाओ।'

'बकवास, मैं नहीं मानता।' सोनू के मुँह से निकला 'जरूर तुम मुझे डराना चाहती हो।'

'ठीक है सोनू, जैसी तुम्हारी मर्जी। तुम अच्छे बच्चे लगते हो, इसलिए तुम्हारी मदद करना चाहती हूँ। यह दाईं ओर जो गोल-सा पत्थर पड़ा है, इसे तो ले ही लो। जादुई पत्थर है। जब भी कष्ट हो, इसे मुट्ठी में बंद कर, मुझे याद करना।' नदी ने प्यार से कहा।

'पर पत्थर।' सोनू को यह सब बेकार की बात लग रही थी।

'बड़ों की बात मान लेनी चाहिए सोनू। याद रखो, जो तुम्हें प्यार करता है, वह तुम्हारा हित ही चाहता है। पत्थर ले लो, न काम में आए, तो फेंक देना।' नदी ने गंभीर होकर कहा।

सोनू ने अनमने भाव से पत्थर ले लिया और आगे की राह चल पड़ा।

अभी कुछ ही दूर पहुँचा था कि एक पेड़ की डाली उसे

अपनी ओर लपकती नजर आई। लगा, जैसे वह उसे अजगर की तरह कसना चाहती है। सोनू ने समझ लिया कि वह डाली जरूर खून के प्यासे पेड़ की थी। ऐसे पेड़ों के बारे में उसने तो बस, किताबों में ही पढ़ा था या फिर नदी से सुना था। विश्वास उसे कभी नहीं हुआ था। उसने कुछ सोचा और झट से पत्थर मुट्ठी में रखकर नदी को याद किया। चमत्कार हो गया। देखते-देखते पत्थर कटार बन गया, उसने खतरनाक डाली के टुकड़े-टुकड़े कर डाले और फिर से पत्थर बनकर सोनू के पास आ गया। सोनू दंग रह गया। अब तक सोनू को प्यास लग आई थी। सोचा, आगे चलकर पानी ढूँढ़ा जाए। सो बढ़ गया आगे। वह एक ऐसी जगह पहुँचा, जहाँ हर ओर से अजीब-अजीब आवाजें आ रही थीं। सोनू को थोड़ा डर भी लगा। लेकिन था वह हिम्मती ही न! सो चलता रहा पानी की तलाश में। थोड़ी ही दूर पहुँचा, तो उसने देखा कि एक तालाब है जिसके पानी में आग लगी है। वह हैरान था और निराश भी। पानी मिला भी तो आग वाला। अब वह क्या करे। कैसे अपनी प्यास बुझाए! प्यास थी कि अब ओर भी ज्यादा भड़क उठी थी। गला सूखा जा रहा था। प्राण निकलने को हो रहे थे।

वह घनघोर निराशा से भर उठा। उसे लगा कि अब वह मर जाएगा। उसे कुछ सूझ ही नहीं रहा था। पाँवों में आगे चलने का दम भी नहीं रह गया था। तभी गोल पत्थर का ध्यान आया। उसने तुरंत वही किया, जो नदी ने मुसीबत में करने को कहा था। चमत्कार! जाने कहाँ से मेघ आ गए और आग वाले तालाब पर बरसने लगे। देखते-देखते न केवल लपटें गायब हो गईं, बल्कि पानी भी पीने लायक, मीठा और शीतल हो गया। सोनू की सारी निराशा रफूचक्कर हो गई। उसने जी भरकर पानी पिया। सोचा, नदी के पास जाकर माफी माँगनी चाहिए और उसे धन्यवाद भी देना चाहिए। कदम बढ़ाता सोनू लौट आया नदी के पास। हाथ जोड़कर माफी माँगी। नदी बहुत खुश हुई। वह तो सब कुछ जानती ही थी। उसने सोनू को ढेर सारा प्यार किया। उसके बाल सहला, और पूछा 'अच्छा। सोनू, यह तो बताओ कि तुम जंगल में आए क्यों? वह भी अकेले।'

सोनू थोड़ा उदास हो गया। भीतर ही भीतर अब वह शर्मिंदा भी था। उसे इतनी-सी बात पर जंगल नहीं आना चाहिए था। उसे माँ और बापू की बहुत याद आने लगी। नदी की माँ जैसी बोली सुनकर उसने सच-सच बताया ''नदी माँ, मैं पहले साल की तरह इस बार भी परीक्षा में फेल हो गया। मुझे बहुत शर्म आई, सोचा कि दोस्त और पड़ोसी कितना मजाक उड़ाएँगे। माँ और बापू के सामने जाऊँगा, तो डाँट पड़ेगी। बहुत निराश हो गया था। जब कुछ नहीं सूझाए तो सोचा कि दूर किसी जंगल में चला जाऊँ।

मुझे क्या मालूम था कि जहाँ जाओ, वहीं मुसीबत होती है तथा उसका सामना करना पड़ता है। मुझे माँ-बापू की बहुत याद आ रही है, नदी माँ। कितने परेशान होंगे वे।

नदी ने सोनू को मानो गले लगाया। बोली 'सोनू अच्छा है, बिना ज़्यादा समय गँवाए, तुम्हें समझ आ गई। तुमने देखा न कि हर मुसीबत का इलाज भी होता है। तुम फेल हो गए यह जरूर दुःख और शर्म की बात है, लेकिन अपने भीतर झाँकते, तो तुम्हें खुद पता चल जाता कि तुम फेल क्यों हुए।' 'नदी माँ, बात तो आपकी ठीक है। मुझे लग रहा है कि यदि मैं जरूरत से ज़्यादा समय टी.वी. और दोस्तों के साथ खेलों में न गँवाता, तो यह नौबत ही न आती।' 'ठीक कहा तुमने सोनू। अच्छा, इतने समझदार होने के बाद अब घर भी जाओगे कि नहीं। खैर, तुम बहुत प्यारे बच्चे हो। घर लौटकर मुझे भूल मत जाना। आते रहना। माँ-बापू के साथ भी।' नदी ने हँसते हुए कहा। हालाँकि उसकी आँखें कुछ-कुछ गीली भी हो आई थीं।

'जरूर नदी माँ। पर चलने से पहले एक बात तो बताओए तुम मनुष्य की तरह बोल कैसे लेती हो?'

नदी को इस नन्हे-से सवाल पर हँसी आ गई। बोली 'इसका उत्तर भी तुम्हारे पास है। जरा अपने भीतर झाँककर देखो। और कहानियों में कुछ भी हो सकता है।'

कहते-कहते नदी ने अपनी लहरों को इतने जोर से हिलाया, इतने जोर से हिलाया कि कुछ पानी सोनू पर आ पड़ा। सोनू हड़बड़ाकर उठा। जाने कब उसकी आँख लग गई थी। तो नदी की आवाज अपने भीतर से ही आ रही थी।

वह खुशी के मारे चीखा 'ओ माँ नदी!'

अमृत तुल्य आयुर्वेदिक औषधि सितोपलादि चूर्ण

गोवर्धन दास बिन्नानी

हमेशा की तरह जब हम सभी वरिष्ठ दोस्त शाम को आपसी बातचीत के लिये निश्चित जगह इकट्ठे हुये तब मुझे कुछ अजीब सा लगा जब दो साथी कुछ दूर अलग अलग शान्त बैठे मिले। पूछने पर पता चला कि बरसात के चलते हुये ठण्डे मौसम के कारण उन्हें हल्का जुकाम हो गया है। इसलिये सावधानी बरतते हुये थोड़ी दूर अलग बैठना उचित समझा इसलिये ही उस जगह बैठे हैं। तब मैंने उनसे पूछा आपने सितोपलादि चूर्ण लिया क्या? उनके 'ना' कहने पर मैंने उन सभी को सम्बोधित करते हुये बताया कि हमारे पूर्वज खांसी-जुकाम लगते ही उस समस्या का इलाज आयुर्वेदिक औषधि सितोपलादि चूर्ण से नियन्त्रित कर लेते थे। अधिक सर्दी लगने, शीतल जल अथवा असमय अर्थात पसीने से नहाये हुये बदन का ख्याल न कर जल पी लेने से जुकाम हो गया हो तब यह चूर्ण लिया जाय तो काफी राहत मिल जाती है। कभी-कभी यह जुकाम रूक भी जाता है या दूसरे शब्दों में बिगड़े हुए जुकाम में भी इस चूर्ण का उपयोग लाभप्रद रहता है। इसका कारण यह है कि जुकाम होते ही यदि सर्दी रोकने के लिए शीघ्र ही उपाय न किया जाए, तो कफ सूख जाता है जिसके परिणामस्वरूप सिर में दर्द होता है। सूखी खाँसी चालू हो जाती है साथ ही देह में थकावट महसूस होने लगती है अर्थात आलस्य और देह भारी मालूम पड़ना, सिर भारी के लक्षण उभरते हैं। जैसा आप सभी जानते हैं कि ऐसे समय में अन्न में रुचि रहते हुए भी खाने की इच्छा न होना जैसे उपद्रव होते हैं। इन सभी स्थितियों में इस चूर्ण को लेने से लाभ मिलता ही है। इस तरह कुल मिलाकर हम जैसे वरिष्ठों के लिये तो यह सितोपलादि चूर्ण काफी लाभप्रद है। यह चूर्ण गर्भावस्था वाली महिलाएँ भी ले सकती हैं क्योंकि यह शिशु और छोटे बच्चों पर तो बहुत ही असरदार रहता है। इतना सब बताने के बाद मैंने बताया कि इस चूर्ण को हम स्वयं अपने घर पर भी बना सकते हैं। दोस्तों के पूछने पर मैंने बताया कि सितोपलादि चूर्ण के लिये निम्न सामग्री चाहिये।

1. मिश्री जो शरीर में वात को कम करती है।

2. वंशलोचन बांस की गांठों में पाया जाने वाला पदार्थ है। इसकी तासीर ठंडी होती है। यह एंटी बैक्टीरियल होता है। यह पौष्टिक पदार्थ है।

3. पिप्पली उत्तेजत गुण के कारण वात हरता है।

4. छोटी इलायची त्रिदोषशामक गुण लिये यह कफ को ढ़ीला करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। साथ ही मूत्रवर्द्धक है।

5. दालचीनी वात व कफ कम करने में सहायक है। दमा बीमारी में प्रभावी है।

इतना सब समझाने के बाद घर पर बनाने की निम्न विधि बढ़िया ढंग से विस्तार में समझा दी। यदि आप पाँच ग्राम दालचीनी लेते हैं तो फिर आपको छोटी इलायची के दाने 10 ग्राम, पीपल (पिप्पली) 20 ग्राम, वंशलोचन असली 40 ग्राम और मिश्री 80 ग्राम लेना पड़ेगा। इसके बाद इस सितोपलादि चूर्ण को बनाने की विधि समझायी जो इस प्रकार है– सबसे पहले मिश्री को अच्छी तरह से कुचल कर अर्थात कूट कर या पीस कर बुकनी जैसे बना लें।

फिर उसी तरह वंश लोचन और पिप्पली को भी कूट कर या पीस कर बुकनी जैसे बना लें। इसके बाद छोटी इलायची को छीलकर इलायची के दानों को अलग कर लें। अब दालचीनी और इलायची दोनों को मिला कर वापस कूट कर या पीस कर बुकनी जैसे बना लें। अब सभी पीसी हुई चीजों को एक साफ सूती कपड़े से छान मिश्रित कर लें। फिर उस मिश्रण को एक हवा बन्द डिब्बे में भर कर रखें ताकि बाहर की नमी से बचा रहे।

इतना बताने के बाद एक बार फिर मैंने इस आयुर्वेदिक औषधि के फायदे सरल भाषा में समझा दिये ताकि किसी

के मन में किसी भी प्रकार की शंका न रहे।

1. बरसात के दिन हो या जब भी हल्की सर्दी पड़ती है तब हल्का बुखार, नाक बन्द, सिर में दर्द वगैरह में इस चूर्ण के सेवन से लाभ मिलता है।

2. गीली खाँसी या बलगम वाली खाँसी में फेफड़ों में जमा बलगम को पिघला देता है और इसे बाहर निकालने में मदद करता है।

3. सूखी खाँसी होने पर सितोपलादि इसे शांत करने में मदद करता है। लगातार कुछ दिनों तक इस्तेमाल करें तो, ये सूखी खांसी को जड़ से खत्म कर देगा।

4. गले की खराश दूर करता है रात में इसे शहद मिला कर चाट लें और आप देखेंगे कि सुबह गले की खराश कम हो जाएगी। इसके उपयोग से दमा के लक्षण को नियंत्रित कर सकते हैं।

5. इस चूर्ण के सेवन करने से पाचन तंत्र सही रहता है जिसके फलस्वरूप कब्ज, अम्लता जैसी समस्याओं से छुटकारा मिलता है अर्थात इसका सेवन पेट के लिए काफी लाभप्रद माना जाता है।

6. रक्त की कमी होने पर शरीर में हीमोग्लोबिन का स्तर बढ़ाने में भी यह चूर्ण का सेवन लाभप्रद रहता है।

7. हाथ व पैरों के तलवे में जलन में भी यह कारगर है। इस समस्या के लिये इसको प्रातः लेना है।

8. सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इस चूर्ण के सेवन करते रहने से रोग प्रतिरोधक क्षमता को मजबूती मिलती है। इसके बाद इसे कैसे लेना चाहिये बताते हुए बता दिया कि इस चूर्ण को लेने के बाद जहाँ तक सम्भव हो तीन से चार घण्टे तक पानी का सेवन न करें साथ ही कुछ खाने के बाद ही लें क्योंकि खाली पेट लेने से गैस की तकलीफ हो सकती है। इसलिये ही रात को सोने से पहले लेने का कहा जाता है। रात को सोने से पहले लेने से नींद भी ठीक आयेगी और पानी भी दो/चार घण्टे के बाद ही पीने की आवश्यकता पड़ेगी। फिर मैंने कितना लेना चाहिये अर्थात कितनी मात्रा के सम्बन्ध में समझाते हुये बता दिया कि पाँच ग्राम सितोपलादि चूर्ण को शहद के साथ एक चांदी की कटोरी में बढ़िया से मिश्रित कर चाट लें। यहाँ ध्यान देने वाली बात यही है कि शहद इस मात्रा में लें ताकि मिश्रण गले से आसानी से उतर जाए और चांदी वाली कटोरी को भी जीभ से इस तरह चाटें जिससे लगे कि कटोरी को बिल्कुल सफा कर दिया है। यदि इस चूर्ण को सबेरे लेते हैं तो गौ घृत अर्थात देसी घी में मिला कर भी ले सकते हैं। लेकिन हर हालत में मात्रा बढ़ायें नहीं क्योंकि मधुमेह की बीमारी में कुछ नुकसान हो सकता है। इसलिये साधारण अवस्था में तो ठीक है अन्यथा आयुर्वेदाचार्य से सलाह कर लें।

तत्पश्चात यह भी सलाह दी कि यदि हम इसे सामूहिक सहभागिता निभाते हुये ज्यादा मात्रा में बनाते हैं तो लागत कम आयेगी और मेहनत भी सभी में बंट जायेगी। बनने के बाद या तो बराबर मात्रा में बांट लेंगे अन्यथा कम ज्यादा मात्रा में भी आदान-प्रदान कर सकते हैं। अतः इस पर एक दो दिन में एक राय कायम कर लेते हैं फिर आगे की रूपरेखा बना लेंगे।

उसके बाद उठते उठते मैंने कुछ निम्न महत्वपूर्ण सुझाव इस प्रकार दिये–

1. सितोपलादि चूर्ण को ठंडी और सूखी जगह पर रखें जिससे धूप उस पर नहीं पड़े।

2. इस चूर्ण के डब्बे को बच्चों की पहुँच से दूर रखें ताकि इसके स्वाद के चलते वे अपने आप न ले पायें।

3. जब भी आप बाहर से आते हैं अर्थात यदि आप पसीने में हैं और पानी की प्यास है तो एक हाथ से दोनों नाक बन्द कर पानी पी लें जिससे जुकाम नहीं होगा।

अब आशा करता हूँ कि प्रबुद्ध पाठक इतने विस्तार से बताये उपरोक्त सितोपलादि चूर्ण के बारे में जानने के बाद संक्षेप में इतना तो अवश्य ही समझ गये होंगे कि यह चूर्ण बढ़े हुए पित्त को शान्त करते हुये कफ को छाँटता है अर्थात गलाने में सहायक होता है। अन्न पर रुचि उत्पन्न करता है और जठराग्नि को तेज भी करता है। साथ ही पाचक रस को उत्तेजित कर भोजन पचाने में कारगर भूमिका निभाता है। आखिर में मैं पाठकों से यह निवेदन करता हूँ कि सितोपलादि चूर्ण को उपरोक्त विधि से स्वयं तैयार कर पूरा पूरा लाभ उठायें और इस चूर्ण के बारे में अपने सभी सम्पर्क वालों के साथ सांझा भी करें।

महिला गरिमा का गौरव : समान नागरिक संहिता

सन्तोष खन्ना

समान नागरिक संहिता के अंतर्गत भारत में रहने वाले सभी नागरिकों के लिए एक समान कानून बनाने का प्रस्ताव है। यह कानून सभी नागरिकों पर समान रूप से लागू होगा चाहे वह नागरिक किसी भी धर्म या जाति का हो। समान नागरिक संहिता के अंतर्गत विवाह, तलाक, गोद लेने और ज़मीन जायदाद के बंटवारे में सभी धर्मों के लोगों पर एक समान कानून लागू होगा। दूसरे शब्दों में, अलग-अलग नागरिकों के लिए, अलग-अलग नागरिक कानून न होना ही समान नागरिक संहिता की मूल भावना है। कुल मिलाकर कह सकते हैं यह समान नागरिक संहिता कानून एक धर्मनिरपेक्ष कानून होगा। भारत के संविधान की उद्देशिका में धर्मनिरपेक्षता एक प्रमुख कारक है और समानता एक प्रमुख मौलिक अधिकार है। अतः सभी नागरिकों के लिए धर्म निरपेक्षता और समानता की भावना को सही और सुदृढ़ रुप से प्राप्त करने के लिए, देर से ही सही, एक समान नागरिक संहिता कानून लाया जाना अत्यावश्यक है।

भारत के विधि आयोग ने 15 जून, 2023 को देश में समान नागरिक संहिता के विषय पर नए सिरे से आम जनता के विचार आमंत्रित करने की प्रक्रिया आरंभ कर दी है। जनता और धार्मिक संस्थाओं को इस पर 30 दिन के भीतर अपनी राय देनी होगी। कर्नाटक उच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति रितु राय अवस्थी की अध्यक्षता में कार्यरत वर्तमान विधि आयोग ने समान नागरिक संहिता पर आम जनता की राय पहली बार नहीं मांगी है इससे पहले 21वें विधि आयोग ने 7 अक्टूबर, 2016 को भी ऐसी ही राय की मांग की थी। 19 मार्च 2018 और 23 मार्च 2018 को भी ऐसी ही राय मांगी गई थी। इसके बाद उसने अपनी सिफारिश में कहा था कि समान नागरिक संहिता पर कानून बनाने का अभी उपयुक्त समय नहीं आया है। अब तक उस समय की मांगी गई राय को 5 वर्ष की अवधि हो चुकी है। समान नागरिक कानून बनाने के लिए अब नये सिरे से जनता की राय मांगी गई है। इस संबंध में 13 जुलाई, 2023 तक राय भेजी जा सकती है।

समान नागरिक संहिता कानून बनाने के लिए देश की सर्वोच्च न्याय संस्था उच्चतम न्यायालय को कई बार भारत सरकार से इसके बारे में निर्देश दे चुका है। इस कानून को बनाने से पहले यह उचित समझा गया है कि इस विषय पर जनता की अद्यतन राय ले ली जाए। वास्तव में भारत के संविधान के अध्याय 4 में दिए गए राज्य के नीति निदेशक तत्वों के अनुच्छेद 44 में कहा गया है कि राज्य भारत के पूरे क्षेत्र में नागरिकों के लिए एक समान नागरिक संहिता सुरक्षित करने का प्रयास करेगा। चाहे संविधान निर्माताओं ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 44 में समान नागरिक संहिता कानून लागू करने का प्रावधान कर दिया था किंतु संविधान को लागू हुए 75 वर्ष बीत जाने के बावजूद भारत में अभी तक समान नागरिक संहिता लागू नहीं हो सकी है। भारत में अधिकतर व्यक्तिगत कानून धर्म के आधार पर तय किए गए हैं। भारत की स्वतंत्रता के बाद संविधान लागू होने के छठे दशक में हिंदुओं के लिये संविधान के अंतर्गत व्यक्तिक कानून बना दिये गये परंतु मुसलमानों और ईसाईयों के अभी भी धर्म पर आधारित व्यक्तिगत कानून बने हुए हैं। मुसलमानों के व्यक्तिगत कानून शरीयत पर आधारित हैं। अधिकांश धार्मिक समुदाय के कानून भारत के संविधान के अधीन बनाए जा चुके हैं। यह भी सच है कि जब भारत के संविधान के अधीन संसद में हिंदू विवाह अधिनियम और दूसरे पारिवारिक कानून बने तो कुछ तत्कालीन हिंदू तत्वों ने इन कानूनों का खुलकर विरोध किया था। फिर भी तत्कालीन संसद ने हिंदुओं के घोर विरोध के बावजूद उस समय के पारिवारिक मसलों को लेकर कानून पारित किए। उस समय हिंदुओं के विरोध को तो संसद झेल गई, किंतु

मुसलमानों के शरीयत कानून में बदलाव के विरोध को संसद नहीं झेल पाई और मजबूरन इस बारे में राज्य के नीति निदेशक तत्वों के अंतर्गत अनुच्छेद 44 में प्रावधान करना पड़ा। शायद उस समय संविधान निर्माता सोच रहे होंगे कि बाद में जब स्थितियाँ अनुकूल हो जाएँगी तो समान नागरिक संहिता लागू कर दी जाएगी। परंतु अब तक का इतिहास गवाह है कि इस संबंध में कभी भी स्थिति अनुकूल नहीं हुई बल्कि जटिल से जटिल और अधिक जिद्दी होती गई है। समय के इस मुहाने पर खड़े होकर कह सकते हैं उस समय यह समान नागरिक संहिता लाना अपेक्षाकृत सुगम था। उस समय देश का बंटवारा हो चुका था और जो मुस्लिम लोग पाकिस्तान में जाना चाहते थे जा चुके थे। उस समय भारत में शेष मुस्लिम लोगों को समझाना सुगम था अथवा उनके विरोध के बावजूद समान नागरिक कानून बनाना सुगम था। उस समय समान नागरिक संहिता न बनाकर बहुत बड़ी भूल कर दी गई और उस कारण से अब तक भारत की लाखों-करोड़ों मुस्लिम महिलाओं को संविधान प्रदत्त समानता के अधिकार से वंचित रखा जाना बहुत बड़ी भूल थी जिसके कारण उन्हें अब तक अन्याय का सामना करना पड़ रहा है। धर्म के नाम पर उनके साथ हो रहे अधर्म और सामाजिक अन्याय के लिए कौन जिम्मेदार है? इस समान नागरिक संहिता का विरोध करने वाले तत्व अब चिल्ला-चिल्ला कर कह रहे हैं कि वे भारत के संविधान को मानते हैं परंतु वह वहीं तक संविधान को मानते हैं जहाँ तक उनको फायदा होता है। जहाँ उनके दायित्व की बात होती है वह संविधान प्रदत अधिकार अधिकार चलाने लगते हैं और इस बात की उन्हें रत्ती भर भी परवाह नहीं कि इससे मुस्लिम महिलाएँ कितने बड़े अन्याय का शिकार होती आ रही हैं। कुछ वर्ष पहले जब सरकार ने तीन तलाक पर कानून बना कर पाबंदी लगाई थी तब भी मुस्लिम लोगों और निहित स्वार्थों ने इस का घोर विरोध किया था परंतु राजनीतिक मजबूत इच्छाशक्ति के सामने किसी की एक नहीं चली और किसी सीमा तक हमारी मुस्लिम बहनों की तलाक की पंद्रह शक्तियों से चली आ रही इस घोर अन्यायपूर्ण प्रथा से मुक्ति मिल गई है। वास्तव में एक मुस्लिम महिला सायरा बानो ने उच्चतम न्यायालय में एक याचिका दायर की कि मुस्लिम कानून के अंतर्गत आने वाली तीन प्रथाएँ तलाक, बिद्दत, बहु विवाह और निकाह हलाला असंवैधानिक है क्योंकि वह भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 21 और 25 में दिए गए महिलाओं के मूल अधिकारों का उल्लंघन है इसलिए इन प्रथाओं से मुस्लिम महिलाओं को मुक्ति दिलाई जाये। वर्ष 2017 में सायरा बानो के इस केस पर फैसला सुनाते हुए उच्चतम न्यायालय ने तीन तलाक को गैर कानूनी घोषित कर संसद को इस संबंध में 6 महीने के भीतर कानून बनाने को कहा था। उच्चतम न्यायालय की पाँच सदस्यीय संविधानिक पीठ में से 3-2 से फैसला सुनाया गया था। दो न्यायाधीशों ने तीन तलाक को असंवैधानिक करार दिया तो एक न्यायाधीश महोदय ने इसे पाप कहा था। संसद में तीन तलाक़ संबंधी विधेयक बिल दो बार प्रस्तुत हुआ परंतु राज्यसभा में यह आरंभ में पारित नहीं हो सका था। इसके बाद सरकार ने एक अध्यादेश लाकर इसे लागू किया जिसे संसद में 6 महीने के अंदर पारित करना था। बाद में वह विरोध, बहस और वाक आउट के बाद राज्यसभा ने भी इसे पारित कर दिया जिसके बाद लाखों मुस्लिम महिलाओं को सदियों से चले आ रहे तीन तलाक की अन्यायपूर्ण प्रथा से मुक्ति मिली परंतु समान नागरिक संहिता कानून न बन पाने के कारण अभी भी मुस्लिम महिलाओं के विरुद्ध अन्याय का सिलसिला समाप्त नहीं हुआ है।

समान नागरिक संहिता का प्रश्न कोई अचानक पैदा नहीं हुआ है। यह मुद्दा भारत की स्वाधीनता प्राप्ति से भी पहले का है। कह सकते हैं कि यह मुद्दा औपनिवेशिक भारत में तब पैदा हुआ जब अंग्रेज सरकार ने 1835 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी। किंतु बाद में अंग्रेजों ने मुस्लिमों से बैर मोल न लेने के लिए इस मुद्दे को छोड़ दिया। औपनिवेशिक काल में अंग्रेजों ने धर्म के आधार पर मुस्लिम, ईसाई और पारसी लोगों के लिए अलग-अलग कानून बनाएँ भारत में सभी मुसलमानों पर मुस्लिम पर्सनल लॉ शरीयत (एप्लिकेशन) एक्ट, 1939 लागू है इसके अंतर्गत विवाह, उत्तराधिकार, विरासत और दान संबंधी

विषय आते हैं। इसके अलावा, मुस्लिम विवाह विच्छेद अधिनियम, 1939 भी है जो मुस्लिम महिलाओं के संबंध में है। यह कानून भारत के स्वतंत्र होने से पहले बनाए गए थे जो अब तक चले आ रहे हैं।

स्वाधीनता संग्राम के दौरान नेहरू जी भी समान नागरिक संहिता के समर्थक थे। कांग्रेस के इतिहास से गुजरते हुए पता चलता है कि वर्ष 1930 में श्री जवाहरलाल नेहरू ने समान नागरिक संहिता का समर्थन किया था परंतु उस समय तत्कालीन वरिष्ठ नेताओं ने उनका जमकर विरोध किया था। बाद में स्वतंत्रता मिलने से पहले जब संविधान का निर्माण किया जा रहा था तो भी भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू, उनके समर्थक और महिला सदस्य समान नागरिक संहिता लागू करना चाहते थे। इस संबंध में तत्कालीन कानून मंत्री श्री बी आर अंबेडकर इस विधेयक को प्रस्तुत करने के प्रभारी मंत्री थे। उस समय नेहरू यह मानते थे एक समान नागरिक संहिता पूरे भारत के लिए जरूरी है। उस समय विवादों के कारण वह रुढ़िवादी तत्वों को इस बारे में राजी नहीं कर सके इसलिए उस समय समान नागरिक संहिता को लागू नहीं किया जा सका। परिणामस्वरूप इसके लिए ही अनुच्छेद 44 में इसके बारे में प्रावधान किया गया था।

भारत के स्वतंत्र हो जाने के बाद जब 26 जनवरी, 1950 को स्वतंत्र भारत का संविधान लागू कर दिया गया तो उसी छठे दशक में हिंदुओं की व्यक्तिगत विधियों में परिवर्तन कर नये कानून बना दिए गए। इनमें से पहला कानून था हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 इस के अंतर्गत अन्य प्रावधानों के साथ बहु-विवाह पर रोक लगा दी गई। हिंदुओं के लिए बहु-विवाह को अपराध बना दिया गया परंतु मुसलमानों को चार विवाह का प्रावधान अब भी कायम है।

हिंदुओं के लिए उस समय संहिताबद्ध किये गये चार क़ानून निम्नलिखित हैं:

1. हिंदू विवाह अधिनियम, 1955
2. हिंदू दत्तक ग्रहण एवं भरण पोषण अधिनियम, 1956
3. हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956
4. हिंदू अव्यस्कता एवं संरक्षकता अधिनियम, 1956

इन उपरोक्त कानूनों में समय समय पर जरूरी संशोधन भी किये जाते रहे हैं और आगे भी किये जाते रहेंगे। ऐसा नहीं है कि इन 75 वर्षों में मुस्लिम समाज में व्यक्तिगत कानूनों को लेकर शिकायतें न आई हो अथवा उनमें इन्हें ले कर असंतोष ना पैदा हुआ हो। इस संबंध में वर्ष 1985 में एक बहुचर्चित मामला शाहबानो का रहा है।

शाहबानो एक साधारण मुस्लिम महिला थी जिनका निकाह इंदौर के वकील मोहम्मद अहमद खान से 1932 में हुआ था। इस निकाह से इस दंपति को 5 बच्चे हुए। इस निकाह के 14 साल बाद उनके खाविंद मोहम्मद अहमद खान ने दूसरा निकाह कर लिया। दूसरे निकाह के बाद भी वे साथ रहते रहे। मुश्किल तब पैदा हुई जब अप्रैल, 1978 में 62 साल की उम्र में शाहबानो को मोहम्मद अहमद खान ने तलाक दे दिया। तलाक के वक्त मोहम्मद अहमद खान ने शाहबानो को 200 रुपये महीना देने का वादा किया लेकिन कुछ समय बाद उन्होंने इस खर्च को देने से इंकार कर दिया। तब शाहबानो ने गुजारा भत्ता पाने के लिये इंदौर की स्थानीय अदालत में एक केस दायर किया और दलील दी कि उसके पास उसके बच्चों और अपनी देखरेख करने के लिये आय का कोई साधन नहीं है इसलिये उसे अपने पति से गुजारा भत्ता दिलवाया जाये। यह मुकदमा उन्होंने भारतीय कोड आफ क्रिमिनल प्रोसीजर की धारा 125 के तहत दायर किया था और गुजारा भत्ते के तौर पर प्रति माह 500 रूपये मांगे थे। शाहबानो के पति मोहम्मद अहमद खान ने कोर्ट में दलील दी कि उसने मेहर के तौर पर निकाह के वक्त तय 5 हजार 400 रूपये की रकम अदा कर दी है और इसके बाद इस्लामिक कानून के मुताबिक उसकी तरफ से शाहबानो को गुजारा भत्ता देना आवश्यक नहीं है। कोर्ट ने इस दलील को मानने से इंकार कर दिया और अगस्त, 1979 को शाहबानो के पति को 25 रूपये प्रतिमाह गुजारा भत्ता देने के आदेश दे दिये। कोर्ट के इस फैसले पर मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय में शाहबानो द्वारा रिव्यू पिटिशन लगाई गई 1 जुलाई, 1980 को हाईकोर्ट ने रिव्यू पिटीशन पर शाहबानो के पक्ष में फैसला देते हुए गुजारा भत्ते में

इजाफा करते हुए इसे 179.20 रूपये कर दिया। शाहबानो के पति ने इस फैसले के विरूद्ध भारत की सर्वोच्च अदालत में अपील की। इसी अपील पर उच्चतम न्यायालय ने एक ऐतिहासिक फैसला दिया। शाहबानो के पति मोहम्मद अहमद खान ने उच्चतम न्यायालय में अपील में तर्क दिया कि उसने दूसरा निकाह कर लिया है जो कि इस्लॉमिक लॉ में जायज है और इस वजह से पत्नी के तौर पर वह गुजारा भत्ता देने के लिए बाध्य नहीं हैं। उच्चतम न्यायालय में इस मसले को सबसे पहले 3 फरवरी, 1981 को दो जजों की बेंच द्वारा सुना गया। इन दो जजों जिनमें मुर्तजा फजल अली और ए. वरदराजन शामिल थे। मामले की गंभीरता को देखते हुये इसे बड़ी बेंच को यह मामला सुनने के लिए रेफर कर दिया। इस मामले को 5 जजों की बेंच द्वारा सुना जाने के दौरान इस मामले में आल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड और जमीयत उलेमा-ए-हिंद पक्षकार बन गये। इस 5 जजों वाली बेंच में तत्कालीन मुख्य न्यायधीश न्यायमूर्ति चंद्रचूड़, रंगनाथ मिश्रा, डी.ए. देसाई, ओ. चिनप्पा रेड्डी और ई.एस. वेंकटरमैया शामिल थे।

इस मामले की सुनवाई करीब चार साल तक चलती रही और 23 फरवरी, 1985 को उच्चतम न्यायालय ने एकमत से हाईकोर्ट द्वारा दिये गये फैसले को सही ठहराया। शाहबानो मामले में फैसला सुनाते हुए उच्चतम न्यायालय ने कहा कि इस मामले में कोई विवाद नहीं है कि सीआरपीसी की धारा 125 जिसके तहत हाईकोर्ट ने शाहबानो के पति को गुजारा भत्ता देने का आदेश दिया है, वह मुस्लिमों पर भी लागू होती है। यह धारा किसी जाति, धर्म और वर्ण में कोई भेद नहीं करती है। सीआरपीसी की धारा 125 के तहत शाहबानो के पति को गुजारा भत्ता देना ही होगा। सीआरपीसी की धारा 125 पत्नी, बच्चों और अभिभावकों के संरक्षण के लिये लागू की गई थी। इस धारा में 5 सब सेक्शन हैं जो पुरूष या स्त्री को अपना गुजारा न करने में सक्षम पत्नी, बच्चों और वृद्ध माता को भत्ता देना अनिवार्य बनाता है। इसमें अधिकतम 500 रूपये गुजारा भत्ता दिया जा सकता है। शाहबानो केस में उच्चतम न्यायालय का फैसला आते ही कई मुस्लिम तबकों में गहरे गुस्से और रोष का असर देखने को मिला और कई संगठन इस फैसले के विरोध में सड़क पर उतर आये। कई मुस्लिम लोगों को इस बात की आपत्ति थी कि इस फैसले से उनके धार्मिक अधिकारों का हनन हो रहा है। 1985 में जब सुप्रीम कोर्ट ने यह फैसला सुनाया उस से एक साल पहले कांग्रेस इंदिरा गांधी की हत्या के बाद हुए चुनावों में भारी बहुमत से चुनकर आई थी। राजीव गाँधी भारत के प्रधानमंत्री बने थे। शाहबानो केस से उठे तूफान को शांत करने के लिए कई कांग्रेसी नेताओं ने प्रधानमंत्री राजीव गांधी को उच्चतम न्यायालय के फैसले को दो तिहाई बहुमत से बदल देने की सलाह दी।

राजीव गांधी ने उनकी बात मान ली और इस फैसले को पलटने के लिये संसद में द मुस्लिम विमन (प्रोटेक्शन आफ राइट्स आन डाइवोर्स) एक्ट, 1986 लाया गया। इस एक्ट में इस बात की व्यवस्था की गई कि इस्लामिक कानून के अनुसार मुस्लिम महिलाओं को तलाक की प्रक्रिया में केवल इद्दत के दौरान ही अपने शौहर की ओर गुजारा भत्ता दिया जायेगा। इस एक्ट को संसद द्वारा पास कर दिया गया और इसी के साथ कांग्रेस पर मुस्लिम तुष्टिकरण का एक कभी न मिटने वाला किस्सा हमेशा के लिये अस्तित्व में आ गया और मुस्लिम महिलाओं के साथ कुछ हद तक न्याय होता होता रहा गया। मुस्लिम तुष्टिकरण का यह आरोप कोई पहली बार नहीं लगा था। जब संविधान में राज्य के नीति निदेशक तत्वों में अनुच्छेद 44 में समान नागरिक संहिता जोड़ा गया था और बाद में जब देश के प्रथम विधि मंत्री डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने नेहरू केबिनेट से त्यागपत्र दिया था तो उन्होंने तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू के बारे में इस त्यागपत्र में अन्य बातों के साथ कहा था कि प्रधानमंत्री का पूरा ध्यान मुसलमानों की हित सुरक्षा में लगा रहता है। मैं इस पर कोई आपत्ति नहीं कर रहा हूँ, किंतु क्या केवल भारत में मुसलमानों के हितों की ही सुरक्षा की जानी है क्या केवल वही भारत में रहते हैं भारत के अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति का क्या, जबकि उनके हितों को मुसलमानों के हितों से अधिक ध्यान दिए जाने की जरूरत है। देश की आज़ादी के बाद से समान नागरिक संहिता या यूनिफ़ॉर्म सिविल कोड की माँग चलती

रही है। इसके तहत इकलौता क़ानून होगा जिसमें किसी धर्म, लिंग और लैंगिक झुकाव की परवाह नहीं की जाएगी।

उच्चतम न्यायालय न केवल वर्ष 1985 में शाहबानो मामले में बल्कि 1995 में सरला मुद्गल मामले में और पुनः वर्ष 2019 में पाउलो काटिन्हो बनाम मारिया लुईज़ा वेलेंटीना परेरा मामले में भारत सरकार से समान नागरिक संहिता लागू करने के लिए कह चुका है। लेकिन यह भी एक सच्चाई है कि एक समान क़ानून की आलोचना देश का हिंदू बहुसंख्यक और मुस्लिम अल्पसंख्यक दोनों समाज करते रहे हैं। जहाँ तक भारतीय जनता पार्टी का प्रश्न है उसके चुनाव घोषणा-पत्र में यह हमेशा वैचारिक मुद्दा रहा है। उनके चुनाव घोषणा पत्र में दो और चुनावी मुद्दे थे। एक राम जन्मभूमि का और दूसरा कश्मीर से अनुच्छेद 370 हटाने का। यह दोनों चुनावी वायदे पूरे हो गए हैं और अब केवल यही चुनावी मुद्दा शेष है। देश में समान नागरिक संहिता की मांग अब काफी जोर पकड़ चुकी है। वैसे भी जब भी देश में किसी राज्य में चुनाव होता है तो भारतीय जनता पाटी उस समय यह जनता को याद दिलाती है वह राज्य में शीघ्र ही समान नागरिक संहिता लागू करेगी। उसके लिए एक कमेटी गठित की जायेगी और उस कमेटी की सिफारिशों के अनुसरण में समान नागरिक संहिता लागू की जायेगी। अब तक उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश, हिमाचल, गुजरात, कर्नाटक के चुनावों के समय यह घोषणा की गई थी। गुजरात, उत्तराखंड में इस पर विचार करने के लिए कमेटी गठित कर दी गई थी। उत्तराखंड मुख्यमंत्री श्री धामी ने घोषणा कर दी है कि समान नागरिक संहिता का प्रारुप तैयार होने वाला है और शीघ्र ही उसे राज्य में लागू किया जाएगा। सबसे पहले, यह समझना महत्वपूर्ण है कि भारत जैसे विविध धार्मिक और सांस्कृतिक पहचान वाले देश में समान नागरिक संहिता का कार्यान्वयन एक अत्यधिक संवेदनशील मुद्दा है। इसे लागू करने के लिए लोगों को विश्वास में लेना जरूरी है कि समान नागरिक संहिता किसी समुदाय के अधिकारों और विश्वासों का उल्लंघन नहीं करता है। इस संबंध में, सरकार को धार्मिक नेताओं और समुदाय के प्रतिनिधियों सहित सभी लोगों से उनकी चिंताओं को दूर करने और आम सहमति पर पहुँचने के लिए रचनात्मक बातचीत करनी चाहिए। समान नागरिक संहिता के कार्यान्वयन के लिए एक मजबूत राजनीतिक इच्छाशक्ति और अनुकूल वातावरण की भी आवश्यकता है। भारत में राजनीतिक माहौल अत्यधिक ध्रुवीकृत है, भिन्न-भिन्न राजनीतिक दल अक्सर अपने एजेंडे को आगे बढ़ाने के लिए धर्म और पहचान की राजनीति का उपयोग करते हैं। सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि समान नागरिक संहिता यूके कार्यान्वयन का उपयोग राजनीतिक लाभ के लिए एक उपकरण के रूप में नहीं करे और यह गैर-पक्षपातपूर्ण और समावेशी तरीके से किया जाये क्योंकि इसे लागू कर की ही सम्पूर्ण देश में लैंगिक न्यायए सामाजिक समानता और राष्ट्रीय एकता को सुनिश्चित किया जा सकता है। इस मुद्दे पर जनता को शिक्षित और संवेदनशील बनाने के लिए सरकार, नागरिक समाज और मीडिया की ओर से एक ठोस प्रयास की आवश्यकता होगी। वैसे देखा जाये तो विश्व के कई देशों में समान नागरिक संहिता लागू है और इन देशों में पाकिस्तान, बांग्लादेश, मलेशिया, तुर्किये, इंडोनेशिया, सूडान, मिस्र, अमेरिका, आयरलैंड, आदि शामिल हैं। इन सभी देशों में सभी धर्मों के लिए एकसमान कानून है और किसी धर्म या समुदाय विशेष के लिए अलग कानून नहीं हैं। भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है और उस पर विडंबना यह है यहीं पर की समुदायों के अभी भी धर्म आधारित व्यक्ति विधियाँ हैं। समान नागरिक संहिता के संबंध में भारत में व्यापक रुप से बहस हो रही है। विधि आयोग द्वारा जनता की आमंत्रित राम भी अगले महीने तक प्राप्त हो जायेगी। अगर भारत सरकार लोक सभा में अगले सत्र में समान नागरिक संहिता पर प्रस्तावित विधेयक प्रस्तुत करती है तो अच्छा यह रहेगा कि उस पर और व्यापक विचार विमर्श के लिये उसे संसदीय समिति को प्रेषित किया जाये। इस तरह विपक्ष की संभावित मांग भी पूरी होगी और तब शायद उस विधेयक को राज्यसभा में पारित कराना सुगम होगा। यह तो मान कर ही चलना होगा कि इस कानून को बनाना एक चुनौती है परंतु देश के लिए हितकारी नियम कायदे कानून तो बनने ही चाहिए।

गिरीश पंकज व्यंग्य ग़ज़लें एवं कविताएँ

व्यंग्य के साथ ग़ज़ल कहना भी उनका एक जूनून है। गंभीर ग़ज़लों के साथ-साथ गिरीश पंकज व्यंग्य गज़लें भी कहते रहे है। प्रस्तुत हैं उनकी चुनिन्दा ग़ज़लें–

1.

वो रिश्वत खूब लेता है मगर सबको पचाता है
सुना है शख्स रोज़ाना ही त्रिफलाचूर्ण खाता है

बिना खाए बेचारा एक पल भी रह नहीं सकता
न हो रिश्वत का मौक़ा तो सभी की जान खाता है

यहाँ जो भ्रष्ट है जितना वही ईमान दिखला,
जो 'घपलू' है, सभाओं में वही 'पपलू' बिठाता है

वो हीरोइन भी गाँधीवाद के रस्ते पे चलती है
उसे तन पे अधिक कपड़ा नहीं बिलकुल सुहाता है

सुना है उसका सौहर है बड़ा अफसर तभी तो जी
हमेशा घर पे मैडम के मुफ्त का माल आता है

वो बचपन से हमेशा झूठ कहने में ही माहिर था
वो अपनी बस्ती का अब तो बड़ा नेता कहाता है

हमेशा लूटने की इक कला में वो लगा रहता
कभी घर पर कभी इज्ज़त पे डाका डाल आता है

वो है इक 'आदमी' जिसको यहाँ सब 'आम' कहते हैं
मगर वो 'आम' तक भी गर्मियों में खा न पाता है

है पंकज नाम उसका आम है इंसान बेचारा
जो अक्सर टूट जाते हैं वही सपने सजाता है।

2.

यहाँ-वहाँ अब छाये दिखते सारे तथाकथित
भरे हुए हैं सत्ता के गलियारे तथाकथित

जाने कितने सपनों की हत्याएं कर डालीं
घूम रहे हैं मस्ती में हत्यारे तथाकथित

नकली सिक्के यहाँ चल रहे ये कैसा बाज़ार
असली हो गए हैं अब तो बेचारे तथाकथित

हमने तुमको प्यार किया पर तुम तो बदल गए
क्या मालूम था निकलोगे तुम प्यारे तथाकथित

मुझ तक आने से पहले उजियारे लुप्त हुए
भेजे थे चन्दा ने हमको तारे तथाकथित

बहुत दिनों तक खून के आँसू रोई सच्चाई
आखिर इक दिन वही हुआ कि हारे तथाकथित।

3.

कभी भी बंदरों के हाथ में पत्थर नहीं देते
बहुत जो मूर्ख होते हैं उन्हें उत्तर नहीं देते

हमेशा मौन रहना ही यहाँ अच्छी दवाई है
जो ज्ञानी हैं यहाँ उत्तर कभी कह कर नहीं देते

यहाँ जैसा जो करता है सदा भरता है वैसा ही
ये ऐसी बात है जिसको कभी लिख कर नहीं देते

यही इतिहास कहता है ज़रा तुम होश में रहना
बहुत अय्याश लोगों को कभी लश्कर नहीं देते

बड़े मासूम लगते हैं अगर बच पाओ बच लेना
ये हत्यारे कभी बचने का भी अवसर नहीं देते

यहाँ तो अब अदब में घुस गए हैं लोग सामंती
करो इनको नमस्ते ठीक से उत्तर नहीं देते

कोई तो खोट होगी परवरिश में क्या पता पंकज
जिन्हें पाला वही परिणाम यूं बदतर नहीं देते

गिरीश पंकज : कविताएँ

1. प्रेम की तलाश

मुझे तलाश थी प्रेम की।
तभी एक दिन सुना एक सज्जन को
एक मंच पर दे रहे थे व्याख्यान
'प्रेम ही जीवन है, जीवन ही प्रेम है।'
हमने सोचा मिलकर आएँ
इस प्रेमीजीव से।
उनके घर पहुँचा तो वे पत्नी को पीट रहे थे
अपने बच्चे को दे रहे थे गालियाँ।
पड़ोसी ने शिकायत की कि अक्सर
हम से लड़ता रहता है ये आदमी बेमतलब।
लौट आया मैं
नहीं मिल सका उस महापुरुष से।
फिर एक दिन किसी और जगह
एक अन्य महापुरुष ज्ञान बांट रहे थे
प्रेम ही जीवन है जीवन ही प्रेम है।
हम पहुँच गए उनसे मिलने
लेकिन वे भी पूर्व महापुरुष की परंपरा में ही
शरीक नजर आए।
जब जब किसी ने कहा
प्रेम ही जीवन है, जीवन ही प्रेम है
तब-तब वही आदमी घनघोर रूप से
प्रेम विरोधी निकला लेकिन
अंततः एक दिन पूरी हुई मेरी तलाश
मुझे मिल ही गया प्रेम
वह चुपचाप खामोश पड़ा हुआ था
एक शब्दकोश में
अनेक पर्यायवाची शब्दों के साथ।

2. आज का दिन बहुत अच्छा बीता

आज का दिन बहुत अच्छा बीता
किसी लड़की से नहीं हुआ बलात्कार
नहीं छेड़ी गयी कोई युवती
किसी चौराहे पर
फब्तियाँ भी नहीं कसी गयीं किसी पर
नहीं बनाया किसी ने किसी का 'एमएमएस'
नहीं मारा पुलिस ने किसी औरत को थप्पड़
नहीं हुए सड़कों पर प्रदर्शन
आज का दिन बहुत ही अच्छा बीता
पकड़े गए रिश्वतखोर अफसर
रंगरेलियाँ मानते नेता
ब्ल्यू फिल्म देखते साधू
कमाल का रहा आज का दिन
कि एकाएक घट गयी महँगाई
आदमी ने चैन से रोटी खाई
नहीं हुयी कोई सड़क दुर्घटना
एक बच्चा पार कर गया सड़क
बिलकुल साबूत/कुछ नहीं हुआ उसको
आज का दिन बहुत अच्छा बीता
आज मैंने देखा
बहुत अच्छा सपना देखा
आज का दिन बहुत अच्छा बीता।

3. यह लद्दाख हमारा है...

हिम आच्छादित सुंदर प्यारा, यह लद्दाख हमारा है।
महादेश का रक्षक न्यारा, यह लद्दाख हमारा है॥

सियाचिन, कश्मीर, कारगिल, सब अपना चौबारा है।
हर भारतवासी भी मिल कर, लगा रहा यह नारा है।

बुरी नज़र न कोई डाले, हमें किसी से बैर नही।
पर जो कुटिल दृष्टि डालेगा, समझो उसकी खैर नहीं।
जहाँ श्योक औ सिंधु की धारा, यह लद्दाख हमारा है।
महादेश का रक्षक न्यारा, यह लद्दाख हमारा है॥

बर्फीले पर्वत हैं प्रहरी, सैनिक अपने रक्षक हैं।
दुश्मन अगर कभी आया तोए ये सब उसके भक्षक हैं।
गलवान, पेंगोंग पुकारा, यह लद्दाख हमारा है।
महादेश का रक्षक न्यारा यह लद्दाख हमारा है॥

खतरों से जो खेल रहे हैं, वे सब अपने साथी हैं।
वे है अपने दीपक सुंदर, हमसब उनकी बाती हैं।
प्रेम से जिसने सदा पुकारा, यह लद्दाख हमारा है।
महादेश का रक्षक न्यारा यह लद्दाख हमारा है॥

दूर खड़ा है वहाँ हिमालय, जहाँ से गंगा उतरी है।
जिसने हमको अमृत बांटा, निर्मल, पावन गहरी है।
नदिया, पर्वत, अपनी धरती, सब ने हमें सँवारा है।
महादेश का रक्षक न्यारा यह लद्दाख हमारा है॥

कितने सुंदर लोग यहां के, सद्भावों से भरे हुए।
मेहमानों को देखा तो फिर, अन्तस् इनके हरे हुए।
बफीला शीतल मन जिनका, हरदम ही उजियारा है।
महादेश का रक्षक न्यारा यह लद्दाख हमारा है॥

हिम आच्छादित सुंदर प्यारा, यह लद्दाख हमारा है।
महादेश का रक्षक न्यारा, यह लद्दाख हमारा है॥

टूटते सपने, मरता शहर पुस्तक से

तुम्हें बाँध नहीं पाया

शब्दों में बाँधना
चाहता था तुम्हें
पर मुश्किल है
जैसे बाँधना
सूरज की रोशनी को
चाँद की चाँदनी को
धरती के गर्भ को
आकश के विस्तार को
पानी में आग को
गुँजन में राग को
बरसात में फुहार को
मन के प्यार को
तुम्हें भी बाँध नहीं पाया।

के.पी.सक्सेना 'दूसरे' की ग़ज़ल

गजलनुमां

तमन्ना थी गुज़रे खुशनुमाँ, इक शाम दिल्ली में।
जिधर देखा दिखे सब खास ही, उस आम दिल्ली में॥1

जुबां भी हिचकिचाए है, जिन्हें इंसान कहने में,
न जाने कैसे-कैसे आ गए, हैवान दिल्ली में॥2

न भूले से जिक्र आया, कभी उनका शहीदों में,
दफन जिनकी हुई सांसे, बिना इल्जाम दिल्ली में॥3

न जाने क्यों नहीं मुंसिफ़, चढ़ाता उनको सूली पर,
दरिंदे जा रहे बढ़ते, सुबह से शाम दिल्ली में॥4

'निठारी' से शहर होंगे, 'अटारी' से कहर होंगे,
अगर सोता रहा इंसाफ़, लंबी तान दिल्ली में॥5

अगर दी सांप की योनी, विषैले दांत भी देना,
सुना है इस बिना पर भी, मिले सम्मान दिल्ली में॥6

न जाने कौन सा झंडा, चढ़े इस बार गुम्बद में,
सभी आए हैं तलवारों पर, धरकर सान दिल्ली में॥7

महज़ बस आंकड़े बनकर, हुई सुनसान वादी है,
हरक़त कायराना, छप गया फरमान दिल्ली में॥8

बदलने से यहाँ टोपी, बदल जाती है कुर्सी भी,
बंधी रहती है इक धागे से, सबकी जान दिल्ली में॥9

यहीं मक्का मदीना है, यहीं हैं चर्च गुरूद्वारे,
सियासत के मेरे यारों, हैं चारों धाम दिल्ली में॥10

गलत मतलब लगाए थे हमारी चुप का क्या कहिए,
बहस का बन गए मुद्दा, हमारे राम दिल्ली में॥11

न दिल्ली में धमाके हों, कराची में न बम फूटे,
चलो मिलकर बना ले, एक हम सुल्तान दिल्ली में॥12

प्रतिभा सिंह की कविताएँ

1. भीड़ का हिस्सा

वे नहीं चाहते
भीड़ का हिस्सा बनना
नफरत है उन्हें भीड़ से
जिसकी शक्ल नहीं होती

वे बनना चाहते हैं खास
जुगत लगाये रहते हैं
भीड़ के कारण
खास बनने का

भीड़ के न होने पर
बना नहीं जा सकता खास

खुद को महत्वहीन
न समझते हुए
मैं बन जाता हूँ
भीड़ का हिस्सा
उन्हें खास बनाने के लिए।

2. दरकते नहीं सिर्फ पहाड़

हिनहिनाते हुए तीव्र गति से
दौड़ रहे हैं घोड़े
प्रगति के,
टापों की आवाज से
सहमे हैं रहवासी
प्रवेग के आघात से
दरक नहीं रहे सिर्फ पहाड़
दरक रहे हैं हृदय
न जाने कितने
अंतःकरण में मची है खलबली
पनीली आँखों में समाया है दर्द
हो गये कितने रंक, राजा से
लगा है जुर्माना स्वर्ग में रहने का
उनके सपनों की
ले ली गई है बलि

दिखा नहीं पाएँगे
अतीत की रेत पर छोड़े
पुरखों के पदचिन्हों को
आशंकित हैं कहीं
मासूम किलकारियों का भविष्य
बनते सुरंग के घुप्प अंधेरे में
न समा जाए
सुनी जा सकती हैं आर्तनाद
ठिकाने से विछोह की

क्या सुनेगा कोई
गिड़गिड़ाहट उनकी
युक्ति निकल पायेगी
दरारों को पाटने की
या कि
दफन होता जायेगा वजूद
और
मजबूर होते चले जायेंगे
पहाड़ सी जिंदगी
जीने को दर बदर।

मुस्कुराहट और खुशी चमत्कारी कार्य करती हैं।

***

शक्तिशाली और बड़ हृदय के कारण समुद्र बड़ा है।

***

बिना पेड़-पौधाके वाला घर रसोई रहित घर के समान है।

***

हद से ज़्यादा बोझ रखेंगे तो हाथी भी गिर जाएगा।

जगदीश चंद चौहान की कविताएँ

इतिश्री

सोचता हूँ मैं भी
कोई दुखभरा गीत गाऊँ
ग़मगीन धुन बजाऊँ
लंबी सी तान लगाऊँ
दर्दभरी दासताएँ सुनाऊँ
नासूर बने ज़ख्म
किसी को दिखाऊँ
अत्याचार और उत्पीड़न
हाकिमों तक पहुँचाऊँ।
मगर क्या बताऊँ
सब गूंगे बहरे हैं यहाँ
मैं किसके लिये गाऊँ
अंतर्मन की व्यथा
उनतक कैसे पहुँचाऊँ
पत्थर की दीवारों से
कबतक सिर टकराऊँ।
अदना सा इंसान हूँ
आखिर टूट जाता हूँ
मन की संतुष्टि के लिये
बस धीरे-धीरे गाता हूँ
मन ही मन गुनगुनाता हूँ
अपने कर्तव्यबोध की
इतिश्री पा जाता हूँ
और फिर शांत होकर
चादर तान सो जाता हूँ
क्योंकि शायद
यही यहाँ का दस्तूर है
यहाँ हर कोई मजबूर है।

कौन हैं ये...

देश के अन्नदाता को
ये कौन बरगलाता है
कौन है जो बर्षों से उसे
झूठे सब्जबाग दिखाता है

शतरंज की विसात पर
अपने मोहरे उसे बनाता है
उसके मजबूत कन्धों से
ये कौन बंदूक चलाता है
शोषित को शोषित कर
उसका हमदर्द बन जाता है
कौन उसे उकसाकर
चौन की बंसी बजाता है
किसी अनजान भय का
बनावटी डर दिखाता है
ये कौन है जो उसकी
खून पसीने की कमाई
उसके हिस्से की मलाई
कैसे यूँ चट कर जाता है

जबतक तू जानेगा नहीं
हक़ीक़त पहचानेगा नहीं
कोई तुम्हें बहकाता रहेगा
अदृश्य भय दिखाता रहेगा

तुम्हारे नाम से अपनी
राजनीति चमकाता रहेगा
अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये
तुझे सड़कों पर सुलाता रहेगा।

कर्नल प्रवीण त्रिपाठी की कविताएँ

1. बालसुलभ अभिलाषा

मैं जो कुछ भी चाहूँ अम्मा, मुझको वही दिला दो न।

आसमान में जितने तारे, दिन होते छिप जाते हैं।
रोज भोर से संध्या तक तो, सूर्य उजाला लाते हैं।
पर स्वभाव से बड़े गर्म वह, आँख मिलाना मुश्किल है,
सारा उजियारा करके, वह ओझल हो जाते हैं।
मेघों के साये में चलकर, उनसे हमें मिला दो न।
मैं जो कुछ भी चाहूँ अम्मा, मुझको वही दिला दो न...

चंदा मामा शांत सलोने, नये-नये करतब करते।
कभी नहीं वह स्थिर होते, रोज-रोज घटते-बढ़ते।
वह स्वभाव से तो शीतल हैं, लुका-छिपी में पर माहिर,
मामा होने के कारण ही, बच्चों के मन में बसते।
अबकी बार गगन में आयें, उनको वहीं बिठा दो न।
मैं जो कुछ भी चाहूँ अम्मा, मुझको वही दिला दो न...

रात अँधेरी जब भी होती, कितने तारे दिखते हैं।
जितनी अधिक निशा हो काली, उतने ज्यादा खिलते हैं।
आँख-मिचौली क्या कम करते, दूर भागते वे अक्सर,
बैर रोशनी से है शायद, उससे डर कर छिपते हैं।
कुछ तारों को साथ रख सकूँ, ऐसी युक्ति सिखा दो ना
मैं जो कुछ भी चाहूँ अम्मा, मुझको वही दिला दो न...

मातु लाड़ला जो भी चाहे, जल्दी से वह ला दो न।
मैं जो कुछ भी चाहूँ अम्मा, मुझको वही दिला दो न।

2. बदलाव बचपन से पचपन तक

बचपन में उँगली पकड़, सिखलाते सब तात।
क्या अच्छा क्या है बुरा, सही सिखाते बात।
सही सिखाते बात, बुरा अच्छा पहचानो।
गलत सही में भेद, फर्क करना तुम जानो।
कहते राह कुमार, हमें पहनाते अचकन।
पाकर पितु का प्यार, बना मनभावन बचपन॥

समय साथ बदला सकल, इस जग में व्यवहार।
लुप्त हुई आत्मीयता, बदला घर-संसार।
बदला घर-संसार, भूलते नहीं विगत को।
बदले सब संबंध, रही अब बात नहीं वो।
सींचे रिश्ते आज, सहेजें हम सब बचपन।
दें न बालपन त्याग, उम्र हो जाये पचपन॥

पचपन हो या साठ हो, बचपन सकें न भूल।
संतति हो या तात हो, बात यही है मूल।
बात यही मूल, भूमिका बदला करती।
इसे न दें यदि तूल, शांति जीवन में रहती।
यह भी सच्ची बात, बसे मन सबके बचपन।
इसे पोष दिन-रात, बिताये वर्ष ये पचपन॥

3.

शिक्षा देने वाला गुरु ही, केवल एक सहारा है।
शिक्षक के चरणों में बसता, यह भूमंडल सारा है।

घर में तो सब कुछ कुछ सीखें, गुरु विद्या भंडार भरे।
शिक्षक की संगत पा बालक, शिक्षित हो नव कार्य करे।
शिक्षक के सम्मुख नतमस्तक, होता जग यह सारा है।

अनगढ़ माटी के लोंदे को, गुरु ही ढाले सांचे में।
ज्ञान ध्यान छेनी से छांटे, शिष्य बिठाये खांचे में
दोष न रह जाए शिष्यों में, गुरु ने सदा विचारा है।

केवल ज्ञान नहीं वो देते, ऊंच नीच भी सिखलाते।
कैसे निर्भय होकर जीना, भेद शिष्य को बतलाते।
बाधाओं से डरे बिना नित, बहती निर्मल धारा है।

सीख मिली जो शिक्षक गण से, जीवन का उद्धार करे।
अनुभव के बल पर ही मानव, विपदा से दो चार करे।
गुरु के बिना भँवर में हमको, मिलता नहीं किनारा है।

जन्म मरण में फँसे जीव का, गुरु ही तारन हारा है।
शिक्षक के चरणों में बसता, यह भूमंडल सारा है।

डॉ. संजीव कुमार की कविताएँ

आईना

याद आए सभी बीते दिन
याद आई वो सारी ख़ुशी।
याद आईं ख़ुशी की घड़ी
आईना हो गई ज़िंदगी॥

हाँ वो बचपन के दिन
वो खिलौनों के दिन
खेल के दाँव सब
याद आते हैं अब
खिलखिलाती है मन में ख़ुशी।
आईना हो गई ज़िंदगी॥

दोस्ती, यारियाँ
ख़ुशियाँ, दुश्वारियाँ
मिलना और छूटना
जुड़ना और टूटना
याद आती है हर वो घड़ी।
आईना हो गई ज़िंदगी॥

हाँ वो ख़्वाबों के दिन
वो किताबों के दिन
मीठी परियों के दिन
मद भरे पल औ' छिन
कैसा कैसा सफ़र वो हँसीं।
आईना हो गई ज़िंदगी॥

प्यार का सिलसिला
साथ कोई मिला
दुनिया भी बस गई
कुछ कसक सी रही
पर मिला न वो कारण कभी।
आईना हो गई ज़िंदगी॥
कारवाँ चल पड़ा
सब जहाँ चल पड़ा
मैं भी चलता रहा
सब निकलता रहा
रुक गई फिर भी क्यों बंदगी।
आईना हो गई ज़िंदगी॥

दिल में सबकी ख़ुशी
हो तसल्ली भली
झूठे सब मायरे
अधखुले दायरे
कोई दिल से न पूछा कभी।
आईना हो गई ज़िंदगी॥

अब पहले पटल
पर हुए हैं अटल
कुछ सुहाने से पल
कुछ रूहानी गजल
गीतों में ढल गई बेबसी।
आईना हो गई ज़िंदगी॥

कोई उन्हें उठाये तो

उनकी सोच थी—
कि गिरे को उठाना चाहिए।
जो नीचे के पायदान पर खड़े हों
उन्हें ऊपर लाना चाहिए।

ऊपर खड़े होते—
उन्होंने झुक कर ऊँगली बढ़ाई
नीचे के पायदान से—
उसे ऊपर उठाने के लिए—

पता नहीं क्या हुआ
कि अब उन्हें इंतजार है
कि कोई उन्हें उठाए तो—

मैं और मेरा भाई

बीते दशकों में
कितना आगे बढ़े हैं हम।
अब पुरानी बातें–

मैं और मेरा भाई–
पहले रोज सवेरे मिलते थे
जागते ही बिस्तर पर
रहते थे एक ही घर में
खाते थे एक ही थाली में
खेलते थे एक ही चौपाल में।

फिर हम मिलने लगे
अपने घरों से बाहर निकलने पर
रास्तों में, खेतों में
खलिहानों में।

अब मिलते हैं
कोर्ट-कचहरी में
या थानों में

आखिरकार हमारी सीमाओं का
विस्तार जो हुआ है।

तुम आए

तुम आए
तो हमें अच्छा लगा।

तुमने हमसे बातें की
तो हमें अच्छा लगा।

तुम्हें दुनिया भर की कितनी खबर होती है।
कितना ज्ञान है तुम्हें
सब बातों का

मुझे अच्छा लगता है
क्योंकि इन सब बातों से
तुम हमको
हमीं से दूर कर रहे हो।
और हमें डर नहीं लगता
अकेलेपन से।

पर तुम्हारे जाने के बाद
तुमसे डर लगता है।

फिर भी मन कहता है–
कि 'तुम कब आओगे?

समय का परिवर्तन

समय का परिवर्तन
कैसा जादू लगता है?
जो आज अपना है
कल पराया हो जाता है?

जिसके लिए अर्पण का दो
तन, मन और धन
वह केवल
सवालों का ढेर बन जाता है।

क्यों माप तौल में उलझा रहता है मन
खाली हाथों जाने वाले का
यह कैसा मोह-
कैसा भ्रम
सारे ब्रह्मांड को
अपने अधिकार में
लेने की आतुरता
कैसा है जादू यह
माया का॥

डॉ. प्रणव भारती की कविताएँ

1.

प्रणव से प्रणव की मुलाकात हो तो
रहें दोनों ख़ामोश और बात हो तो
कबीरा उतर जाए चुपके से दिल में
रुहानी अगर प्रेम बरसात हो तो

न जन्मों का बंधन न तन आरजू हो
न हीरे न मोती फ़कत बंदगी हो
चुरा लूँ जो ख़ुद से खुदी को यूँ चुपके
अमर प्रेम की ही अगर बात हो तो

ये पहरों की दुनिया ये फेरों
अगर पा सकूँ मैं यहाँ मोक्ष तो फिर
न कोई कसक हो प्यार फ़क़त हो
ये शाश्वत है नियम अगर ज्ञात हो तो

मैं जी जाऊँ सबके दिलों में हमेशा
मैं आँखों के आँसू अगर पी सकूँ तो
के काग़ज़ की कश्ती भी पार करेगी
यदि दिव्यता की मधुर रात हो तो

ये धरती हमारी हमें जाँ से प्यारी
ये ब्रह्मा की विष्णु की शिव की दुलारी
ये रचना उन्हीं की उन्हीं का सहारा
यदि सबके सिर पर वही हाथ हो तो

न जाने कितने दिवस के हैं वासी
सभी हों आनंदित क्यों हो उदासी
सभी झूमे गाएँ जब तक हैं साँसें
जितने भी दिन का यहाँ साथ हो तो।

2.

पाँच तत्व का सुघड़ खिलौना
कितना सुंदर, चतुर सलोना
माटी की काया है जानें
अहं भरी गाँठें पहचानें।
फिर भी जीवन की हर गति में
कुछ न कुछ हम खोते रहते
साँसों में आहें भरकर फिर
जीवन भर हम रोते रहते
हम नाटक में फँसते रहते

प्रेम और संवेदन मानो
फँसे हुए हैं मकड़ी जैसे
तृष्णा के हिंडोले चढ़कर
राग द्वेष में रंगते ऐसे
जैसे 'पट्टा' अमर लिखाकर
लेकर आए हैं ऊपर से
स्वप्न धूसरित होते रहते
हम नाटक में फँसते रहते

जीवन की मरुभूमि में जब
चलते-चलते धंसते पाँव
स्मृतियाँ ले जाती हैं ढोकर
छाले पड़ जाते हैं पाँव
दूर कहीं टीले दिखते हैं
दिखता पथरीला-सा गाँव
विगत कर्म से आहत होते
स्मृति के फन डँसते रहते
हम नाटक में फँसते रहते।

परिश्रम की चादर में सफलता का सूत होता है।

***

रेगिस्तान में रहने वाले को भी चाहिए कि वह तैरना सीखे।

***

रिश्तेदारों को गुप्त बात बताना अपने घर में आग लगाना है।

***

डॉ. दामोदर खड़से की कविताएँ

1. तुम लिखो कविता

तुम लिखो कविता
और मैं देखूं जी भर कर कलम,
स्याही और कागज पर
गुनगुनाता जिंदगी का
अनगाया गीत ण्ण्ण
सफर के बहुत पीछे
कोई गुमनाम मोड़
और इमली के पेड़ पर
कटी हुई पतंग
कबूतरों का जत्था
राह से उड़ती धूल
मुड़-मुड़कर ठिठुरते कदम लहराता हाथ
कुछ-कुछ करीबी
कुछ-कुछ दूरियाँ
भीतर-बाहर उतराते
आंखों की डोरों में
किए अनकिए की उलझन आत्महंता सिसकन
कैसे बरगलाए कोई
अपनी ही आवाज...
तुम लिखो कविता!
और मैं देखूं
तुम्हारी अंगुलियों में
एक बेचौन कलम
मैं देखूं
शब्दों में नहाई पुतलियां आंखों में बहुत गहरे
अर्थों की कतारें
माथे पर उठती
सागर-सी हिलोरे...
तुम लिखो कविता
और मैं देखूं तुम्हें
कविता में बदलते हुए!

4. कल्पवृक्ष

कविता
भीतर से होते हुए
जब शब्दों में ढलती है
भीतरी ठिठुरन ऊष्मा के स्पर्श से
प्राणवान हो उठती है
ज्यों थकी हुई प्रतीक्षा
 बेबस प्यास
 दुत्कारी आशा
 अनायास ही
किसी पुकार को थाम लेती है शब्द सार्थक हो उठते हैं
और एकांत भी
सानिध्य से भर जाते हैं
 कविताए
 कल्पवृक्ष है!

3. अमृत का जन्म

रिश्ते रोज बदलते हैं
सृष्टि की तरह...
कोई नहीं रह पाता वैसा
जैसा जब कोई
जिसे चाहेएजिस समय!
फिर भी...
कभी-कभी
जिस तरह सृष्टि बुनती है
कोई खूबसूरत फूल
और बोती है उसमें श्रेष्ठ गंध होता है कभी-कभी
रिश्तों में भी ऐसा कहीं
तब अमृत का जन्म होता है!

साहित्य समाचार-1

कविता ही सामान्य जन को सर्वाधिक प्रभावित करती आ रही है सहस्राब्दियों से : डॉ. संजीव कुमार

वरिष्ठ कवि एवं संपादक डॉ संजीव कुमार का हुआ सारस्वत सम्मान

विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन की हिंदी अध्ययनशाला एवं पत्रकारिता और जनसंचार विभाग द्वारा वरिष्ठ कवि एवं संपादक डॉ. संजीव कुमार, नई दिल्ली के काव्य पाठ और लेखक से संवाद कार्यक्रम के साथ उनके 'सारस्वत सम्मान' का कार्यक्रम आयोजित किया गया। अध्यक्षता कुलानुशासक एवं विभागाध्यक्ष प्रो शैलेंद्र कुमार शर्मा ने की। इस अवसर पर वरिष्ठ कवि श्री संतोष सुपेकर एवं डॉ मोहन बैरागी ने अपनी रचनाओं का पाठ किया।

कार्यक्रम को संबोधित करते हुए वरिष्ठ रचनाकार डॉ. संजीव कुमार, नई दिल्ली ने अपनी महत्त्वपूर्ण कविताओं का पाठ किया। उन्होंने कहा कि वैसे तो साहित्य की सभी विधाएं महत्वपूर्ण हैं, लेकिन कविता सबसे समर्थ विधा है। यह सबसे पुरातन विधा है। अनेक सहस्राब्दियों से कविता ही सामान्य जन को सर्वाधिक प्रभावित करती आ रही है।

प्रो. शैलेंद्र कुमार शर्मा ने अपने उद्बोधन में कहा कि बहुज्ञता डॉ संजीव कुमार के रचना संसार की विशेषता है। उन्होंने गहरी संवेदना और कल्पनाशीलता के साथ पुराख्यानों, इतिहास और अनुश्रुतियों के अनेक पृष्ठों को काव्य का विषय बनाया है। लगभग एक सौ भाव खण्डों में विभक्त काव्य कोणार्क के माध्यम से उन्होंने एक नई जमीन तोड़ी है। कोणार्क में उन्होंने एक नई शैली में कवि और महाराणा विशु के मध्य संवाद श्रृंखला की सृष्टि की है। इसके माध्यम से कोणार्क के शिल्पविन्यास और संरचना का विस्तृत शास्त्रीय विवेचन किया गया है। वहीं महाराणा विशु के अन्तर्मन में झाँकने का सार्थक प्रयास भी कवि ने किया है। कार्यक्रम में वरिष्ठ कवि, लेखक एवं संपादक डॉ. संजीव कुमार का सारस्वत सम्मान उनके विशिष्ट योगदान के लिए किया गया। सम्मानस्वरूप उन्हें कुलानुशासक प्रो शैलेंद्र कुमार शर्मा एवं उपस्थित जनों ने शॉल, मौक्तिक माल और साहित्य भेंट कर उनका सारस्वत सम्मान किया। इस अवसर पर प्रो. गीता नायक, डॉ. जगदीश चंद्र शर्मा, डॉ. सुशील शर्मा, डॉ. भेरूलाल मालवीय, शाजापुर आदि सहित अनेक शोधार्थी एवं विद्यार्थी उपस्थित थे। कार्यक्रम का संचालन डॉक्टर जगदीश चंद्र शर्मा ने किया एवं आभार प्रदर्शन डॉक्टर प्रतिष्ठा शर्मा ने किया।

साहित्य समाचार-2

इंडिया नेटबुक्स एवं बीपीए फाउंडेशन द्वारा वार्षिक समारोह का आयोजन

रिपोर्ट : रणविजय राव

आज इंडिया नेटबुक्स, बीपीए फाउंडेशन और अनुस्वार पत्रिका द्वारा दिल्ली के मयूर विहार स्थित क्राउन प्लाजा होटल में अपने 'वार्षिक साहित्यकार सम्मान उत्सव' का आयोजन किया गया जिसमें देश-विदेश के कुल 52 वरिष्ठ, युवा और बाल साहित्यकारों सहित जाने-माने पत्रकारों को भी सम्मानित किया गया।

कार्यक्रम की शुरुआत गणेश वंदना से हुई। डॉ. संजीव कुमार द्वारा रचित सरस्वती वंदना का गायन भी सीमा चड्ढा द्वारा किया गया। इसके उपरांत डॉ. मनोरमा कुमार एवं कामिनी मिश्रा द्वारा विशिष्ट अतिथियों का स्वागत किया।

मंचस्थ विद्वानों में श्रीमती चित्रा मुद्गल, जनसत्ता के प्रधान संपादक मुकेश भारद्वाज, डॉ. बीना शर्मा, निदेशक केंद्रीय हिंदी संस्थान, व्यंग्य यात्रा के संपादक प्रेम जनमेजय, जयपुर से फारूक आफ़रीदी एवं राजेन्द्र मोहन शर्मा, रायपुर से व्यंग्यश्री गिरीश पंकज, दिल्ली से महेश दर्पण, नाटककार प्रताप सहगल एवं मुख्य अतिथि श्री अनुज भटनागर डी जी, बीआईएस थे। सान्निध्य में थे श्री हरिसुमन बिष्ट, राजेन्द्र पनपालिया, दामोदर खाड़से, पवन जैन, सिद्धार्थ धींगरा आदि।

स्वागत के बाद कार्यक्रम का संचालन कर रहे लोकप्रिय साहित्यकार डॉ. लालित्य ललित और युवा साहित्यकार रणविजय राव ने इंडिया नेटबुक्स के निदेशक डॉ. संजीव कुमार कुमार को संस्थाओं का परिचय देने के लिए आमंत्रित किया। डॉ. संजीव ने संक्षेप में इंडिया नेटबुक्स, बीपी, फाउंडेशन और अनुस्वार पत्रिका के कार्यकलापों एवं भावी योजनाओं के बारे में बताया।

सम्मान समारोह में सर्वप्रथम वरिष्ठ

कथाकार श्रीमती चित्रा मुद्गल को 'वेदव्यास सम्मान' तथा प्रख्यात नाटककार प्रताप सहगल को 'वागीश्वरी सम्मान' जैसे शिखर सम्मानों से सम्मानित किया गया।

साहित्य विभूषण सम्मान सर्वश्री फारुक आफ़रीदी, गिरीश पंकज, राहुल देव, राजेन्द्र मोहन शर्मा, मुकेश भारद्वाज और प्रबोध कुमार गोविल को दिया गया।

साहित्य भूषण सम्मान विवेक रंजन श्रीवास्तव, अरूण अर्णव

खरे, धर्मपाल महेंद्र जैन (कनाडा), उर्मिला शिरीष, सुधीर शर्मा, जय प्रकाश मानस, श्याम सखा श्याम, हरिप्रकाश राठी, दिव्या माथुर (यूके) अनिता कपूर (यूएसए) संध्या सिंह (सिंगापुर), वीना सिन्हा (नेपाल) एवं मंजू लोढ़ा को दिया गया। साहित्य रत्न पुरस्कार अंजू खरबंदा, स्वाति चौधरी, सीमा चड्ढा, अपर्णा चार्वी अग्रवाल, प्रत्यूष छाबड़ा, प्रदीप कुमार (मनोरमा ईयर बुक) आलोक शुक्ला, सुषमा मुनीन्द्र, यशोधरा भटनागर, मनोज अबोध, जयराम जय, धरमपाल साहिल, रोहित कुमार हैप्पी (न्यूजीलैंड), गंगाराम राज़ी, बलराम अग्रवाल, कमलेश भारतीय, देवेंद्र जोशी, राम अवतार बैरवा, शैलेंद्र शर्मा, सुभाष नीरव एवं पारूल तोमर को दिया गया। समाज सेवा में संलग्न सेवियों को समाज रत्न पुरस्कार दिए गए आलोक शुक्ला, संजय मिश्रा, दीप्ति त्रिवेदी, प्रेम विज, सुधीर आचार्य, एवं वरुण महेश्वरी।

तदुपरांत पुस्तकों के लोकार्पण हुआ जिसमें इंडिया नेटबुक्स की 'कथामाला' श्रृंखला की प्रथम पुष्प चित्रा मुद्गल की मेरी कहानियों का विमोचन भी किया गया। साथ ही, लालित्य ललित की रचनावली के छह खंड लोकार्पित किए गए, जिनका संपादन सुपरिचित साहित्यकार डॉ. संजीव कुमार ने किया है। डा संजीव द्वारा संपादित साक्षात्कारों के संग्रह 'इदं न मम' व 'यथावत' तथी प्रवासी भारतीयों की कविताओं का संग्रह 'पंछी मेरे देश के' सहित इंडिया नेटबुक्स प्रकाशित 20 पुस्तकों का लोकार्पण भी किया गया। इंडिया नेटबुक्स से प्रकाशित इन पुस्तकों का लोकार्पण वरिष्ठ कथाकार चित्रा मुद्गल और बीना शर्मा और साथ में श्री प्रताप सहगल, श्री प्रेम जनमेजय, मुकेश भारद्वाज, फारुक आफ़रीदी, राजेन्द्र मोहन शर्मा, प्रबोध गोविल, महेश दर्पण, शैलेंद्र कुमार शर्मा, डॉ. संजीव कुमार, डॉ. मनोरमा कुमार, कामिनी मिश्रा एवं तनुज सिद्धार्थ के हाथों किया गया। कार्यक्रम का संचालन रणविजय राव, डॉ. लालित्य ललित और पूनम माटिया जी के द्वारा संयुक्त रूप से किया गया। इस मौके पर कार्यक्रम में उपस्थित सभी विशिष्ट अतिथियों के प्रति डॉ संजीव कुमार और डॉ. मनोरमा ने आभार ज्ञापित किया। कार्यक्रम अति सफल रहा ॥

खुली धूप में नाव का यात्री : रवींद्रनाथ त्यागी पुस्तक लोकार्पण

संपादक : प्रेम जनमेजय

मित्रों! आज 9 मई है। अपने समय के व्यंग्यकारों की तुलना में कम याद किए और कम चर्चा योग्य माने जाने वाले रवींद्रनाथत्यागी को याद करने का दिन। आज अपने अपने राम हैं, अपने अपने मंदिर भी हैं जिनमें अपनो की दुंदभी बजाई जा रही है। रवींद्रनाथ त्यागी का कोई मंदिर नहीं है इसलिए वे धार्मिक पुस्तक भी नहीं है। पिछले दिनों इंडिया नेटबुक्स ने मेरे सम्पादन में 'खुली धूप में नाव का यात्रीः रवींद्रनाथ त्यागी पुनः प्रकाशित की है। 2006 में व्यंग्य यात्रा ने रवींद्रनाथ त्यागी पर विशेषांक प्रकाशित किया था। रवींद्रनाथ त्यागी के लिखे का मूल्यांकन करने वाली सम्भवतः एकमात्र किताब है।

9 मई 2017 में व्यंग्य यात्रा के तत्वावधान में एक आयोजन किया गया था रवींद्रनाथ त्यागी की बैठक। इसी आयोजन में श्रद्धेय शारदा त्यागी जी ने श्रद्धेय रवींद्रनाथ त्यागी जी की स्मृति को अक्षुण्ण रखने के लिए मुझसे प्रतिवर्ष कोई आयोजन करने का आग्रह किया था। आपसी विमर्श के बाद रवींद्रनाथ त्यागी जी की स्मृति में शीर्ष और सोपान देने की योजना बनी। प्रबंध समिति और निर्णायक समिति का गठन किया गया। पहला शीर्ष सम्मान शेरजंग गर्ग और सोपान सम्मान लालित्य ललित को 9 मई 2018 को आयोजित कार्यक्रम में प्रदान किया गया। एक प्रतिष्ठित सम्मान बन चुका आयोजन 2022 तक निर्बाध गति से चला। रवींद्रनाथ त्यागी को अनेक तरह से याद किया गया। नई पीढ़ी को उनके लिखे को पढ़ने-समझने का मंच मिला।

2022 के अंत मे शारदा त्यागी जी की तबियत बहुत खराब रहने लगी। उनका अधिकांश समय अस्पताल में रहने लगा। उनसे जब भी बात करता तो लगता जैसे वे यह लड़ाई लड़ते-लड़ते तक गई हैं। उनसे मेरी विस्तृत बातचीत जनवरी में हुई तो पाया कि अत्यधिक अस्वस्थ हैं। मैंने उनसे

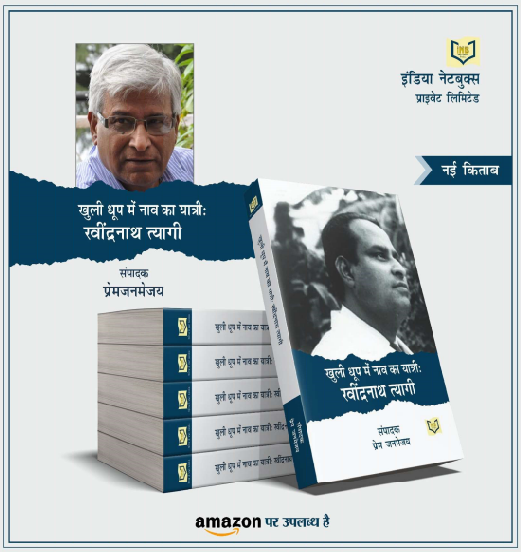

जब कहा कि इस बार यदि आयोजन त्यागी जी के जन्मदिन के स्थान पर पुण्यतिथि पर करें तो वह तत्काल बोलीं कि ठीक है।

मेरी फिर 13 फरवरी को बात हुई तो उसी दिन अस्पताल से आई थीं। मार्च के पहले सप्ताह में हाल चाल पूछने जैसी बात हुई। अचानक समाचार मिला कि 19 मार्च को उन्होंने प्राण त्याग दिए। अनायास एक विचार कौंधा कि कहीं उन्हें त्यागी जी के जाने का पूर्वाभास तो नहीं हो गया था। मेरे पूरा प्रयत्न होगा कि रवींद्रनाथ त्यागी जी की स्मृति को आप सबके सहयोग से अक्षुण्ण रखूं। यही उनके लिखे का सम्मान होगा। कुछ छवियाँ साझा कर रहा हूँ। आपके पास भी हों तो साझा करें।

पुस्तक समीक्षा-1

चैलेंजेज ऑफ यूनिवर्सिटीज (विश्वविद्यालयों की समस्याओं के समाधान की एक नायाब कृति)

समीक्षक : विवेकानंद त्रिपाठी, वरिष्ठ पत्रकार, पूर्व न्यूज एडिटर हिन्दुस्तान

देश के विश्वविद्यालय जड़ता और अराजकता का शिकार हो चले हैं। गुरुदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर ने देश के विश्वविद्यालयों के बारे में कहा है कि उनकी स्थापना अपने देश की परंपरा, प्रगति और विकास के अनुरूप नहीं हुई है उनकी जड़ों शाखाओं और पत्तियों को प्रत्यारोपित किया गया है। यानी अपने देश काल परंपराओं और महान सनातन विरासत को नजरअंदाज करके हुई है। यही वजह है कि वे परंपरा के संवाहक न होकर जड़ता के शिकार हो गए हैं। ईर्ष्या की विषवेल ने विश्वविद्यालयों की स्वस्थ परंपराओं को इस कदर अपनी गिरफ्त में ले लिया है कि कोई भी स्वस्थ परंपरा शुरू करने वाले तक ही सीमित होकर रह जाती है। आने वाले उत्तराधिकारी उसे आगे बढ़ाना अपनी तौहीन समझते हैं। अव्वल तो विश्वविद्यालय का मुखिया कहलाने वाले कुलपति विश्वविवद्यालय को परिवार नहीं चारागाह समझकर आ रहे होते हैं और उनकी नजर वहाँ के आर्थिक संसाधनों में बड़ी हिस्सेदारी की होती है। उनकी प्राथमिकता में विद्यार्थी और उनके हित शामिल ही नहीं होते। जिन विश्वविद्यालयों ने उन्हें काबिल बनाकर इस मुकाम तक पहुँचाया होता है उसको पुष्पित पल्लवित करके उस कर्ज को उतारने की भावना किसी बिरले के मन में ही उपजती है।

विश्वविद्यालयों के इतिहास में शायद पहली बार अपना फर्ज और कर्ज दोनों अदा करने के लिए एक प्रोफेसर जो अनेक विश्वविद्यालयों के कुलपति रह चुके हैं, ने एक अभिनव पहल की है। हाल में प्रकाशित उनकी पुस्तक दरअसल एक पुस्तक नहीं बल्कि विश्वविद्यालयों की गौरव गरिमा को स्थापित करने का एक लाइट हाउस है। Challenges for Improving Universities नाम से अंग्रेजी में प्रकाशित यह पुस्तक उस प्रोफेसर भूमित्रदेव का सृजन है जो छह विश्वविद्यालयों के कुलपति रहे हैं और जिनका एक बहुत शानदार एकेडमिक और प्रशासनिक रिकॉर्ड है। कुलपति के रुप में वे जहाँ जहाँ रहे हैं। नवोन्मेष (Innovation) के लिए जाने जाते रहे हैं। यह पुस्तक नहीं एक आचरित सत्य है, और जब कोई आचरित सत्य शब्दों में अभिव्यक्त होता है तो उसका प्रभाव बहुत दूरगामी होता है। 108 पेज की इस पुस्तक में प्रोफेसर भूमित्र देव ने विश्वविद्यालयों को सुधारने की चुनौतियों के मद्देनजर अपने कार्यकाल के ऐसे नायाब प्रयोगों के दृष्टांत पिरोए हैं जिन्हें वाकई में अगर लागू किया जाय तो हमारे देश के विश्वविद्यालय देश ही नहीं दुनिया के विश्वविद्यालयों को नई दृष्टि दे सकते हैं।

छोटे-छोटे चैप्टर में विभक्त इस पुस्तक के पहले चैप्टर Best Practices of Universities में विश्वविवद्यालयों में शुरू होने वाली अच्छी परंपराएँ उत्तराधिकारी द्वारा आगे बढ़ाने की इच्छाशक्ति की कमी के चलते कैसे दम तोड़ रही हैं इसके अनेक चौंकाने वाले दृष्टांत हैं। तत्कालीन राज्यपाल और विश्वविद्यालयों के कुलाधिपति के एम.मुंशी ने विश्वविद्यालयों के मेधावी विद्यार्थियों से संवाद की एक अनूठी परंपरा शुरू की थी। इसके लिए चांसलर कैंप का आयोजन होता था। उसमें उत्तर प्रदेश के विश्वविद्यालयों के मेधावी विद्यार्थियों को आमंत्रित किया जाता था। चांस्लर खुद इन छात्रों की सृजनात्मक प्रतिभा से रूबरू होते और उन्हें कुछ नया करने को प्रेरित करते। इस समागम में चोटी के विद्वानों को आमंत्रित किया जाता था। छात्र न केवल उन्हे सुनते बल्कि उनसे सवाल जवाब के जरिए अपनी शंका का समाधान भी करने की उन्हें छूट थी। बाद में कैंप में आमंत्रित विद्वानों के लेक्चर भारतीय विद्याभवन बांबे द्वारा छात्रों के हित को ध्यान में रखते हुए प्रकाशित कराए जाते थे। इस तरह के समागम का उद्देश्य देश के विद्वतजनों और मेधावी छात्रों के बीच एक ऐसे सेतु का निर्माण करना था जिसके जरिए नए एकेडमिक एंबेस्डर तैयार हों और अध्ययन अध्यापन के क्षेत्र में उत्तरोत्तर समृद्ध होने का माहौल तैयार

हो सके। पर दुखद और चिंतनीय बात यह कि के एम मुंशी के तिरोधान के साथ इस परंपरा को भी तिरोहित कर दिया गया। परंपरा का संपोषण और संवर्धन करके कैसे दुनिया के श्रेष्ठ विश्वविद्यालय अपनी सफलता का परचम लहरा रहे हैं इसके लिए लेखक ने ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी का एक अद्‌भुत दृष्टांत दिया है। 'एक बार ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में कुछ लोगों का डेलीगेशन यूनिवर्सिटी देखने पहुंचा। इस दल ने वहाँ के चांसलर से मुलाकात की। वे अपने चैंबर में अकेले बैठकर एक पुस्तक पढ़ रहे थे। डेलीगेशन के एक सदस्य ने उनसे सवाल किया, कैसे यह यूनिवर्सिटी चल रही है चांसलर ने एक संक्षिप्त सा उत्तर दियाए, i am not running the university, Oxford university is being run on tradition इस यूनिवर्सिटी को मैं नहीं चला रहा हूँ ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी अपनी शानदार परंपराओं से चल रही है डेलीगेशन सदस्य ने एक दूसरा और बहुत रोचक सवाल पूछा, How are your lawns so beautiful ? आपका यह लॉन कैसे इतना सुंदर है। चांसलर का जवाब इस बारऔर भी शानदार और जबरदस्त था। उन्होंने उत्तर दिया? By mowing and rolling for 900 years (इस लॉन की सुंदरता बीते 900 सालों के निरंतर प्रयास का प्रतिफल है) इस दृष्टांत के जरिए लेखक ने भारतीय विश्वविद्यालयों में क्षरित हो रही स्वस्थ परंपराओं की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। यहाँ किस तरह बहुतेरे वाइस चांसलर दूसरे कुलपति (प्रयोगधर्मी और नवोन्मेषी) के अच्छे प्रयासों को आगे बढ़ाने के बजाय उसे नजरअंदाज करने या बेमौत मारने में ही अपनी ऊर्जा खपाते रहते हैं इसके ढेर सारे उदाहरण इस पुस्तक में मौजूद हैं।

छात्र केंद्रित क्यों नही हैं विश्वविद्यालय : जिन विश्वविद्यालयों को विद्यार्थी केंद्रित होना चाहिए वे किस तरह उनके हितों की उपेक्षा करते हुए आर्थिक दोहन के केंद्र बनते जा रहे हैं इस पर गहरी चिंता जताई गई है और विश्वविद्यालय में कभी शुरू की गई स्वस्थ परंपराओं को उत्तरोत्तर आगे बढ़ाए जाने पर बल दिया है। यह पुस्तक किसी ऐसे युटोपिया या आदर्शलोक की बात नहीं करती जिसे साधना या उसका क्रियान्वयन एक दिवास्वप्न की तरह हो। इसमें उन प्रयोगों का जिक्र है जिसे क्रियान्वित कर उसका आश्चर्यजनक परिणाम देखा जा चुका है। एक कुलपति चाहे तो विश्वविद्यालय को नवोन्मेष (Innovation) की प्रयोगशाला बनाकर उसमें मानव रूपी ऐसे रत्न तराश सकता है जिनकी मेधा की खुशबू से देश ही नहीं सारा जहाँ सुरभित हो जाए। एक कुलपति का अपने विश्वविद्यालय में किस तरह लगाव (Involvement) और समर्पण होना चाहिए और उस समर्पण और लगाव के क्या चमत्कारी परिणाम हो सकते हैं पुस्तक में इस तरह के ढेरों दृष्टांत संग्रहीत हैं। प्रोफेसर भूमित्रदेव का इस पुस्तक के माध्यम से एक ही संदेश है कि विश्वविद्यालयों में जिस भी कुलपति या प्रशासनिक अधिकारी, शिक्षक ने जिन भी स्वस्थ परंपराओं की नींव डाली है उसे अविरल चलते रहना चाहिए। उसे इसलिए खारिज करके नेपथ्य में नहीं धकेल देना चाहिए कि वह उसके पूर्ववर्ती द्वारा शुरू की गई हैं, ऐसे में उसे आगे बढ़ाना उत्तराधिकारी कुलपति की तौहीन होगी।

प्रोफेसर भूमित्रदेव की यह पुस्तक विश्वविद्यालयों को छात्रोन्मुख (Student centric) बनाने पर बल देती है। हमारे विश्वविद्यालय हर साल लाखों की संख्या में ग्रेजुएट्स पैदा कर रहे हैं पर वे बेरोजगारी का दंश झेलने को अभिशप्त हैं। बहुतेरे रोजगार के काबिल भी नहीं हैं। यानी जो शिक्षा मिल रही है वह सिर्फ कागजी डिग्री देने वाली है न कि काबिल बनाने वाली। खासतौर से तकनीकी शिक्षा और इंडस्ट्री में एक समन्वय होना चाहिए जो नहीं है इसीलिए ज्यादातर मामलों में युवाओं को मिलने वाली शिक्षा उन्हें सड़क पर ला खड़ा कर रही है। युवा पीढ़ी को निष्प्रयोज्य साबित करने वाली शिक्षा मिल रही है। प्रोफेसर भूमित्रदेव अपनी इस पुस्तक में जिस छात्रोन्मुख विश्वविद्यालय बनाने की बात की है उसका मकसद यह है कि विश्वविद्यालय के कुलपति हों चाहे शिक्षक उनके लिए छात्र पहली प्राथमिकता होने चाहिए। चाहे छात्रावास से जुड़ी उनकी समस्याएँ हों या पठन-पाठन से उसे एक अभिभावक की तरह सुलझाना और समाधान करना होगा तभी विश्वविद्यालय में स्वस्थ परंपराएँ अंकुरित होंगी। प्रोफेसर भूमित्रदेव की परिकल्पना में सर्वश्रेष्ठ शिक्षण संस्थान वह है जहाँ शिक्षक और छात्र दोनों साथ साथ

सीखते हैं। एक अच्छा शिक्षक अपने क्लास का सर्वश्रेष्ठ छात्र होता है। वह ज्ञात और अज्ञात के क्षितिज पर जब तक अपने को खड़ा हुआ नहीं मानेगा अपना सर्वश्रेष्ठ नहीं दे पाएगा।

पुस्तक की भाषा : जब लेखक का विजन साफ हो वह जो कहना चाहता है वह उसका आचरित सत्य है तो ऐसे में भाषा सहज, सुगम और संगीतमय हो जाती है। सरलता सशक्त अभिव्यक्ति की पहचान है। प्रोफेसर भूमित्रदेव विद्यार्थी जीवन से जमीन से जुड़े रहे हैं इसलिए उनकी दृष्टि बेहद साफ और कुछ नया करने के लिए सृजन के जोखिमों को उठाने की ताकत रखती है। मथुरा जिले के नीमगांव के मूल निवासी प्रोफेसर भूमित्र देव को कुछ नया करने की ताकत और सलाहियत अपने गांव की मिट्टी और अपने पिता से विरासत में मिली है। पुस्तक का सातवां चैप्टर Snake Bite and Campus Life उनकी अदम्य जिजीविषा के साथ साथ विश्वविद्यालयों की छात्रों के प्रति घोर उपेक्षा की करुण दास्तान है। अगर किसी व्यक्ति के सामने साक्षात मौत खड़ी हो और वह जिंदगी के बारे में चिंतित होने की जगह अपने मिशन के अधूरा रहने का पश्चाताप करे ऐसा करने वाला कोई साधारण व्यक्ति नहीं हो सकता। अपने छात्रावासी जीवन में प्रोफेसर भूमित्रदेव जहरीले कोबरा के गहन दंश का शिकार हो गए। 20 दिन जीवन और मौत के बीच झूलते रहे मगर उन्हें अपनी जिंदगी से ज्यादा अपने मिशन के अधूरे रह जाने की चिंता सता रही थी। इस चैप्टर से गुजरते हुए बरबस आँखें नम हो जाती हैं। इस दास्तान के जरिए उन्होंने विश्वविद्यालय के छात्रावासों की दुर्दशा और वहाँ रह रहे छात्रों के प्रति इंतजामिया की घोर उदासीनता को रेखांकित किया है। इन सारे अनुभवों को समेटकर उन्होंने अपने कार्यकाल में कैंपस में छात्रहित में अभिनव प्रयोग किए।

लेखक ने अपनी बात को प्रभावी ढंग से रखने और पाठक पर अमिट छाप छोड़ने के लिए दुनिया के प्रसिद्ध विद्वानों, प्रख्यात अनुसंधानकर्ताओं और वैज्ञानिकों के प्रेरक कोटेशंस मणि मुक्ताओं की तरह प्रयोग किए हैं। यह पुस्तक सही मायनों में प्रोफेसर भूमित्रदेव की आत्मा का गान (Song for The Soul) है। उसका एक एक शब्द एक हलफनामा है।

पुस्तक के कुछ सुंदर अंश द्रष्टव्य हैं:

We are living in an age of guided missiles but misguided men.

In fact the students are not useless, they are used less.

they are not careless but cared less.When opinions differ, they need not be disagreeable (मतभेद बिना मनभेद के) It is clear that faster development in any university is possible only when its administration is fair and transparent following an open door policy with frequent interaction with students. (विद्यार्थियों से निरंतर संवाद, पारदर्शिता और खुली खिड़की नीति अपनाने से ही विश्वविद्यालयों का तेजी से विकास हो सकता है)

Today we live in a knowledge based world which rests on four golden pillars: Information, Knowledge, Wisdom and intuition leading to the highest levels of creativity.

We save time but often reduced age.

Our knowledge transfer time has increased while our rumour time has diminished.

Less work but more network leads to faster success.

We should be ready for modernization, but not trapped in the prevalent trend of westoxication.

Boredom has changed our early learners into late bloomers.

We see an increase in innovative methods of cheating, but decline in creative methods of teaching.

विश्वविद्यालयों के नैराश्य के वातावरण में यह पुस्तक उम्मीद की एक मशाल की तरह है। इसका एक ही संदेश है, माना की विश्वविद्यालयों में नैराश्य का वातावरण है मगर उम्मीद की किरण भी यहीं से फूटेगी। इस पुस्तक में प्रोफेसर भूमित्रदेव ने सेवक से लेकर शिक्षक, छात्र, मार्गदर्शक, स्वामी तक अपने उन सभी सहयोगियों, सहधर्मियों का जिक्र किया है जिन्होंने उनके सृजन के इस महायज्ञ में

किंचित एक तिनका भी समिधा डाली है। इस पुस्तक के सृजन के पीछे उनकी मंशा पूरे समाज का वह कर्ज उतारना है जो उनके व्यक्तित्व के निर्माण में परोक्ष या अपरोक्ष रूप से शामिल रहा है। विश्वविद्यालयों के प्रति चिंता जताते हुए उनके सुधार की दिशा में यह पुस्तक अप्रतिम रूप से एक दिशा देने वाली है।

गोरखपुर यूनिवर्सिटी का दृष्टांतः हमारे विश्वविद्यालय जिन्हें अध्ययन, अध्यापन, शोध और नवोन्मेष के केंद्र होने चाहिए वहाँ इन क्षेत्रों में उबासी और उदासी का माहौल है। अध्ययन, अध्यापन और शोध तीनों उबाऊ और समय काटने का सबब बन गए हैं। पुस्तक के लेखक ने आगरा विश्वविद्यालय के कुलपति रहते हुए इस दिशा में एक अभिनव प्रयोग किया था। यह प्रयोग था विश्वविद्यालय के टॉपर्स के नाम पर वृक्षारोपण करने और अच्छे शोध को शोधार्थी की क्रेडिट के साथ सार्वजनिक रूप से डिस्प्ले करने का। इस छोटे से प्रयास ने विश्वविद्यालय के शैक्षणिक माहौल को ऊर्जा से भर दिया। विश्वविद्यालय के शिक्षण को कैसे उबाऊ और थकाऊ होने से बचाया जा सकता है और छात्रों को कक्षाओं के प्रति आकर्षित किया जा सकता है इसके लिए अनेक वैज्ञानिक तरीके सुझाए गए हैं। लेक्चर के दौरान समझाने के लिए प्रयोग किए गए विजुअल माध्यम विश्वविद्यालयों के छात्रों के भ्रम और कन्फ्यूजन को दूर कर विषय को बेहतर समझने में सहायक हो सकते हैं इसका प्रायोगिक अनुभव पुस्तक में साझा किया गया है। इस तरीके को ब्रेवो मेथड ऑफ टीचिंग (BRAVO यानी, Brachial, Audio-Visual Oral) नाम दिया गया है। यह तकनीक विद्यार्थियों की एकाग्रता और स्मृति दोनों की वृद्धि में सहायक और उपयोगी पाई गई है। हमारे चारों ओर का समूचा परिवेश किस तरह से बदल गया हैए अगर उसे समझते हुए तदनुरूप विश्वविद्यालयों के शैक्षणिक माहौल में आमूल चूल सकारात्मक बदलाव नहीं किया गया तो विश्वविद्यालय अपनी आभा और उपयोगिता दोनों खो देंगे। इसके लिए पुस्तक में दिए गए टिप्स विश्वविद्यालयों को सुधारने में आने वाली चुनौतियों से निपटने की नई राह दिखाते हैं। पर दुखद यह है कि चीटिंग यानी धोखाधड़ी के लिए नित नए तरीके तो निकाले जा रहे हैं मगर अध्यापन के रचनात्मक तरीके दिनोंदिन गिरावट की ओर अग्रसर हैं। पढ़ने की आदत में क्रमागत ह्रास नियम लागू है जबकि मोबाइल फोन और टेलीविजन की ओर झुकाव में दिनोंदिन इजाफा हो रहा है। किसी विषय पर एकाग्र करने की जो हमारी क्षमता थी उसमें भी काफी गिरावट आई है। स्वार्थपरता सामाजिक सरोकारों से दूर करती जा रही है। हम बौद्धिक रूप से भले ही बढ़ रहे हैं मगर भावनात्मक आध्यात्मिक रूप से अकिंचन होते जा रहे हैं। विश्वविद्यालय इन सारे अवयवों से बनता है। उसे इसी तरह की स्वस्थ परंपराएँ बनाती हैं। किसी भी राष्ट्र के निर्माण में वहाँ के विश्वविद्यालयों का दायित्व बहुत बड़ा होता है। वहाँ नस्लें गढ़ी जाती हैं। वह समृद्ध परंपराओं के सृजन और उन्नयन की उर्वर भूमि है। जिस तरह के मेधासंपन्न और चेतना संपन्न लोग विश्वविद्यालयों में अध्ययन, अध्यापन के लिए चयनित किए जाते हैं उनका यह दायित्व है कि वे अपने अधिकारों के प्रति जितने सजग हैं उतने ही सजग और ईमानदार अपने कर्तव्यों के प्रति भी हों। प्रोफेसर भूमित्रदेव की यह पुस्तक विश्वविद्यालय के कुलपति से लेकर छात्र और मुलाजिम तक सबके लिए एक लेशन देने वाली, दिशा देने वाली है। इसमें विश्वविद्यालय में आए दिन आने वाली समस्याओं का तर्कसंगत और संजीदा समाधान है। सही मायनों में यह ऐसी पुस्तक है जिसे विश्वविद्यालयों के कुलपतियों, शिक्षकों और विद्यार्थियों सबको पढ़नी चाहिए। पुस्तक यह समाधान देती है कि कैसे डिजिटल होती इस दुनिया में हम वैश्विक चुनौतियों के प्रति अपने विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों कौ तैयार करें। पुस्तक में एकेडमिक और प्रतियोगी परीक्षाओं से लेकर साक्षात्कार देने के तरीके के टिप्स देने के लिए विश्वविद्यालयों के दायित्व को याद दिलाया गया है। कैसे यूनिवर्सिटीज और इंडस्ट्री के बीच समन्वय बनाया जाए, इन पर फोकस है। सही मायनों में इस पुस्तक में विश्वविद्यालयों को छात्र केंद्रित (Student Centric) बनाने और उसके अनुरूप पूरे कैंपस में माहौल बनाने के नायाब विजन है।

पुस्तक समीक्षा-2

कंडी पहाड़ी संस्कृति के जन-जीवन की अप्रतिम झलक

समीक्षक : डॉ. ज्ञानप्रकाश 'पीयूष'

'कोहकनी' उपन्यास कंडी पहाड़ी संस्कृति को रेखांकित करता हुआ, वहाँ के जनजीवन को शिद्दत से फलक पर उकेरता है। इसकी नायिका राधा, जो जुझारू स्वभाव की बड़ी संघर्षशील जहीन महिला है। वह 'कोहकनी' शब्द को सार्थक करती है। 'कोहकनी' शब्द का अर्थ है पहाड़ खोदने जैसे कठिन परिश्रम करने की प्रवृत्ति। उपन्यास के अधिकांश पात्र एवं चरित्र उक्त विशेषताओं पर खरे उतरते हैं। इसलिए उपन्यास का नामकरण सर्वथा सार्थक एवं समीचीन है।

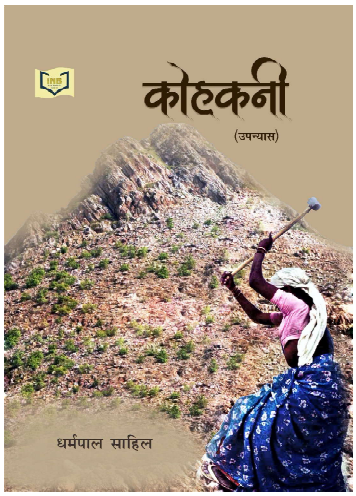

उपन्यास की कथावस्तु बड़ी रोचक और सन्देशप्रद है।

राधा इस उपन्यास की नायिका है, जो दुर्योग से एक बार ढोंगी बाबा के चंगुल में फंस जाती है और किसी तरह से किशन की सहायता से बलात्कार की त्रासदी से बाल-बाल बच जाती है। गाँव की महिला सरपंच और उसका पति दलीप ढोंगी बाबा को बचाने में उसकी मदद करते हैं तथा राधा को पंचायत के माध्यम से दोषी ठहराने की कोशिश करते हैं। पर राधा का प्रेमी किशन अपने पिता कामरेड अवतार सिंह की सहायता से पुलिस थाने में एफ.आई.आर. दर्ज करवा देता है तथा पत्रकार धर्मचंद के सहयोग से अखबारों में ढोंगी बाबा की पोल खोल देता है। ढोंगी बाबा और सरपंच को कोर्ट के माध्यम से सजा मिलती है।

राधा वयोवृद्ध पत्रकार धर्मचंद से पत्रकारिता के गुर सीख कर एक सफल पत्रकार बन जाती है और अपने क्षेत्र की अनेक समस्याओं को अखबार के माध्यम से हाइलाइट करती है। स्कूल, अस्पताल आदि की दुर्दशा सुधारने का भरसक प्रयत्न करती है। वह जन सेवा के कार्यों में यदाकदा अपने प्रेमी किशन की भी सहायता लेती है। उनके जन सेवा के कार्यों से नाराज़ हो कर कुछ असामाजिक तत्व उन पर जानलेवा हमला कर देते हैं। कामरेड अवतार सिंह लहूलुहान राधा और किशन को एक रिक्शे में अस्पताल तक पहुँचा कर उन्हें मौत के मुँह से निकाल लेते हैं। वह रिक्शा संयोग से जगीरा का निकलता है, जो 30 वर्ष पूर्व राधा की माँ बिन्दरी से शादी करने का इच्छुक था पर परिस्थिति वश उनकी शादी नहीं हो पाई थी। राधा-किशन की दुर्घटना ने संयोग से उन दोनों किरदारों को 30 वर्ष पश्चात मिलवा दिया।

उपन्यास सुखांत है और औपन्यासिक के आधार पर बिल्कुल खरा उतरता है। अपने नामकरण और कथावस्तु के साथ-साथ, पात्र योजना, चरित्र-चित्रण, संवाद, देशकाल व परिस्थिति, भाषा शैली, उद्देश्य, सन्देश एवं समग्र प्रभाव की दृष्टि से यह उपन्यास अत्यंत उत्कृष्ट है। प्रमुख पात्रों में राधा, किशन, मधुसूदन, जागीरा, कॉमरेड अवतार सिंह, धर्मचंद, खलनायक ढोंगी बाबा आदि हैं और गौण पात्रों में प्रो. देव, कैलाश, दलीप, बिन्दरी, महिला सरपंच, डॉक्टर एवं एस.एच.ओ आदि विविध किरदार हैं।

लेखक ने पात्रों का चरित्र-चित्रण अत्यंत सूझबूझ से उनकी भूमिका के अनुकूल प्रभविष्णु तरीके से किया है। ढोंगी बाबा व प्रो. देव, का चित्रण खलनायक व बलात्कारी के रूप में, महिला सरपंच व दलीप का बुरे व्यक्तियों के संरक्षक के रूप में और धर्मचंद का सफल पत्रकार के रूप में तथा राधा व किशन का जनसेवक के रूप में किया है।

संवाद भावानुकूल, संक्षिप्त, रोचक, पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालने वाले और कथा की गति को आगे बढ़ाने वाले हैं।

अखबारों में प्रकाशित ख़बर के हैडिंग के माध्यम से भी पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है, यथा भूत निकालने आए ढोंगी बाबा का रोगी ने ही भूत निकाला।

'जय बाबा बम्ब बोले पर पड़े जूतों के ओले'

'जब जूतों की हुई बरसात, बाबा की उल्टी पड़ गई करामात।'

श्रद्धा की दिलेरी से कलयुगी बाबा के खिलाफ दर्ज हुई एफ.आई.आर.।

लेखक ने हिंदी के शब्दों के साथ पात्रानुकूल अंग्रेजी, उर्दू, पंजाबी, पहाड़ी, आदि विविध भाषाओं के शब्दों का मिश्रित प्रयोग किया है। द्रष्टव्य है डॉक्टर राधा का चेकअप करके बाहर निकला तो मधुसूदन ने राधा का हालचाल पूछा 'डोंट वरी, शी इज बेटर नाउ, पेशेंट के घर से पहुँचा है कोई'

'जी हाँ, यह राधा की माताजी है' मधुसूदन ने जान-पहचान कराई।

'माता जी आप बिल्कुल चिंता ना करें, शी इज ओके।'

इसी प्रकार एक अन्य प्रसंग देखिए

'मैं तेरी कुझ नी लगदी, ब्याह दा वैदा मेरे नाल कीता, कने खेह तूं खादी उस मसूम कुड़िए नाल।'

'ऐह तूं के गलां नी ऐ।'

'ओहो सारा पिंड तेरा नौंअ लैदा...।'

कथोपकथन अत्यंत संक्षिप्त एवं कौतूहल वर्धक हैं एक झलक देखिए

'राधा मैडम वह लड़की इमरजेंसी वार्ड में है।'

'मेडिकल रिपोर्ट के गलां दी'

'गैंगरेप का मामला लगता है।'

'कुड़ी दी उमर के हुंगी।'

'नबालिग है, दस बारह साल की।'

'उण के हाल उधा'

मोस्ट प्रोबेबली कोमा में है।

संवादों के माध्यम से पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं और उपन्यास के उद्देश्य व सन्देश का प्रकाशन देखिए 'तू होश में तो है न लड़की। तू किस पर इल्जाम लगा रही है, वे हमारे कॉलेज के सबसे इंटेलिजेंट मोस्ट रिस्पेक्टेबल एंड ऑनेस्ट प्रोफ़ेसर हैं...।'

अवतार सिंह ने कुछ पल सोच कर उन दोनों के मन में इस संघर्ष के लिए हौसला भरते हुए कहा यह तुम अपने लिए नहीं सारे समाज के कल्याण के लिए काम कर रहे हो। मेरा विचार है कि पंचायत वाले थाने में आकर तुम्हारे खिलाफ रिपोर्ट दर्ज कराएँ, तुम पहले थाने जाकर उस बाबा के विरुद्ध छेड़खानी की रिपोर्ट दर्ज करवा दो। इस काम के लिए खुद को भी थोड़ा बहुत नंगा होना पड़ेगा। नाली को साफ करने के लिए झाड़ू को नाली में तो जाना ही पड़ेगा। समाज के इस कीचड़ को साफ करने के लिए तुम्हें झाड़ू तो बनना ही पड़ेगा।

अवतार सिंह के उपर्युक्त कथन से उपन्यास का उद्देश्य व सन्देश स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि समाज में विशेष रूप से कंडी के पहाड़ी क्षेत्र में अंतर्निहित बुराइयों एवं विकृतियों का विरोध करते हुए निरन्तर जन कल्याण की भावना का प्रसार करते रहना है और ढोंगियों, अपराधियों एवं उनका साथ देने वालों का पर्दाफाश करके उन्हें न्यायालय से उचित सजा दिलवाना है।

देशकाल व परिस्थिति कथा की नाटकीयता के अनुरूप है, जो घटनाक्रम को अधिक प्रभावशाली एवं अर्थवत्ता पूर्ण बनाती हैं।

भाषा भावानुकूल एवं पात्रानुकूल है, शैली सरस एवं बोधगम्य है। बीच-बीच में सूक्तियों और, मुहावरों के प्रयोग अभिव्यक्ति को अधिक प्रखर, प्रभावशाली एवं पारदर्शी बना देते हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कोहकनी उपन्यास कथ्य, शिल्प एवं औपन्यासिक तत्वों के आधार पर बहुत उत्कृष्ट एवं उपादेय है। आंचलिक विशिष्टताओं और कंडी पहाड़ी क्षेत्र की लोक संस्कृति एवं जन समस्याओं का सम्यक निरूपण व निराकरण करता हुआ अपने उद्देश्य में सफल है। यह पठनीय एवं संग्रहणीय है। उत्कृष्ट कृति के लिए लेखक बधाई के पात्र हैं। मंगलकामनाओं सहित।

पुस्तक समीक्षा-3

मैनेजमेंट गुरु कबीरः ज्ञान और भक्तिपूर्ण प्रबंधकीय चिंतन

समीक्षक : विजय कुमार तिवारी

निर्गुण परम्परा के कबीर को, उनकी उलटबांसी और अद्भुत विराट व्यक्तित्व को समझना और उन पर चिन्तन करना सहज नहीं है। कबीर साहस करते हैं, समाज में फैली कुरीतियों पर आक्रमण करते हैं और कोई व्यापक दृष्टि देते हैं जिससे उनके राम को जानना पहचानना सहज हो जाता है। कबीर मेरे लिए सदैव प्रेरक रहे हैं और उन्होंने हमेशा आकर्षित किया है। सुखद संयोग ही है, अत्यन्त लोकप्रिय साहित्यकार श्री प्रताप नारायण सिंह द्वारा लिखित सद् ग्रंथ "मैनेजमेंट गुरु कबीर" मेरे सामने है। प्रताप नारायण सिंह जी की प्रतिभा का आकलन इस तरह से किया जा सकता है, उन्होंने साहित्य की अनेक विधाओं में पूरी दक्षता के साथ, साधिकार लेखन किया है। उनके उपन्यास देश की महान विभूतियों के जीवन पर नये चिन्तन के साथ प्रकाश डालते हैं, उनके कविता और कहानी संग्रह छपे हैं और उनका सम्पूर्ण लेखन चर्चा में है। उन्हें उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा 'जयशंकर प्रसाद पुरस्कार' से सम्मानित किया गया है।

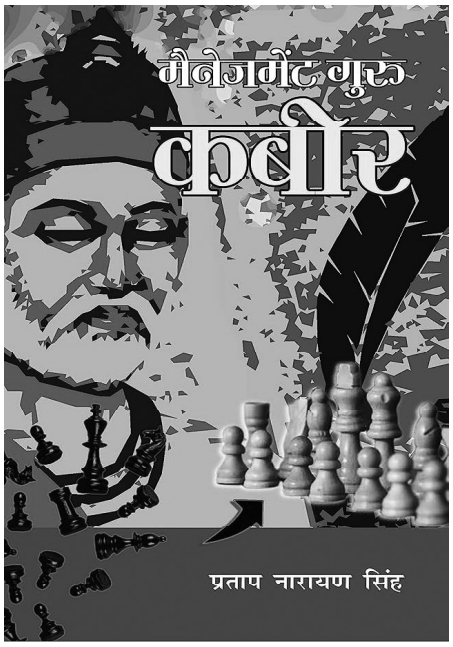

'मैनेजमेंट गुरु कबीर' उनका वैचारिक व शिक्षाप्रद ग्रंथ है जिसके 'आमुख' में लिखा हुआ है 'कबीर एक ऐसा नाम है जिसे उच्चारित करते ही व्यक्ति की आँखों के समक्ष समस्त बंधनों से मुक्त, सभी भेदभावों से परे और सम्पूर्ण दोषों का दमन कर चुके एक ऐसे संत, भक्त, चिन्तक, विचारक और समाज सुधारक की छवि उभर आती है जो निर्विवाद रुप से ज्ञान और भक्ति का एक सर्वकालिक प्रतिनिधि है। लेखक ने इस ग्रंथ के सृजन का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए लिखा है 'कबीर के विचारों और उपदेशों के माध्यम से व्यक्ति के सामाजिक व व्यक्तिगत जीवन तथा कार्यक्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले प्रबंधन गुणों को विश्लेषित करने और समझने का प्रयत्न करना है।'

वे आगे लिखते हैं 'देखा जाए तो महापुरुषों के अंदर प्रबंधन का गुण अवश्य मिलता है। वे अपने जीवन, समाज और अनुयायियों को उन्हीं गुणों के कारण कुशलता से साधते और व्यवस्थित रखने में सफल होते हैं तथा समकालीन लोगों के साथ-साथ आने वाली पीढ़ियों के लिए भी उदाहरण व प्रेरणास्रोत बन जाते हैं। महापुरुष किसी न किसी बड़े उद्देश्य को लेकर चलते हैं और इसके लिए उनके पास आवश्यक कार्य श्रृँखलाओं की परियोजना होती है। आज प्रबंधन की शिक्षा अति महत्वपूर्ण है। कबीर आध्यात्मिक और सामाजिक दोनों ही क्षेत्रों में क्रान्तिकारी परिवर्तनों के प्रणेता बने थे। वे आध्यात्मिक गुरु व समाज सुधारक थे और उनकी शिक्षाएं मानव कल्याण के लिए सदैव प्रासंगिक रही हैं। इस तरह उनमें स्वाभाविक रुप से प्रबंधन के गुण कूट-कूट कर भरे हुए थे। प्रताप नारायण सिंह ने विधिवत अपने शोधों और निष्कर्षों के आधार पर कबीर के प्रबंधकीय गुणों को रेखांकित करने का प्रयास किया है और कुल 18 शीर्षकों के अन्तर्गत अपनी सम्पूर्ण विवेचनाएं की है।

'संक्षिप्त जीवनवृत्त और कृतित्व' में प्रताप नारायण सिंह ने कबीर के जन्म, जन्मस्थान, माता-पिता, लालन-पालन,

शिक्षा, जाति, गुरु, गुरुमंत्र, वेद शास्त्र ज्ञान आदि को लेकर गहन चिन्तन-मनन किया है और अपने निष्कर्षों को प्रामाणिकता के साथ रखा है। कबीर जिस तरह से भारतीय दर्शन, योग वेद इत्यादि के विषय में गहनता से बातें करते है, ऐसा लगता है, वे स्वामी रामानंद के शिष्य थे और उन्होंने गुरु से शिक्षा अवश्य ली होगी। कबीर गुरु को महत्वपूर्ण मानते हैं और कहते हैं 'गुरु के बिना ज्ञान नहीं होता।' उनका गुरु तो ईश्वर से भी बड़ा है। उन्होंने घर में रहकर, सांसारिक जीवन जीते हुए गृहस्थी को ही तपमय बना लिया। भिक्षा माँगना उनके लिए निषेध है, यह मृत्यु के समान है। उनकी शादी लोई से हुई और कमाल कमाली दो संताने थीं। उनका जीवन अभावग्रस्त था और वे उतना ही संसाधन चाहते थे जिसमें जीवन चलता रहे "साईं इतना दीजिए, जामें कुटुम समाय। मैं भी भूखा ना रहूँ साधु न भूखा जाय।" उन्होंने हर प्रचलित कुरीतियों का खण्डन किया और अनेक मान्यताओं का विरोध किया। 'काशी में मरने से मोक्ष प्राप्ति होती है' के विरोध में, जीवन भर काशी में रहने वाले कबीर अंतिम समय में मगहर चले गए। हिन्दी साहित्य में उनका महत्वपूर्ण स्थान है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा था "कबीर साधना के क्षेत्र में युग गुरु थे और साहित्य के क्षेत्र मे भविष्यद्रष्टा। उनके समकालीन एवं परवर्ती सभी सन्त कवियों ने उनकी वाणी का अनुसरण किया।" "बीजक" उनका विश्वसनीय संग्रह माना जाता है जिसमें तीन तरह की रचनाएं है साखी, शबद और रमैनी।

प्रबंधन गुण की चर्चा करते हुए प्रताप नारायण सिंह ने मनुष्य के द्वारा अपने सूक्ष्म और स्थूल के प्रबंधन पर ध्यान केन्द्रित किया है। जो लोग अपने मन और बाहरी क्रियाकलापों का प्रबंधन ठीक ढंग से कर पाते हैं उनका जीवन अपेक्षाकृत सहज और सरल हो जाता है और वे अधिक प्रसन्नचित्त रहते हैं। व्यवस्थित होने से समय और धन दोनों की बचत होती है। प्रबंधन केवल बाह्य जगत तक ही सीमित नहीं है अपितु अन्तर्जगत को भी व्यवस्थित करने में भी इसकी बहुत आवश्यकता पड़ती है। मनुष्य को सुख शांति से परिपूर्ण जीवन जीने के लिए मात्र धन या सामाजिक सफलता ही नहीं पर्याप्त होती है अपितु अपनी इन्द्रियों, भावनाओं, विचारों आदि का प्रबंधन भी करना पड़ता है। कबीर ने अपने अन्तर्जगत को साध रखा था। यह स्वयं को व्यवस्थित करने से हुआ और अपने मन, विचार, वाणी इत्यादि के प्रबंधन से हुआ। अच्छे प्रबंधन हेतु लेखक ने व्यक्ति के अन्दर अनेक आवश्यक गुणों की चर्चा की है और कबीर की शिक्षाओं, उपदेशों आदि से जोड़ा है।

कबीर के 'डगमग छाड़ि दे मन बौरा' भजन के आधार पर प्रताप नारायण सिंह ने 'आत्मविश्वास और दृढ़ता' के भाव को पकड़ा है और जीवन प्रबंधन के लिए जरूरी बताया है। यहाँ अनेक सूत्र वाक्य हैं निर्भय और निश्चिन्त मनुष्य जीवन का सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करता है। कबीर दास जी राम को पकड़े रहने की बात करते हैं। एक बार निर्णय कर लिया तो पीछे मत हटो। सशंकित और दुविधा में मत रहो। संसारियों से प्रेम जोड़ने से कल्याण का एक भी काम नहीं होता। हरि का भजन विश्वास पूर्वक करो। अपना लक्ष्य तय कर लो और लग जाओ। शूरवीर वही है जो अंतिम पलों तक हार नहीं मानता। दृढ़ व्यक्ति हारी हुई बाजी जीत लेता है। प्रह्लाद ध्रूव, ट्रोजन हार्स जैसी कहानियों के माध्यम से लेखक ने इन गुणों की सार्थकता व्यक्त की है और ये सभी कबीर के बताए मार्ग हैं। कबीर कहते हैं जिन खोजा तिन पाईयाँ अर्थात् गहरे पानी में निर्भय होकर उतरो, सफलता मिलेगी। 'अब मैं भूला रे भाई! मेरे सतगुरु जुगत लखाई' भजन में कबीर जीवन प्रबंधन के अनेक सूत्र देते हैं। यहाँ ग्रहणशीलता और रचनात्मकता पर लेखक ने व्यापक तौर पर चिन्तन किया है। कबीर नये मार्ग की बात करते हैं, कर्मकांड, तीर्थयात्रा, पाखंड छोड़ने की बात करते हैं और अपने राम को हृदय के सिंहासन पर बैठाते हैं। उन्होंने भक्ति का ज्ञान मार्ग अपनाया, जाति को नकारा 'जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।' प्रताप नारायण सिंह ने ग्रहणशीलता और रचनात्मकता को नये सिरे से जानने, समझने पर जोर दिया है और इसके लिए कबीर के सूत्र वाक्यों को आधार बनाया है पढ़े हुए ज्ञान को जीवन में उतारो, रुढ़िवादी मत बनो। मस्जिद से अजान देने पर कबीर पूछते हैं क्या तुम्हारा खुदा बहरा है? भीतर कपट है, माला जपने से कोई लाभ नहीं। कबीर बार बार भीतर की यात्रा

करने, विचारों को खुला छोड़ने पर बल देते हैं। इससे अन्तर्दृष्टि का विकास होता है, नये अनुभव होते हैं, प्रगति होती हैंएमानसिक दृढ़ता आती है और मनुष्य उम्मीदों से भर जाता है। आधुनिक प्रबंधन शास्त्र ने कबीर के सूत्रों को ही तो पकड़ा है।

कबीर हरि नाम जपने को कहते हैं, शरीर में काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार को चोर बताते हैं और अपनी चेतना को जगाने, सावधान होने की सलाह देते हैं। लेखक ने इन्हीं तत्वों के आधार पर प्रबंधन की प्रबल विश्लेषणात्मक क्षमता को समझाया है। विश्लेषण की प्रबल क्षमता से आत्मविश्वास बढ़ता है। सही विश्लेषण के अभाव में कार्य पूर्ण नहीं हो पाते और हानि उठानी पड़ती है। वे अपने दोहों मे विकारों का सूक्ष्म विश्लेषण करते हैं और जीवन को सुखद बनाते हैं। कबीर अन्तर्जगत के साथ बाह्य जगत के विश्लेषण की बात करते हैं 'साधू ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय। सार-सार को गहि रहे, थोथा देइ उड़ाय।' कबीर जीवन में सार तत्व को समझाना चाहते हैं और तदनुसार ही प्रताप नारायण सिंह जी प्रबंधन में कबीर के चिन्तन को शामिल करते हैं। प्रबंधन में दबाव को झेलने की शिक्षा दी जाती है। कबीर लिखते हैं अब मैं क्या डरूँगा! अब तो मैं और तुम, आगम, निगम, ऊँच-नीच का रहस्य जान गया हूँ। प्रबंधन में समय, व्यय और कार्य की गुणवत्ता पर नियंत्रण रखना पड़ता है। समय को पहचानना और सही सन्दर्भ प्रस्तुत करना कोई कबीर से सीखे। वे मन को स्थिर रखने का संदेश देते हैं और कहते हैं 'काल करै सो आज कर, आज करै सो अब।' गुणवत्ता बनाए रखने के लिए उनका यह दोहा खूब चर्चित है 'निंदक नियरे राखिए, आँगन कुटी छवाय। बिन पानी, साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय।' कबीर अपने संसाधनों के उपयोग, सदुपयोग पर जोर देते हैं और प्रबंधन का बड़ा रहस्य सुलझा देते हैं।

प्रबंधन में स्पष्टवादिता का अपना महत्व है। कबीर प्रचलित धारणाओं पर गहरी चोट करते हैं केवल राम-राम रटने से काम नहीं होता, ईश्वर के प्रति सच्चा प्रेम होना चाहिए। राम नाम का जाप उनकी महिमा समझकर करनी चाहिए। कबीर गोल-गोल बात नहीं करतेएस्पष्ट कहते हैं और स्पष्टवादिता पर जोर देते हैं। स्पष्टवादी की बातों पर लोग विश्वास करते हैं और अनुसरण करते हैं। कबीर खरा खरा बोलते हैं जो घर फूँके आपना, चले हमारे साथ। स्पष्टवादिता से पारदर्शी कार्य संस्कृति का निर्माण होता है। कबीर का स्पष्ट संदेश देखिए ईंट पत्थर जोड़कर मस्जिद बना लिया और मुल्ला रोज अजान देता है, तो क्या खुदा बहरा है? पाँच बार नमाज पढ़ लेना सच्ची प्रार्थना नहीं है, जब तक हमारे भीतर प्रेम, करुणा और सत्य का वास नहीं होता। वैसे ही उन्होंने पत्थर को परमात्मा मानकर पूजने पर भी कटाक्ष किया है। वे किसी को भ्रम में नहीं रखना चाहते, किसी को नहीं कहते कि मेरा मंत्र जप लो, तुम्हें मोक्ष मिल जायेगा। इस तरह कबीर ने स्पष्टतः अपने विचारों को रखा और सबको सन्मार्ग दिखाया है।

रणनीतिक और आलोचनात्मक सोच का प्रबंधन के क्षेत्र में कम महत्व नहीं है। कबीर कहते हैं 'हम न मरैं, मरिहें संसारा।' सारा संसार मृत्यु को प्राप्त होता है परन्तु संत नहीं मरता क्योंकि वह राम नाम के रसायन का पान करता है। उन्होंने स्वयं को हरि से जोड़ लिया है। यह उनकी रणनीति है, स्वयं को उसी में मिला दो जिसकी मृत्यु नहीं होती, जो अमर है। ईश्वर अमर है, इसलिए स्वयं को राममय कर लो। प्रबंधन के क्षेत्र में इसको समझने के लिए आलोचनात्मक दृष्टि चाहिए। प्रताप नारायण सिंह जी लिखते हैं आलोचनात्मक सोच अवधारणात्मक रुप से एक अनुशासित प्रक्रिया है जिसमें अपने लक्ष्य की प्राप्ति के तरीके पर गहराई से विचार किया जाता है। इसके अन्तर्गत अवलोकन, अनुभव, आभास, तर्क, संचार इत्यादि माध्यमों से एकत्रित जानकारी का उपयोग, विश्लेषण, संश्लेषण और मूल्यांकन करना होता है। कबीर स्वयं को ईश्वर में मिलाने की प्रक्रिया समझाते हैं अवधू गगन मंडल घर कीजै। वे अपनी दृष्टि को लेकर बिल्कुल स्पष्ट हैं और उनकी रणनीति भी स्पष्ट है। कबीर हमेशा आत्म चिन्तन पर बल देते है और उनकी दृष्टि सदैव आलोचनात्मक रहती है। वे अपना मार्ग, लक्ष्य व अपनी समस्याओं को पहचानते हैं और उसी के अनुरूप अपनी रणनीति बनाते हैं। माया को महाठगिनी कहते हैं, उसके नस-नस को पहचानते हैं और संसार के

प्रति नेह को जला देने का भजन गाते हैं।

नेतृत्व करने वाले व्यक्ति में दूरदृष्टि होती है, वह दूरद्रष्टा होता है। कबीर का कहना है जिसका गुरु अंधा है, शिष्य अंधा होगा ही और दोनों भटक जायेंगे। कबीर की दृष्टि थी भ्रम और अंधकार से निकलकर सत्य, प्रेम और परमात्मा तक पहुँचना। वे इसके लिए नाना बिंबों का रहस्य समझाते हैं, निर्गुण भजन सुनाते हैं और ईश्वर से जुड़ने की बात करते हैं। क्रोध, मद, लोभ से दूर रहने का संदेश देते हैं। कबीर अपने जैसों की तलाश करते हैं जो ईश्वर में लगे हुए हों। प्रताप नारायण सिंह जी अनेक कम्पनियो के प्रबंधन की चर्चा करते हुए कबीर के मार्ग की व्याख्या करते हैं। कबीर चौकन्ना रहने की बात करते हैं और जीवन में उसका लाभ बताते हैं। इस तरह वे विलक्षण दृष्टि वाले युगपुरुष थे और उनकी शिक्षाएं प्रबंधन में खूब काम आती हैं। इसी कड़ी में प्रताप नारायण सिंह प्रबंधन की दृष्टि से प्रामाणिकता और आत्मजागरुकता की चर्चा करते हैं। कबीर ज्ञान की आँधी में भ्रम के उड़ जाने का दृष्टान्त बताते है, आत्मजागरुकता प्रदर्शित करते हैं और अपने भजनों, दोहों या निर्गुनों में पूरी प्रक्रिया समझाते हैं। जागरूक व्यक्ति का भटकाव नहीं होता, वह यथेष्ट मार्ग सहज ही प्राप्त कर लेता है और पूरे समाज को दिशा दिखाता है। कबीर अपनी विफलता का कारण बताते हैं कि मैं उन्हें बाहर-बाहर खोज रहा था, मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारे में खोज रहा था, कर्मकांडों में तलाश रहा था। अंत में उन्होंने बाहर की तलाश बंद कर दी और अपने भीतर की तलाश शुरु कर दी, कबीर को सब कुछ मिल गया।

प्रबंधन का एक अंग यह भी है, कार्य सिद्धि के लिए अपना ध्यान लक्ष्य पर केन्द्रित रखना चाहिए। कबीर मन की माला को फेरने की सलाह देते है और अपनी दृष्टि, अपने लक्ष्य पर रखते हैं। जो व्यक्ति अपनी प्रवृत्ति को अन्तर्मुखी करके स्वयं पर विचार करता है, स्वयं कहता है, स्वयं सुनता है और स्वयं को ही बताता है वह ज्ञानी होता है। कबीर कहते हैं मन उलटकर मन में ही समा गया अर्थात बाहर के भटकाव से मुक्त होकर अन्तर्साधना में लग गया। अपनी संवेदनाओं को केन्द्रित करना आत्मजागरूकता का प्रमुख तत्व है और प्रबंधन में काम आता है। इसमें तीन तरीकों की चर्चा प्रताप नारायण सिंह ने विस्तार से की है स्वयं पर ध्यान केन्द्रित करना, दूसरों पर ध्यान केन्द्रित करना और बृहद जगत पर ध्यान केन्द्रित करना। कबीर को पढ़ते हुए इन तीनों का ज्ञान मनुष्य ग्रहण करता है और आगे बढ़ता जाता है। लेखक ने इसी कड़ी में धैर्य और लगन पर गहन विचार किया है। सांसारिक प्रबंधकीय चिन्तन या जीवन के प्रबंधन में धैर्य और लगन की महत्ता किसी भी तरह कम नहीं है। कबीर बार-बार धैर्य धारण करने और लगन से काम करने की सलाह देते हैं। प्रताप नारायण सिंह ने इस प्रसंग में अनेकों उदाहरण देकर धैर्य और लगन को समझाने का प्रयास किया है और कबीर के उपदेशों से सम्बद्ध किया है।

'पारस्परिक संचार' की चर्चा करते हुए लेखक ने कबीर के संवाद या संबोधन को तीन हिस्सों में बाँटा है। कबीर स्वय को संबोधित करते हैं, दूसरा परमेश्वर से संवाद करते हैं और तीसरा संबोधन सम्पूर्ण जगत के साथ होता है। संवाद द्विपक्षीय होना चाहिए तभी सफलता मिलती है। कबीर अपने शिष्यों को समझाते हैं तुमने अपने आसपास केवल पाखंड देखा है, वे सृष्टि का रहस्य समझाते हैं और भीतर ज्ञान के प्रकाश की बात करते हैं। प्रताप नारायण सिंह जी प्रबंधन के लिए परस्पर संवाद में सक्रिय होकर सुनना, भरोसेमंद होना, समान अनुभव करना आदि के बारे में बताते हैं। पारस्परिक संचार कौशल से प्रगाढ़ सम्बन्ध बनते हैं। कबीर ज्ञान और प्रेम के ऐसे विक्रेता हैं जो अपने खरीददार से कोई मूल्य नहीं लेते, वे सुपात्र की तलाश करते हैं और अधूरे ज्ञान को खतरनाक बताते हैं। प्रबंधन की दुनिया में प्रेरक तत्वों या प्रेरणा के स्रोतों को बहुत महत्व दिया जाता है। कबीर बार-बार रटने वालों पर आक्रमण करते हैं, ऊँच-नीच के विचारों का विरोध करते हैं, कर्मकांड और भौतिक क्रियाओं से असहमति जताते हैं। कबीर ने वंचितों को सम्बल दिया और सबल मठाधीशों को फटकारा। सकारात्मक दृष्टिकोण को अपनाना, सहयोगियों का विश्वास जीतना, निष्ठापूर्वक प्रदर्शन करना, अग्रदूत बनना और सबके लिए समय देना आदि कबीर के प्रेरक कर्म विचार

है। वे समाज के प्रेरणास्रोत बन गये। प्रबंधन में प्रोत्साहन और सहयोग की महत्ता है। कबीर कहते है कि जन्म से कोई नीच नहीं है, मनुष्य नीच अपने कर्म से होता है।

'निरंतर सुधार' करते रहना प्रबंधन का महत्वपूर्ण चिन्तन है। कबीर उसी भाव से लिखते हैं 'मन रे जागत रहिए भाई!' एक बार जागकर सो नहीं जाना है, सावधान रहना है और लगातार जीवन में सुधार करते रहना है। कबीर का संदेश है, काम, क्रोध, मद, लोभ क्षण भर में अपनी चपेट में ले लेते हैं और सारा किया धरा चौपट हो जाता है। कबीर विश्वामित्र, नहुष जैसे प्रतापी लोगों के भटकाव का उदाहरण देते हैं और लगातार सजग सावधान होने को कहते हैं। वे कुंडलिनी के लिए छह चक्रों तक उसके सोने की बात करते हैं और अंतिम सहस्रार चक्र में उसका जागना ही उद्देश्य है। किसी भी प्रबंधन में निरंतर परिष्करण करते रहना है। इसके लिए प्रताप नारायण सिंह कुछ बिन्दुओं की चर्चा करते हैं जैसे कार्य पद्धति के प्रति जागरूकता, सुधारों को सहजता देना, नीतिगत चतुराई, सहयोग और सशक्तिकरण आदि। साथ ही 'कौशल विकास' पर लेखक ने गम्भीर चिन्तन किया है और कबीर के मत विचार से जोड़ा है। कबीर मन से सारे भेद मिटाने का संदेश देते हैं और समस्त मानव को एक समान समझने को कहते हैं। वे सभी के प्रति प्रेम विकसित करना चाहते हैं। परमात्मा जीवात्मा सब एक समान है, कबीर भ्रम न पालने की सलाह देते हैं। आज के प्रबंधन में कौशल विकास अनिवार्य हिस्सा है, वह हमारे सामने नए-नए विकल्प खोल देता है। नवीन स्वस्थ विचारधारा अपनाने से विकास त्वरित होता है, युगानुरुप होता है। प्रताप नारायण सिंह ने कौशल विकास को लेकर सशक्त उदाहरण दिए हैं और प्रशिक्षण पर जोर दिया है।

'नम्यता' या 'नमनीयता' जीवन का सशक्त गुण है। नम्यता का अर्थ होता है लचीलापन अर्थात एक ही आकार में दृढ़ न रहना। कबीर अपने आराध्य के लिए नाना तरह का चिन्तन करते हैंएनाना रुपों में तालमेल बनाते हैं, उनसे विवाह रचाते हैं और मंगलगान के लिए सभी दुलहिनों, सुहागिनों को आमंत्रित करते हैं। 'हरि मोर पियू मैं राम की बहुरिया रे' कबीर राम को अपना प्रियतम मानते हैं। वे रुपकों का प्रयोग करते हैं और अपने सम्बन्धों की व्याख्या करते हैं। प्रबंधन में नम्यता के बिना काम नहीं चलता। आज तेजी से आर्थिक व सामाजिक परिवेश बदल रहा है, बहुत कठोर होने से बात नहीं बनती। प्रताप नारायण सिंह ने कबीर के चिन्तन के आधार पर आज के प्रबंधन में नम्यता को जोड़ने की कोशिश की है। कबीर इतने नम्य हैं, उनका अपना कुछ भी नहीं है, वे कहते हैं 'हे ईश्वर! मैं तो तुम्हारा गुलाम हूँ, मुझे जैसे रखो या बेच दो।' कबीर अनेक भावों को लेकर ईश्वर के प्रति अनेक सम्बन्ध प्रकट करते हैं और यही उनकी नम्यता है।

'मैनेजमेंट गुरु कबीर' पुस्तक के अंत में प्रताप नारायण सिंह ने 'कबीर की प्रासंगिकता' शीर्षक से सार्थक लेख लिखा है। कबीर की वाणी से निःसृत उपदेश लोगों के लिए सफल, सार्थक और श्रेष्ठ जीवन जीने में सहायक रहे हैं और आज भी प्रेरित करते हैं। उनके भजन गाए जाते हैं और प्रेम से सुने जाते हैं। लेखक ने कबीर की प्रासंगिकता को दार्शनिक दृष्टि से, सामाजिक दृष्टि से, नैतिक व आर्थिक दृष्टि से समझने, समझाने का विस्तार से, अनेकों उदाहरणों सहित प्रयास किया है और प्रमाणित किया है। कबीर का जीवन, उनका उपदेश, उनका संदेश जीवन प्रबंधन में प्रासंगिक और सहायक है, यह समझने की, अपने तरह की शायद यह पहली कोशिश है। यह पुस्तक कबीर दर्शन तो समझाती ही है, वर्तमान प्रबंधन से जोड़कर शिक्षण प्रशिक्षण का विस्तृत आकाश दर्शाती है। कबीर स्वयं पढ़े लिखे नहीं थे परन्तु जीवन में ईश्वर को सम्मिलित करके सहज जीवन का मार्ग दिखा गए हैं।

समीक्षित कृति : मैनेजमेंट गुरु कबीर
लेखक : प्रताप नारायण सिंह
मूल्य : रु 250/
प्रकाशक : डायमंड बुक्स, नई दिल्ली

पुस्तक समीक्षा-4

सींग उग आने का डर

समीक्षक : वीरेन्द्र नारायण झा

सच्ची बताऊँ, नाम से मैं इस कदर खौफजदा था कि इस किताब को पढ़ते हुए डर लग रहा था। डरना भी इंसानी फितरतों में से एक है, जो बहुत ही अहम और आवश्यक है। इसलिए कि डर से ही आदमी सतर्क और सावधान रहता और दूसरा, डर के आगे जीत है, आपने सुना ही होगा। अगर नहीं सुना है तो आज सुन लीजिए। क्योंकि सुनने में तो कोई हर्ज नहीं, डरने पर न जीत या हार का डर है।

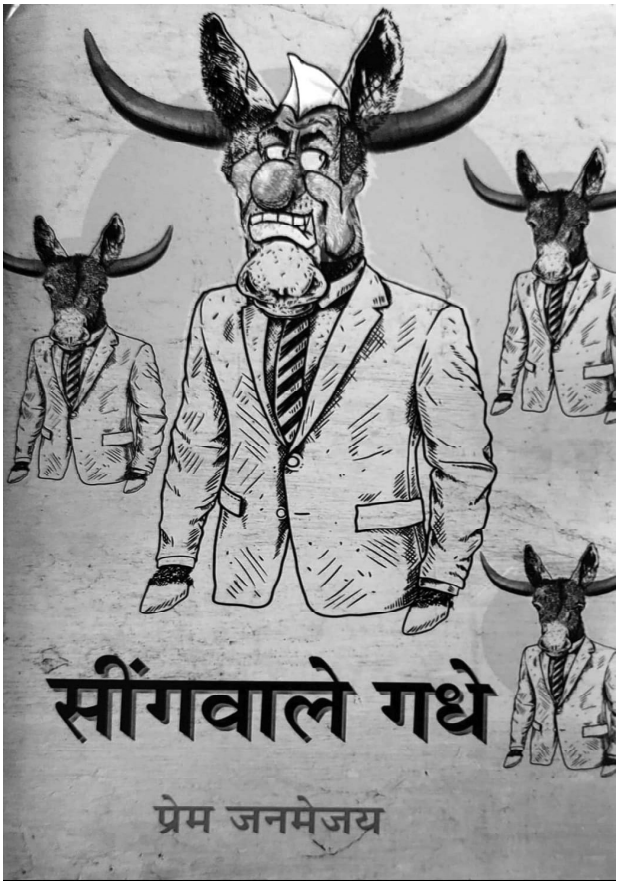

हुआ यूँ कि सींगवाले गधे को पढ़ना तो शुरू कर दिया मैंने, लेकिन मन में आशंका कम डर ज्यादा घर किए हुए था कि कहीं मेरे भी न सींग उग आएँ!

जी हाँ, हँसिए मत, ऐसा होता है। अमूनन हर पाठक किसी किताब को पढ़ते हुए उसके किरदारों और वाकिआतों में खुद को देखने लगता है, महसूस करने लग जाता है। यानी खुद पात्र की भूमिका में आ जाता है। जाहिर सी बात है, यहाँ शीर्षक ही गधा है, तो इसे पढ़ते हुए मैं भालू या शेर की खाल तो नहीं ओढ़ लेता।

कुछ भी कर लेता, गधा का गधा ही रहता न। गधा होता तो कोई बात नहीं, आज के समय में हम अक्सर गधा बनते या बनाते रहते हैं। जी हाँ, यहाँ लेखक ने बनाया और हम बने, सीधी बात है। कोई अगर-मगर नहीं। मैं यह कह रहा था, गधा बना तो कोई बात नहीं, मगर सिर पर सींग मुझे कतई मंजूर नहीं।

बस यही डर मुझे सता रहा था। सो, मैं रह-रह कर अपने सिर पर हाथ फेर लिया करता था कि कहीं. ..सही में तो नहीं उग रहा है! आखिर अपन भी न पुराने पढ़ाकू हैं, सींग के जन्म लेने से पहले ही प्रेम जनमेजय जी की अद्यतन व्यंग्य किताब खतम कर ली...लो अब न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी।

यह पूर्णतः और शुद्धतः व्यंग्य विधा में लिखी गई किताब है, जिसमें कुल चालीस रचनाएँ हैं। मैंने पूर्णतः और शुद्धतः शब्दों का इस्तेमाल इसलिए किया है कि प्रेम जी जब जिस विधा में लिखते हैं, मानो उसी विधा के हो जाते हैं। वैसे, व्यंग्य की बाबत कई साहित्य मनीषियों का कथन है कि यह हर एक विधा का जरूरी श्रृंगार है, अलंकार है। पर यहाँ तो समग्र पुस्तक ही उसी श्रृंगार और अलंकार में सजाई गई है। अर्थात, पूरी की पूरी किताब सूक्ष्म और तीक्ष्ण व्यंग्य को

प्रतिबद्ध है।

प्रेम जनमेजय जी की यह लेखकीय खासियत है कि वह व्यंग्य लिखते नहीं, पर जो लिखते हैं वही व्यंग्य हो जाता है। इसे ऐसे भी समझा जा सकता है कि व्यंग्य खुद इनसे लिखवा लेता है, जब ये लिखने को होते हैं। यह मैं नहीं कह रहा, बल्कि इनकी किताब कहती है। जैसे, पेन से जब हम कुछ लिख रहे होते तो स्याही सोचकर नहीं लिखते, लेकिन हर लफ्ज़ से स्याही निकल रही होती है, और इसी तरह इनका व्यंग्य नमूदार होता रहता, जब वे लिखते हैं।

नतीजतन, हरेक पंक्ति किसी न किसी कटाक्ष, तंज, प्रहार तो कहीं चुटकी को समेटे चलती है। कहने का अभिप्राय यह कि बगैर कोई अतिरिक्त प्रयास के इनके कथन व्यंग्य उगलते चलते हैं और पाठक को भी इसे समझने के लिए बहुत 'मशक्कत' या 'कुश्ती' करने की जरूरत नहीं पड़ती। संभवतः यह इनकी सम्प्रेषणीय शक्ति का कमाल हो! इससे यह बात भी साबित होती है कि व्यंग्य की इनकी समझ-परख और पैनी दृष्टि इतनी मजबूत और समृद्ध हो गई है कि हमें कोई भी वाक्य एक धारदार पर गुदगुदाते व्यंग्य का आस्वादन करा जाता है और वह भी बड़े सरल तरीके से।

दूसरे, जब ये अपनी बात कह रहे होते हैं, तो कहीं भी बनावटी या आडम्बरपूर्ण भाषा और वाक्य विन्यास का मानो सहारा लिए बगैर कह जाते हैं और पढ़ने वाला जब पंक्ति खत्म कर लेता तब अचानक भीतर से, स्वस्फूर्त ऐसे शब्द-भाव प्रस्फुटित होते जो पाठक को किसी तीखे और मीठे व्यंग्य का रसपान करा जाते। हो सकता है, भले कोई इस पर सपाटबयानी अथवा सतहीपन का आरोप मढ़ दे, लेकिन दुनिया इस सच्चाई को स्वीकार करती है कि सरल लिखना जितना कठिन है उतना शायद कठिन लिखना नहीं। सवाल यह भी है कि भाषा सरल हो या कठिन, उसकी सम्प्रेषणीयता असरदार है या नहीं, तो इस मामले में भी प्रेम जी बाजी मार जाते हैं। पूरी किताब को पढ़ने के बाद मैंने ऐसा पाया कि किताब के कोने-कोने में व्यंग्य छुपा हुआ है, बस खोजने वाला चाहिए। शीर्षक कथा सींगवाले गधे को ही लें, गधे को प्रतीक बनाकर आज की बीमार और स्वार्थी राजनीतिक व्यवस्था पर इतना महीन कटाक्ष किया गया है कि शायद गधा भी शरमा जाए! और पढ़ने वाला सोच में पड़ जाए कि क्या एक गधा जिसे मूर्ख और मंदबुद्धि प्राणी की श्रेणी में रखा गया है, जो मानव निर्मित विसंगतियों को उकेरने के लिए इस तरह भी कारगर साबित हो सकता है, यकीन नहीं होता! माना कि यह लेखक का शिल्प कौशल है, लेकिन ऐसा मुमकिन हो पाया है गधे के बलबूते ही। अब इस हकीकत को तो नहीं ठुकराया जा सकता है, बेशक गधे को ही ठुकरा दिया जाए, किताब पढ़ने के बाद। इस कथा में प्रश्न के माध्यम से वर्तमान राजनीतिक नेताओं पर कटाक्ष किया जाता है,

क्या सभी सींगधारियों की समान भाव से पूजा अर्चना की जाती है?

नहीं सींगधारी! जो दुधारू होते हैं, उनकी अधिक होती है।

गधे दुधारू भी होते हैं?

सभी प्रकार के प्रभु चारि फलदायक होते हैं। गधा भी तभी प्रभु होता है, जब वह दुधारू होता है। वही सींगवाला गधा समाज में सम्मान पाता है जो दुधारू होता है।

प्रेम जनमेजय जी के यहाँ न तो व्यंग्य विषय की कमी है न ही व्यंग्य दृष्टि की, इसलिए जहाँ हमारी नजर और सोच पहुँच भी नहीं पाती, वे वहीं से व्यंग्य लपक लेते है। ऐसा मेरा अनुमान नहीं है, बल्कि इनकी किताब के पन्ने इस बात की तस्दीक कर रहे हैं। दूसरी तरफ अगर मुद्दे पुराने व सामयिक भी हैं तो उनकी प्रस्तुति बिलकुल अलग और नायाब हैं।

मानो पुरानी बोतल में नई शराब पैक कर दी गई हो, न कि नई बोतल में पुरानी शराब। कहीं प्रभु और जनता आती है तो दूसरी जगह राजनीति और चुनाव। वहीं मौसम, प्रदूषण, बसंत, साहित्य, लेखक, आलोचक, बुकर प्राइज, होली, लॉकडाउन, सावन, क्रेडिट कार्ड आदि विषयों को केंद्र में रखकर जो कटाक्ष किए गए हैं, वे व्यंग्य के सारे मानदण्डों और मापदण्डों को पूरा करते हैं।

साथ ही बीच-बीच में फिल्मी गीत, संवाद और कहावतों का इतना सुंदर समावेश हुआ है कि पाठक कुछ देर के लिए

ठहराव महसूस करते हुए गुदगुदा जाता है और फिर आगे उसी शिद्दत से पढ़ने लगता है, जिस शिद्दत से शुरू किया होता है। यह व्यंग्य लेखन कला की तासीर है और कुछ नहीं। मैं यहाँ प्रेम जी के व्यंग्य के कुछ नमूने उद्धरित करना चाहूँगा, जो इसी किताब से लिए गए हैं। हालाँकि ज्यादा

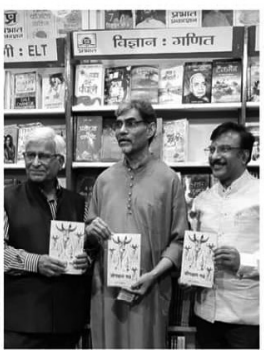

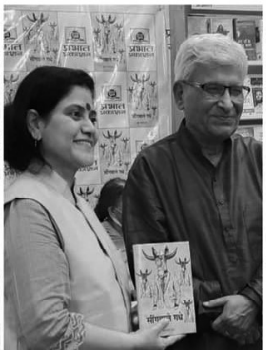

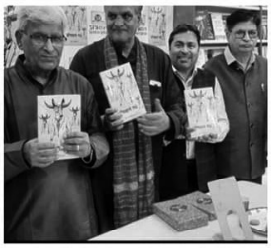

पेश करना संभव नहीं है, फिर भी दो-चार ही सही। ताकि व्यंग्य की दृष्टि से इनका नजरिया प्रकट हो सकेः

"पुरस्कार अच्छे-अच्छों को ज्ञानी बना देवे है। ज्ञानी क्या जे ते धार्मिक भी बना देत है।" (दो वैष्णवन की वार्त्ता) मैंने संपादक को आइडिया समझाया तो वह चहक गया और बोला, "वाह! लंगोट लाइनर... बहुत हिट होगा...पैंट को लगोंट बनाएँगे...वाह सर! व्यंग्य में धमाका हो जाएगा।" (मेरा लाइनर)

'तेरी दो टकिया दी नौकरी, मेरा लाखों का सावन जाए।' पर आजकल तो लाखों की नौकरी है टके सेर सावन है। (टके सेर सावन)

सही कहा राधेलाल ने, जैसे जहर को जहर काटता है, वैसे ही प्राकृतिक प्रदूषण को राजनीतिक प्रदूषण काटता है। चुनाव के सामने कोरोना नहीं टिक पाता है तो प्रदूषण क्या टिक पाएगा। (वसंत चुनाव लड़ रहा है)

आजकल हिंदी के कुछ अखबारों को पढ़कर हिंदी और अंग्रेजी भाषा के अखबारों को एक साथ पढ़ने का सुख मिलता है। (दुविधाभोगी)

'हमें लड़की तीन कपड़ों में चाहिए' से आरम्भ हुआ लड़केवालों का वाक्य तब तक समाप्त नहीं हुआ, जब तक हमारे तन पर तीन कपड़े नहीं रह गए। (अथ क्रेडिट कार्ड महिमा)

मैं प्रस्तुत किताब के लिए प्रेम जी को बधाई देते हुए पाठकों से कहना चाहूँगा कि वे इसे जरूर पढ़ें और सिर्फ व्यंग्य की ही नहीं, अपितु धारदार व्यंग्य का आनंद लें।

मैं इस मुहिम के लिए भी लेखक का शुक्रिया अदा करना चाहूँगा जो उन्होंने व्यंग्य को समृद्ध करने के वास्ते छेड़ रखी है। इसका सबसे बड़ा सबूत है त्रैमासिक "व्यंग्य यात्रा" पत्रिका जो इनके संपादकत्व में इनके द्वारा वर्षों से नियमित निकल रही है।

पुनश्च

डॉ. संजीव कुमार के कविता संग्रह "कोणार्क" के बहाने

दिनेश कुमार माली

विश्व सभ्यता में ऐसा समय था, जब सूर्य को सबसे बड़ा देवता माना जाता था। वेदों के प्रथम मंत्र 'गायत्री मंत्र' में सवितु शब्द सूर्य का पर्यायवाची है। विश्व के अनेक देशों में सूर्य मंदिर थे, कभी परसिया में सूर्य मंदिर था मिहिर नाम से, जब वहाँ के लोग भारत आए तो उन्होंने पंजाब के मुल्तान में अपने कुलदेवता का वैसा ही सूर्य मंदिर बनाया, जिसका चीनी परिव्राजक ह्वेनसांग ने अपने भारत की यात्रा संस्मरण में जिक्र किया है, इस मंदिर को शायद बाद में औरंगजेब ने तोड़ दिया था। उसी तरह ओड़िशा में 'कोणार्क' का सूर्य मंदिर विश्व विख्यात है, भले ही वर्तमान में जीर्ण-शीर्ण अवस्था में क्यों न हो। कहते हैं कि कोणार्क शब्द की उत्पत्ति अर्क क्षेत्र की अधिष्ठात्री देवी कोणार्क के नाम पर हुई, जबकि कोणार्क का संधि-विच्छेद करने पर बनता है, कोण+अर्क। अर्क का अर्थ होता है सूर्य तो कोणार्क का अर्थ हुआ सूर्य का कोण, इसी कोण पर सूरज की पहली किरण पूर्वाशा में गिरती हैं। विदेशी लोग इस मंदिर को ब्लैक पैगोड़ा कहते हैं तो जगन्नाथ मंदिर को व्हाइट पैगोड़ा। जयशंकर प्रसाद जी ने अपनी कविता 'भारत महिमा' में लिखा है–

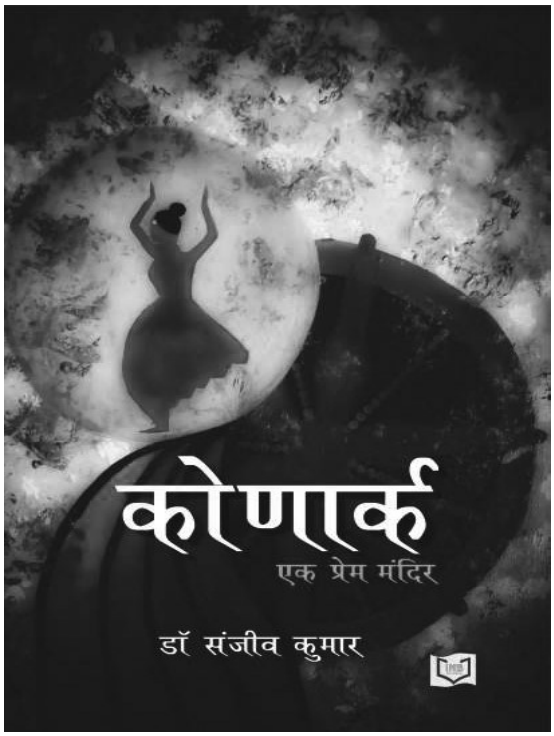

हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार
उषा ने हंस अभिनंदन किया और पहनाया हीरक हार

अगर जयशंकर प्रसाद जी कोणार्क में आँगन में आते तो उनके मुख से कविता की ये पंक्तियाँ ऐसे बदल जाती कोणार्क के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार।

संप्रति मुझे 1993 से 2023 तक ओड़िशा में रहते हुए तीन दशक पूरे हो गए, इस वजह से सूर्य की प्रथम किरणों की इस उपहार स्थली 'कोणार्क' देखने का अनेक बार अवसर मिला है, कम से कम दस बार तो अवश्य ही, अपने परिजनों के साथ, अपने सगे-संबंधियों के साथ और अपने मित्रों और सहयोगियों के साथ। जितनी बार वहाँ जाता था, उतने ही नए-नए कन्सेप्ट साथ लेकर घर आता था। कपिल संहिता, मदलापाँजी, प्राची माहात्म्य, शांब पुराण और भविष्य पुराण सभी के उज्ज्वल पन्नों में कोणार्क का नाम स्वर्ण अक्षरों में अंकित है। ओड़िया साहित्य में अभिरुचि होने के कारण प्रख्यात ओड़िया कवि सीताकांत महापात्र की कविता 'ओड़िशा' की ये पंक्तियाँ शुरू से ही मुझे हमेशा से आकर्षित करती रही हैं–

अपने साथ ले जाता हूँ
भग्न-मंदिर की भित्तियों पर
समय की अनदेखी कर
सबकी नज़रों से बचते-बचाते

अपलक दूर निहारती प्रेमलीला के रस में
डूबी भृत्य नायिकाएँ;

जब मुझे इन पंक्तियों का गूढ़ार्थ पता चला कि ये पंक्तियाँ कोणार्क के भग्न-मंदिर का प्रसंग है तो मुझे बार-बार वह मंदिर अपनी तरफ खींचने लगा। इसी तरह कोणार्क को केवल पिकनिक स्पॉट के रूप में देखने वालों पर करारा व्यंग्य करती हुई भानुजी राव की कविता 'कोणार्क' पढ़ी तो मन में एक ही पंक्ति बार-बार उभरकर तरोताजा हो जाती थी, वह थी 'क्या तुमने कोणार्क देखा है?'

हम शहरी लोग
निकले देखने को कोणार्क!
गाडी से उड़ाते लाल धूल के गुबार
मुँह में चुरूट, कंधे पर थैली
बैठे चिपकाकर कुर्ते और चोली।

हम भद्र जन
पहने हुए सोने के बटन
साथ में ताश, ग्रामोफोन
और पास बोतल में रम

शहर की सीमा से दूर अंधेरे में
एक ग्राम
पता नहीं उसका नाम
वहाँ पर ठहरे हम
नारियल पानी पीने की हुई इच्छा भारी
सामने दिखाई पड़ी एक किशोरी?
देख रही शांत-भाव से वह गोरी
गाय की तरह भोली

चुपचाप बैठा मैं
ध्यान मग्न
तभी दिखाया संगिनी ने
बॉस की झाड़ियों के सामने कबूतर
कहीं धान के खेत
कहीं झाऊँ और बादाम के वन
किसी के बरामदे में लटकती लौकी
ये सब देखा हमने
सूरज रहते-रहते।

उसके बाद हो गई रात
चमकने लगे पोलांग पेड़ के पात
ऊपर चाँद की चाँदनी
नीचे विस्तीर्ण घास की चटाइयाँ
जिस पर बादलों के जादू से
कई छोटी कई बड़ी परछाइयाँ।

ये सब देखा हमने
धूल और चुरूट के धुएँ में
"क्या तुमने कोणार्क देखा है?"
लाल होंठों वाली लड़की ने पूछा
"अंगड़ाई लेती कन्या की छाती
वास्तव में पत्थर से गठित?"
दांत दबाकर हँसा वह
अपनी बहुत कीमती हँसी

उसके बाद पार किये हमने
अनेक झाऊँ जंगल
अनेक रेत के टीले
गोप गाँव...निमापाड़ा
सोचा हमने बहुत बड़े होंगे कोणार्क के हाथी
और घोड़े।

सोते-सोते सोच रहा था मैं
भूल जाउँगा आगे और पीछे
आँखें तरेरते, भृकुटी सिकोड़ते
थोड़ा हँसते हुए पूछा,
उस लड़की ने मुझसे
"क्या तुमने कोणार्क देखा है?"

कोणार्क पर कविताओं के बाद ज्ञानपीठ से पुरस्कृत प्रतिभा राय का बहुचर्चित और ओड़िशा साहित्य अकादमी से पुरस्कृत ओड़िया उपन्यास 'शिलापद्म' (जिसका हिन्दी अनुवाद डॉ. शंकर लाल पुरोहित ने 'कोणार्क' और अंग्रेजी अनुवाद मोनालिसा जेना ने 'सिटाडेल ऑफ लव' के नाम से किया है।) पढ़ने का लोभ रोक नहीं पाया, जिसमें उन्होंने अपनी

भूमिका में भी भानू जी राव की कविता की तरह अपनी मनोव्यथा प्रस्तुत की है–

"परंतु आज जो कोणार्क देखने आते हैं, उनमें धर्म भावना या कलानुराग से बढ़कर आमोद-प्रमोद, मनोरंजन या मौज-मस्ती की वासना अधिक मुखर होती है। वे आज कोणार्क को तीर्थ या कला के दर्शन का पीठ नहीं मानते, बस आमोद-प्रमोद की जगह मानते है। पिकनिक स्पॉट के स्तर पर। कोणार्क मंदिर जीवन चक्र की एक चित्ताकर्षक चित्रशाला होते हुए भी यहाँ खुदी सृष्टिचक्र की प्रतीक शृंगार रस संबलित मिथुन मूर्तियाँ ही ज्यादातर लोगों के आकर्षण का प्रधान केन्द्र रही है। कुछ विद्वान तो कहते हैं कि मिथुन मूर्तियाँ कोणार्क कला का कलंक हैं। कुछ इन दृश्यों के प्रति मन में वितृष्णा भाव रखते हैं और कुछ तो मंदिर निर्माता, तत्कालीन सामाजिक जीवन और कलिंग शिल्पियों की विचारधारा अतिनिम्न कहने से भी नहीं चूकते।"

चूँकि कोणार्क मेरे लिए अभी भी एक अनसुलझी पहेली है, इस वजह से कोणार्क पर जो भी पाठ्य-सामग्री मिलती है, मैं बड़े चाव से पढ़ता हूँ। वर्तमान में आईआईएम, सम्बलपुर के प्रोफेसर सुजीत पृसेठ द्वारा संपादित ओड़िशा पर्व में देवल मित्रा का में प्रकाशित अंग्रेजी आलेख 'कोणार्कः लिजेंड एंड हिस्ट्री', मुल्क राज आनंद का 'होमेज टू कोणार्क', एलिस बोनर का 'कॉन्सट्रक्शन ऑफ कोणार्क' और इसी तरह ओड़िया में प्रकाशित आलेख पंडित कृपासिंधु मिश्र के आलेख 'कोणार्क किंवन्दती', 'कोणार्कर पतन', 'कोणार्करि लूहार व्यवहार' मनोज दास का 'कोणार्क संधान' और अनिल डे का 'कोणार्कः एक दार्शनिक चिंतन' आदि पढ़ने का अवसर मिला है। जिनका प्रयोग मैं डॉ. संजीव कुमार का कविता-संग्रह 'कोणार्कः एक प्रेम मंदिर' पर अपनी बात रखने के बहाने कर रहा हूँ क्योंकि एक साथ असंख्य तरंगें मेरे मन-मस्तिष्क पर आघात कर रही हैं। हो सकता है, कवि डॉ. संजीव कुमार के सजीव भावों का ऊर्जास्तर मेरे हृदय को आंदोलित कर रहा हो और झकझोर रहा हो, उनकी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति और नैसर्गिक कल्पना की टोह लेने के लिए।

ब्रिटिश साहित्य आलोचक कॉलरिज के अनुसार कल्पना शक्ति ही लेखन का मूलाधार है तो फ्रायड के अनुसार काम मनोविज्ञान और टी.एस. इलियट के अनुसार हमारी परंपराएँ। कोणार्क मंदिर में तो असंख्य परंपराएँ हैं, काम का मनोविज्ञान भी है तो कल्पना शक्ति की दीर्घ उड़ान भी। नग्न कामुक मूर्तियाँ भी है, और असंख्य फैंटेसियाँ भी।

कुल मिलाकर कोणार्क मंदिर का परिवेश आपके अंदर सोए हुए लेखक, कवि, समालोचक, गीतकार, दार्शनिक किसी को भी जगा सकता है, बस आवश्यकता है तो किसी उद्दीपण की, किसी उत्प्रेरक की। कौन-सा पल आपके जीवन को किस मोड़ पर ले जाएगा, आपको भी मालूम नहीं चलेगा, आपकी आस्था-विश्वास सूर्य देव का आशीर्वाद या अभिशाप बनकर उभरेगा, यह सब आपके भाग्य का खेल होगा या फिर प्रारब्ध। यह सर्वविदित है कि साहित्य-सर्जन तो एक धुन होती है, सनक होती है, पागलपन होता है, आपके भीतर उठ रही अभिव्यक्ति की ज्वालामुखी फूटने से पहले अपने रास्तों का निर्धारण स्वयं करती है, इस वजह से डॉ. संजीव कुमार अमेरिका से दो बार कोणार्क आए, कोणार्क के पत्थरों पर लिखे महाकाव्य को अच्छे से पढ़कर अपनी भाषा में रूपांतरित करने के लिए। कोणार्क पहुँचने का रास्ता काफी विस्तृत है, दोनों तरफ काजू और झाऊँ वन, पोलांग के चमकीले पेड़, बाँस की झाड़ियाँ। शाम के समय सूर्य की लालिमा यह दिखाती है कि कुछ ही क्षणों में उसका क्षेत्र मद्धिम-मद्धिम रोशनी वाले बल्बों से जगमगाने लगेगा और सूर्य देव अपने कार्य से मुक्त होकर विश्राम लेने जाएँगे। सामने चंद्रभागा नदी, जहाँ सूर्य की प्रथम किरण गिरती है और चारों तरफ बिखेर देती है लोककथाएँ ही लोककथाएँ, 'कथासरित सागर' की तरह। प्रसिद्ध ओड़िया कवि राधानाथ राय ने एक काव्य लिखा है– 'चंद्रभागा' काव्य। जिसके अनुसार कभी इस इलाके में सुमन्यु ऋषि तपस्या किया करते थे, उनकी एक सुंदर लड़की की अपूर्व सुंदरता को देखकर सूर्य का मन डोल गया। यह कथानक यूरोपियन मिथक अपोलों और डाफने से लिया गया है।

जगन्नाथ के पुष्पाभिषेक में बहुत सारे देवी-देवता स्वर्ग से आमंत्रित किए गए थे। संबलेश्वरी से समलाई, चिलिका लेक से कालिजाई इस तरह कई देवी-देवता पधारे थे। सूरज

भी था और कामदेव भी। दोनों में कुछ अनबन हो गई, इसलिए मजा चखाने के लिए कामदेव ने सूरज पर काम-वासना का तीर चला दिया और उसका विपरीत तीर चंद्रावती पर। सूरज से बचने के लिए चंद्रावती ने नदी में कूदकर आत्महत्या कर ली। तब से इस नदी का नाम पड़ा 'चंद्रभागा'। जब सुमन्यु ऋषि को ध्यान में अपनी बेटी की आत्महत्या का कारण पता चला तो उसने सूर्य को अभिशाप दे दिया कि इस क्षेत्र में कभी भी तेरा मंदिर नहीं बनेगा और नहीं तेरी यहाँ पूजा होगी।

उस अभिशाप से कोणार्क में न तो सूर्य मंदिर बन पाया और न ही वहाँ उसकी पूजा होती है। चंद्रभागा नाम भले ही रहा हो, मगर थी तो अभागिन ही, तभी तो अहिल्या को दूषित करने वाले चंद्रमा की तरह उसके पीछे सूरज लग गया। भारत में देवी-देवता भी बड़े खतरनाक होते हैं, अविश्वसनीय होते हैं, कब किसे कौन पसंद आ जाए, कह नहीं सकते और वे अपना रूप बदलकर कब किसका शीलहरण कर ले। अगर यह असत्य है तो राधानाथ राय जैसे कल्पनाशील कवि अपनी फैंटेसियों में देवी-देवता, ग्रह-उपग्रह आदि को भी इस तरह ले आते हैं, मानो घटना मिथकीय, लोककथा न होकर सत्य लगने लगती है। शायद कोणार्क के सूर्य मंदिर के भग्न होने का राज खोजने के लिए उन्होंने अपने काव्य की अंतर्वस्तु में चंद्रभागा नदी का मानवीकरण तो नहीं कर लिया?

चंद्रभागा से थोड़ा-सा आगे जाने पर एक राजकीय विश्रामालय आता है और कुछ सरकारी कार्यालय, उसके थोड़ा-सा आगे यूनेस्को द्वारा मान्य विश्व धरोहर कोणार्क मंदिर। आज का कोणार्क मंदिर पुराने कोणार्क मंदिर से पूरी तरह अलग है, अलग बस स्टेशन है, टैक्सी स्टैंड है, लाइट-साउंड शो की व्यवस्था है, प्रेक्षागृह है जहाँ ऑडियो-विजुअल फिल्म दिखाई जाती है और कोणार्क का अर्काइव म्यूजियम भी। लाइट साउंड शो भी देखा जा सकता है। कोणार्क देखने से पहले उसकी पौराणिक गाथा पर एक बार दृष्टि अवश्य डालें:

"कृष्ण के पुत्र शांब को दुर्वासा मुनि का अभिशाप लगा था इसलिए उन्हें कोढ़ हो गया था। उन्होंने ऋषियों के वचनानुसार इस अर्क क्षेत्र में आकर सूर्य की पूजा तपस्या की और रोग मुक्त हो गए। द्वापर में यह स्थान धार्मिक स्थल के रूप में मशहूर हुआ है। इस अर्क क्षेत्र के पुराणों में कई नाम है जैसे कोणादित्य, सूर्यक्षेत्र, मित्रवन, मैत्रेयवन, रवि क्षेत्र आदि।"

वर्तमान भग्न कोणार्क भी तो स्थापत्य कला का हिमालय ही है। इस संदर्भ में एक लोककथा प्रचलित है:

"एक राजा था, लांगुला नरसिंह देव। शायद 1200-1300 की बात होगी। वह सूर्य मंदिर बनाना चाहते थे, क्योंकि सूर्यदेव की कृपा से उन्हें पुत्र प्राप्ति हुई थी। यही ही नहीं, कोई-कोई तो कहते हैं कि राजा नरसिंह देव का शिशुपालगढ़ की राजकुमारी पद्मा से प्रेम संबंध था, मगर राजा का पंजाब राजकुमारी से विवाह होने के बाद पद्मावती विरह ज्वाला सह न सकी और अपनी देह को काल के हाथों में सौंप दिया। राजा ने ढूंढते हुए उसके शव को वहाँ पाया था। उन्होंने अपनी प्रेमिका की याद में यहाँ कोणार्क मंदिर बनाया। इसलिए इस क्षेत्र को 'पद्म क्षेत्र' भी कहते है। जहाँ यह सूर्य मंदिर बना है, वहाँ कभी बहुत बड़ा समुद्र हुआ करता था। उन्होंने मंदिर निर्माण का कार्य अपने प्रधानमंत्री सिबाई सांतरा को सौंपा। उसने पहले-पहले समुद्र के बीचों-बीच पत्थर डलवाने शुरू किए, मगर पानी के बहाव में पत्थर इधर-उधर हो जाते थे और मंदिर बनाने का कठोर धरातल उन्हें नहीं मिल पा रहा था। दुखी मन से जब वह घर की ओर लौट रहे थे, काफी देर हो चुकी थी, जंगल का रास्ता था तो उसने एक बुढ़िया के घर में शरण ली।

उस बुढ़िया ने उन्हें संभ्रात घर का अतिथि समझकर गरम-गरम जाऊँ (एक प्रकार की खीर) बनाकर परोसी। भूख से बेहाल होने के कारण सिबाई सांतरा ने थाली के बीचों-बीच हाथ डालकर जाऊँ खाना शुरू किया तो उसमें हाथ जल गए। उफ! की आवाज सुनकर बुढ़िया ने उसकी तरफ देखा और कहा—तुम भी तो सिबाई सांतरा की तरह काम कर रहे हो तो हाथ नहीं जलेगा तो और क्या होगा? बीचों-बीच हाथ न डालकर अगर किनारे से तुम खीर खाना शुरू करते तो तुम्हारे ये नरम कोमल हाथ नहीं जलते। बुढ़िया सिबाई सांतरा को नहीं जानती थी, मगर उसे एक बहुत बड़ा सबक

मिल गया और उसने समुद्र को किनार से पाटने का आदेश दिया, अपने कामगारों को। धीरे-धीरे उसे मंदिर बनाने की यह जमीन मिल गई।"

ऐसी एक लोककथा तो राजस्थानी लोक-साहित्य में भी आती है, जो निम्न प्रकार है–

'मेवाड़ के एक राजा थे मोकल। उनके परिवार में आपसी कलह चल रही थी। पड़ोसी राजा चूड़ा ने उनके वंशज रणमल को मौत के घाट उतार दिया, यह देखकर राजकुमार जोधा, (जिन्होंने राजस्थान में जोधपुर की स्थापना की थी) मारवाड़ प्रांत में सैन्य बल को संगठित कर चूड़ा के खिलाफ युद्ध की तैयारी करने लगे, मगर हर युद्ध में उन्हें मुँह की खानी पड़ रही थी। रात के समय जोधा ने किसी बुढ़िया की झोपड़ी में शरण ली और बुढ़िया ने उन्हें खीर परोसी। चेहरे के हाव-भाव और उदासी देखकर बुढ़िया से रहा नहीं गया और पूछा,

"बेटा! किस बात की चिंता कर रहे हो। पहले खाना खा लो, फिर थोड़ा विश्राम कर लेना।"

बुढ़िया को उस राजकुमार के बारे में बिल्कुल पता नहीं था। भूखे राजकुमार ने थाली में परोसी गई गरम खीर को बीच में से खाना शुरू किया तो उसके हाथ जल गए और कहने लगा, 'उफ! बहुत गरम है खीर।' बुढ़िया ने यह अपनी आँखों से देख लिया था इसलिए कहने लगी, 'बेटा, तुम तो राव जोधा की तरह कर रहे हो। वह भी अपने प्रांत के किनारे वाले गांवों को न जीतकर सीधा बीचों-बीच बसी हुई बस्तियों पर आक्रमण करता है, इसलिए वह चारों तरफ घिर जाता है और उसे मुँह की खानी पड़ती है। तुम भी तो ऐसा ही कर रहे हो, किनारे-किनारे से क्यों नहीं खाते!'

राव जोधा और सिबाई सांतरा की लोककथाओं में अद्भुत सामंजस्य है। एक राजस्थान की लोककथा तो दूसरी ओडिशा की। जब सिबाई सांतरा को कठोर धरातल मिल गया तो बारह सौ कारीगरों में जिसका मुखिया विशु महाराणा ने बारह साल के भीतर यह मंदिर तैयार किया। 224 फुट ऊँचा। इस मंदिर में रस है, भाव है, ध्वनि है और अगर सौ माइकल एंजेलो की दो-तीन पीढ़ियाँ भी कोशिश करें तो कोणार्क जैसी स्थापत्य कला नहीं बना पाएगी। ग्रीस के पार्थनियॉन, प्राचीन मिस्र की नुबिया आदि कलाकृतियाँ भी कोणार्क के सामने पानी भरते नजर आती हैं। डॉ. संजीव कुमार के कविता-संग्रह की कविता 72 की कुछ पंक्तियाँ देखें:

"बारह वर्षों की
दीर्घकालीन साधना में
क्या अनुभव हुये विशु!
कैसे हुआ इतना बड़ा काम?"
"हाँ, इस अप्रतिम मंदिर का
निर्माण एवं पुनर्जीवन की
साधना है।
इसमें पत्थरों से घिरा आदमी
पत्थर का हो जाता है
यह अपनी योजना
एवं शिल्प में
एक नवीन प्रयोग था
और पर इन बारह सौ शिल्पियों
के ऊपर समय की सीमा का
एक भारी दबाव भी।
"हमने दिन को दिन
और रात को रात
नहीं समझा
और कोणार्क
कल्पना से परे
बनकर मूर्त हो गया॥"

आज सच में हम कोणार्क नहीं देख रहे हैं, हम केवल इसके भग्नावशेष और खंडहरों को देखकर अनुमान लगा रहे हैं कि कभी इमारत कितनी बुलंद रही होगी! अगर आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस अपने इनपुट लेकर कोणार्क की कुछ पुरानी तस्वीरें तैयार करें तो बड़े-बड़े हाथी, घोड़े, और शेर, लोहे के बड़े-बड़े पिलर, सतरंगी सूर्य किरणें और मैथुन मूर्तियों से सजा हुआ चौबीस पहियों यानि बारह ऐक्सल वाला सात घोड़ों से जुता हुआ यह विशाल रथ किसी हवाई जहाज की तरह आकाश में उड़ान भरने वाला नजर आएगा, मगर अभी तो ऐसा लग रहा है।

जैसे किसी यांत्रिक गड़बड़ी के कारण जब हवाई जहाज खराब होकर नीचे गिरकर विदीर्ण हो जाता है, वैसे ही यह विशाल रथ भी बिखरा-बिखरा, टूटा-टूटा, उदास, हताश, निराश नजर आ रहा है, अब परिवेश में वह प्रफुल्लता नहीं, वह उमंग नहीं, वह संगीत लहरियाँ नहीं, वह रमणीय क्रीड़ास्थल का रोमांच नहीं।

केवल याद दिलाते हैं ये खंडहर कि कोणार्क पूर्वजों द्वारा हमारे छोड़ी गई ऐसी धरोहर है जिस पर सारा विश्व गर्व करता है। इस मंदिर का डिजाइन मयूर के 'सूर्य शतक' पर आधारित है। चौबीस पहिए यानि 12 एक्सल मतलब 12 महीने, आधा महीना कृष्ण पक्ष और आधा महीना शुक्ल पक्ष। सात घोड़े मतलब सात वार या सूर्य की सात किरणें वायलेट, इंडिगो, ब्लू, ग्रीन येलो, ऑरेंज एवं रेड, जिसे भौतिक विज्ञान में VIBGYOR भी कहते हैं। इस संदर्भ में कवि की कविता 73 की पंक्तियाँ देखें:

"कार्य योजना में
मेरी कल्पना थी कि
हम सूर्य को धरती पर उतार लायेंगे
उसकी एक-एक रश्मि
भर देगी कोणार्क का प्रांगण
प्रकाश और ऊर्जा से अपने
चौबीस चक्रों वाले विशाल रथ सहित
जो सात अश्वों की ऊर्जा से चलित होगा।
पूर्व दिशा के आकाश से
जब सूर्य रश्मियाँ धरती पर उतरेंगी
तो जाज्वल्यमान होगा
सारा उत्कल प्रदेश।
वह दिन के चौबीस घंटों की
अवधि में चालित होगा एक एक चक्र पर
और उनके युगल चक्र इंगित करते हैं।
बारह मासिक और उनके दो पक्ष
शुक्ल पक्ष एवं कृष्ण पक्ष।
जो स्पष्ट करेगा दिन की कालवधि
और सातो अश्व दृष्टिमान होंगे
सप्ताह के सात दिनों के लिये॥"

सात घोड़ों का नाम संस्कृत साहित्य में है गायत्री, वृहति, उष्णीह, जगति, त्रिस्तूभ, अनुष्टुप और पंक्ति है। पूर्व दिशा में यह रथ उदय होकर धीरे-धीरे अंतरिक्ष में परिक्रमा करने लगेगा, अंधेरे को भगाने में दो देवियाँ इस कार्य में मदद करेगी, उषा और प्रत्युषा। इस गहन अध्ययन को भी कवि डॉ. संजीव कुमार ने कविता 74 की पंक्तियों में प्रस्तुत किया है:

मैंने सोचा था कि
वैदिक स्थापत्य कला में
सूर्य अपने रथ पर सवार,
लेकर हाथों में एक कमान
करेंगे यात्रा।
सारथि अरुण द्वारा चालित
सात अश्वों से सज्जित रथ
जो है नामित
गायत्री
बृहति
उष्मीह
जगति
त्रिष्टुम
अनुष्टुम
एवं पंक्ति,
और उसका स्वागत करती
एवं रश्मि सर सन्धान करतीं
देवि ऊषा एव प्रत्यूषा
जिनसे दूर होता है
अंधकार।

उपर्युक्त कविताओं से यह स्पष्ट होता है कि स्थापत्य कला, ओड़िया भाषा में भास्कर्य कह लो, में भी सिंबोलिज्म यानी प्रतीकों का स्थान है। कला और विज्ञान तो आपस में एक-दूसरे से पूरी तरह जुड़े हुए हैं। क्या प्रतीक भाषा में ही होंगे, दूसरी जगह नहीं? खैर, मंदिर तो बन गया, मगर कलश स्थापना का काम उनकी टीम नहीं कर पाई।

उसी दौरान विशु महाराणा को मिलने के लिए उनका, बारह वर्षीय पुत्र धम्मपद मिलने आया और सभी कारीगरों

को हताश-निराश उदास अवस्था में देखकर दुखी स्वर में कहने लगा 'आप सभी इतने दुखी क्यों हो?' जब उन्होंने अपनी समस्या सामने रखी तो धम्म पद ने हँसते हुए कहा– 'यह काम तो मेरे बाएँ हाथ का खेल है।' और अपने चुंबक और कलश ले जाकर सही जगह पर स्थापित कर लिया। अब बात ठहरी अस्मिता की, जब बारह सौ कारीगर जिस काम को नहीं कर सके, एक छोटे से बारह वर्षीय बालक ने कर दिया।

तब राजा को क्या जबाव दिया जाएगा? राजा बच्चे को पुरस्कृत करेगा और बारह सौ कारीगरों के सिर धड़ से अलग। इस अवस्था में क्या किया जा सकता है? लड़के को या तो दूर भेज दिया जाए या फिर...? जब धम्मपद ने उनकी आशंका भरी बातें सुनी तो स्वयं मंदिर के चूल पर चढ़कर नीचे समुद्र में कूदकर आत्महत्या कर ली। मंदिर और आत्महत्या? यह भी तो पाप है। उसके बाद वह मंदिर अपने आप गिरना शुरू हो गया और आज जो मंदिर आप देखकर आए हैं, वह उसी का भग्नावशेष है। यह है कोणार्क की दुखद कहानी, जो मैंने सीताकांत जी की कविता 'ओड़िशा' में पढ़ी थी, उन पंक्तियों को देखें:

अपने साथ ले जाता हूँ
अंधियारे साँझ में पिता को पहली बार मिलने आए किशोर,
कलश लगाने के बाद जिसके मंदिर के चूल से
कूदकर सागर में आत्म विसर्जन कर देने से
से उत्पन्न हुए अंतहीन करुण शोक लहर का वह प्रहरय

सीताकान्त जी की तरह ऐसी ही परिकल्पना कवि डॉ. संजीव कुमार की है, जो उनकी कविता 93 की निम्न पंक्तियों से प्रदर्शित होती हैं:

सारी बातें सोचकर
उस तरुण शिल्पी ने
किया एक कठिन फैसला
और वह शीर्ष कर खड़ा होकर
करने लगा
सूर्य की उपासना
और अगले क्षण ही
उसने लगा दी छलांग
और किया मृत्यु का वरण।

क्या कोणार्क के तत्कालीन राजाओं के मन में प्रेम भावना बिल्कुल भी नहीं होती थी। बारह सौ मिस्त्रियों का शोषण भी किया, उनकी जवानी छीन ली, मंदिर के निर्माण में, और मिला क्या? नरसिंह देव का तो नाम रह गया अभी तक, मगर नींव की ईंट बने कारीगर? कलश स्थापित नहीं होने के बाद भी राजा ने अपने आपको कंगूरे के रूप में स्थापित कर ही लिया। ये सारे विचार मेरे मन के किसी कोने में विषैले साँप की तरह आज भी फुफकार रहे हैं। लेकिन मेरा मानना है कि बारह साल लगातार काम करने के कारण कोणार्क के 1200 कारीगर कमजोर और शिथिल हो गए होंगे, कुछ बीमार भी हो गए होंगे, कुछ मर भी गए होंगे, इस वजह बारह साल का लड़का निश्चित ही स्फूर्तिवान होगा, इस वजह से सत्तर-अस्सी मीटर ऊँचे मंदिर पर आसानी से चढ़ गया होगा, मंदिर के पत्थरों पर संभाल-संभालकर पाँव रखते हुए और अपने हाथों से पत्थरों के बाहर निकले नुकीले हिस्सों को पकड़ते हुए। कहीं-न-कहीं भूलचूक से हाथ छूट गया होगा तो वह काफी ऊँचाई से नीचे गिरकर दम तोड़ दिया होगा। अब कोणार्क की तरह धर्मपद को महिमा-मंडित करने के लिए तत्कालीन चारणों, भाटों और राजदरबारी कवियों ने अपने काव्य-कविताओं में त्रासदी लाने के लिए 'आत्महत्या' और 'आत्म-विसर्जन' जैसे प्रसंग होज दिए होंगे। धम्मपद की आत्महत्या से पाठकों के मन में करूणा और दया के भाव स्पष्ट झलकने लगेंगे। और माहौल कुछ गमगीन-सा लगेगा। इतनी बड़ी जीती जागती ऐतिहासिक धरोहर, लाखों-करोड़ों का खर्च, फिर भी प्रोजेक्ट असफल, केवल एक आत्महत्या के कारण। कवि संजीव कुमार के अनुसार अपने बेटे के पार्थिव शरीर से लिपटकर शायद तभी विशु ने चुंबक को हिलाकर उसी समय मंदिर को नष्ट कर दिया। इस तरह उन्होंने अपनी कविता में मौलिकता का पुट देने की चेष्टा की है। उनकी कविता 97 की पंक्तियाँ इसे उजागर करती है:

अचानक उठ खड़े हुआ विशु

चल पड़े मंदिर की ओर
जैसे सूर्य देव से
कहना हो कुछ।
किन्तु आने लगी
हथौड़ा चलने की आवाजें
कि जैसे महा शिल्पी का मोहभंग
हो गया हो
और उतर आया हो
वह विध्वंस पर।
बस चुम्बक के
हिलते ही हो गई
मूर्ति धराशायी
एक बड़ी ध्वनि को साथ
और विशु
हो गये समाधिस्थ
उसी कल्पना की
सृष्टि में॥

मैं कवि की इस अवधारणा से बिल्कुल सहमत नहीं हूँ क्योंकि उन्होंने कविता में किंवदंतियों का आधार लिया है, जबकि ऐतिहासिक पक्ष की अनदेखी की है। कभी इस धरती पर महाप्रभु चैतन्य महाप्रभु (1486-1535) ने पांव रखे थे तो कभी अबुल फजल (1556-1605) ने। दोनों के साहित्य में कोणार्क के भग्न होने की बात उल्लेख नहीं है। इसके अतिरिक्त, पंडित कृपा सिंधु मिश्र अपने आलेख 'कोणार्क के पतन' में लिखते हैं कि कलश में चुंबक पत्थर होने के कारण विदेशी नावों के कम्पास काम नहीं करते थे, और वे नावें कोणार्क के समुद्री तट की ओर खींची चली आती थी, इसलिए शायद विदेशी दस्युओं ने उसे तोड़ दिया।

अगर ऐसा होता तो मेरा मानना है कि आस-पास के गाँव-शहरों के लोहे के बर्तन और सामान भी खींचकर कोणार्क के शिखर पर चिपक जाते और यह घटना इतनी सामान्य भी नहीं थी कि उसे उस काल खंड के साहित्य में स्थान नहीं मिलता। ऐसा माना जाता है तत्कालीन कोणार्क मंदिर में सूर्य की लौह मिश्रित मूर्ति हवा में तैरती हुई नजर आती थी, क्योंकि ऊपर नीचे पत्थरों में चुंबक गए हुए थे, एक चुंबक उस मूर्ति को ऊपर खींचता था तो दूसरा नीचे, लेकिन दोनों चुम्बकों के प्रभाव क्षेत्र बराबर होने के कारण मूर्ति बीच में त्रिशंकु की स्थिर थी। ऐसी ही किंवदंती राजस्थान के माउंट आबू के अर्बुदा देवी (जिसे स्थानीय भाषा में 'अधर देवी' यानि हवा में लटकी हुई देवी कहते हैं) और गुजरात के सोमनाथ मंदिर में भी ऐसा ही कुछ माना जाता है।

समय की मोटी परत जमाने के कारण हम किसी सत्य निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकते हैं कि ये सारे तथ्य विज्ञान आधारित हैं या काल्पनिक? मिस्टर आर्नेट कहते हैं कि मंदिर बनते-बनते ही टूट गया, जैसा कि कवि संजीव कुमार का भी मानना है। लेकिन यह भी सत्य होता तो अबुल फजल अपनी 'आइन-ए-अकबरी' में अवश्य जिक्र करते। पुरातत्ववेत्ता स्टर्लिंग का मानना है कि भूकंप या बिजली गिरने से मंदिर नष्ट हुआ होगा, लेकिन विद्वान इसे भी नहीं मानते। वैज्ञानिकों का मानना है कि यह मंदिर पद्म तालाब को पत्थर-मिट्टी से भरकर बनाया गया था कि इस वजह से संरचनात्मक त्रुटियों से नींव अपने प्रस्तर कंगूरे का वजन नहीं उठा पाई होगी, इस वजह से धीरे-धीरे मंदिर अपना स्थायित्व खोकर भूमिसात हो गया।

दूसरा कारण, कोणार्क में लोहे की छड़ों का प्रयोग किया गया है, जंग लगने के कारण वे फैल गई, इस वजह मंदिर की दीवारें टूटने लगी। यह लोहा तालचेर और मयूरभंज की खदानों से लाया गया था, जबकि मदलापाँजी के अनुसार कोणार्क के इस रमणीय और विराट मंदिर पर काला पहाड़ ने बार-बार आक्रमण कर उसे मिट्टी में मिलाने का भरसक प्रयास किया।

जितने मुँह उतनी बातें। कोणार्क मंदिर के बारे में काफी प्रकाश डाला जा चुका है, मगर फिर भी किसी ठोस ऐतिहासिक सबूतों की जानकारी नहीं मिल पाई। इतना भव्य मंदिर अपने पीछे शून्य इतिहास छोड़ गया। इतिहास शून्य कोणार्क मंदिर? ऐसे कैसे हो सकता है? डॉ. मायाधर मानसिंह की पुस्तक 'The saga of land of Jagannath' में यह लिखा गया हैं कि चंद्रभागा नदी पर बहुत बड़ा बंदरगाह था, वहाँ से श्रीलंका और अन्य दक्षिण

एशियाई देशों के व्यापार होता था।

राजा नरसिंह देव के समय में भी यह बंदरगाह चालू रहा होगा, अन्यथा इतनी वीरानी जगह पर कोई राजा क्यों अपना और प्रजा का विपुल धन खर्च करेगा? आईन-ए-अकबरी में कोणार्क का जिक्र किया कि जगन्नाथ मंदिर के पास सूर्य को समर्पित एक मंदिर है, जिसके निर्माण में तत्कालीन ओड़िशा के 12 साल का राजस्व खर्च हुआ। चीनी परिव्राजक ह्वेंसाँग ने 634 ईस्वी में ओड़िशा की यात्रा की थी, और अपने संस्मरण में ओड़िशा की राजधानी 'चेलीतालो' बताया है, जो समुद्र किनारे बसी हुई थे और यहाँ के व्यापारी दूसरों देशों की यात्रा करते थे। कुछ इतिहासकार इसे भुवनेश्वर बताते हैं तो कुछ पुरी तो कुछ इतिहासकार प्राची या चित्रोत्पला नदी के घाट पर बसे हुए किसी नगर की कल्पना करते हैं। हो न हो, शायद यह कोणार्क वाली जगह ही होनी चाहिए। कोणार्क मंदिर के पहले भाग 'जगमोहन' में जो भित्तिचित्र है, उसमें एक राजा हाथी पर बैठा हुआ है और कुछ संभ्रात वर्ग के लोग, अच्छे परिधान पहने हुए, उनका तालियों से अभिनंदन कर रहे हैं।

इस भित्तिचित्र में लंबी गर्दन वाला जिराफ है, वह पूर्व अफ्रीका का जंतु है। अगर वह समुद्री रास्ते से कोणार्क नहीं लाया गया होता तो उस आकृति में वह कहाँ से समाविष्ट हो जाता? इसका मतलब सुदूर देशों से कोणार्क के वाणिज्यिक संबंध बने हुए थे इस बंदरगाह के माध्यम से। यह भी हो सकता है राजा नरसिंह के पूर्वजों ने पुरी (विष्णु क्षेत्र), जाजपुर (शक्ति क्षेत्र) और भुवनेश्वर (शिव क्षेत्र) में मंदिर बनाकर अपने आपको कालजयी बना दिया था तो हो सकता है, उनके मन में भी यह ख्याल आया होगा कि पृथक क्षेत्र (अर्क क्षेत्र) में कतार से हटकर एक नया मंदिर बनवाकर अपने आप को अमर बना दूँ।

यह भी हो सकता है कि राजा ने इतिहास में अपना नाम स्वर्णाक्षरों में लिखवाने के उद्देश्य से इसे बनवाया हो, क्योंकि 13 वीं शताब्दी में भारत के उत्तर, दक्षिण और बंगाल में मुसलमानों के लगातार आक्रमण हो रहे थे, केवल यही एक ऐसा हिंदू राजा था, जिसने मुसलमानों को अर्क क्षेत्र में भटकने नहीं दिया।

जितनी भी बार युद्ध हुए, उन्हें परास्त किया। अतः विजय की खुशी में, विजय स्मारक के रूप में राजा ने कोणार्क की स्थापना की हो, क्योंकि इतिहास में कहीं पर भी यह नजर नहीं आता है कि वह संत साधू प्रवृत्ति का राजा था। वह भौतिकवादी था और एक महान योद्धा भी। कोणार्क की दीवारों पर बने हाथी, घोड़े, सेना, रथ आदि तत्कालीन पृष्ठभूमि के प्रतीक है क्योंकि ओड़िशा का कोई भी ऐसा मंदिर नहीं है, जिसमें सैन्य बल को भित्ति चित्रों में आँका है।

आज भी कोणार्क, जो कला-प्रेमियों को पसंद आता है, उसका कारण यह नहीं है कि उन्हें सूर्य देवता आकर्षित कर रहे हैं या राजा नरसिंह पर उन्हें दया आ रही है। वे आतें हैं उसे देखने, उस पर अंकित जीवन के आनन्द की दिव्य-भाषा को पढ़ने के लिए।

कैसा रहा होगा तत्कालीन समाज? आज लोग इसे प्रेम मंदिर कहते हैं, शिला पद्म कहते हैं सिटाडेल ऑफ लव कहते हैं, न कि सूर्य मंदिर। भानुमती के पिटारे की तरह आज कोणार्क मंदिर में असंख्य किंवदंतियाँ बिखरी हुई हैं।

आधुनिक समाज का एक वर्ग इस मंदिर में रतिक्रिया में रत मैथुन मूर्तियों देखकर व्यभिचार का अड्डा बताते हुए तत्कालीन समाज की घोर आलोचना करता है कि किसी चमत्कार से अगर इस मंदिर की सारी मूर्तियाँ जीवित हो उठती तो कोणार्क मंदिर का समूचा परिदृश्य कामसूत्र की 64 कलाओं पर आधारित किसी ब्लू/पोर्न फिल्म में बदल जाएगा, जिसमें आप देखेंगे मुखमैथुन, गुदामैथुन, समलैंगिक संभोग, जानवरों के साथ संभोग, सामूहिक संभोग, महिलाओं के गर्भपात (योनि में तीक्ष्ण पत्थर घुसाकर) और नवकुंजर की तरह पुरुष और जानवरों का मिश्रण। कवि की कविता 57 और 58 देख सकते हैंः

कामशास्त्र पर
स्वतंत्र ग्रंथों की रचना की है
पौराणिक कथाओं में
उल्लेख है कि प्रजापति ने
एक लाख अध्यायों में
कामशास्त्र लिखा था

जिसे महादेव की इच्छा पर
"नंदी" में उसे एक सहस्र अध्यायों में
संक्षिप्त किया था
जिसे उद्दालक मुनि के पुत्र
श्वेतकेतु ने
पाँच सौ अध्यायों में संक्षेपण किया
जिसे पांचाल बा भव्य ने
सात अधिकरणों में संपादित किया
उसे व्यावहारिक रूप दिया
वारायण, सुवर्णनाम
घोहकमुख, गोनर्पीय
गोपिकापुत्र, दत्तक
एवं कुचुमार ने पृथक-पृथक लिखा
और फिर वात्सायन ने
दिया उसे नवीनरुप॥

"विशु!
कैसा लगा तुम्हें
शास्त्रों का ज्ञान।"
कामशास्त्र का सृजन
जीवन के मंगल के लिये था।
मानव मन जिज्ञासु होता है
और इसी जिज्ञासा से
प्राचीनकाल में
शोध किये जाते थे।
"कोणार्क मेरा शोध ग्रंथ है
ज्ञान को
पूर्णतः की ओर ले जाने के लिये
मैंने भी व्यावहारिक
और शास्त्रीय ज्ञान का
समामेलन किया
एकांगी ज्ञान से
इस शिल्प को
सत्यता की ओर
ले जाने की संभावना नहीं होती।"

तत्कालीन मनुष्य की कल्पना शक्ति की अवश्य दाद देनी होगी, मगर आज क्या ये कानूनन वर्जित दृश्य बहू-बेटियों के साथ बैठकर देखे जा सकते हैं? चारों तरफ सेक्स ही सेक्स फैला हुआ है। दूसरे शब्दों में, सेक्स की पाठशाला थी कोणार्क। जो बोल नहीं पाता था आदमी अपने मुँह से, पत्थरों की भाषा सब कुछ बोल जाती थी। इसलिए शायद रवींद्रनाथ टैगोर ने लिखा कि कोणार्क के पत्थरों की भाषा मनुष्य की भाषा से श्रेष्ठतर है। अनभिव्यक्त के बारे में भी बहुत कुछ अभिव्यक्त कर जाते हैं ये पत्थर। प्रतिभा राय ने अपने उपन्यास 'कोणार्क' में अश्लील मूर्तियों को बनाने के पीछे 1200 कारीगरों के 12 साल एकांत में अकेले रहने के कारण उनकी कामना, वासना, आकांक्षा के मर्म आवेदन के साथ-साथ एक और कारण बताया है कि ये मूर्तियाँ भूत-प्रेतों के आक्रमण और प्राकृतिक विपदाओं से मंदिर की रक्षा करती हैं, क्योंकि चुड़ैल, भूत, प्रेत, ब्रह्म राक्षस सभी रति क्रिया की कामुक मूर्तियाँ देखकर आनंदित होते हैं।

तत्कालीन भारतीय समाज में कामकेलि के रूप को सिद्धि या मुक्ति का मार्ग मानते हैं, तभी तो कोणार्क के इस प्रस्तर महाकाव्य के आधार पर जयदेव ने मुगल काल में 'गीत गोविंद' के रूप में रचना कर डाली। रामप्रसाद दाधीच के अनुसार महाकवि जयदेव कृत गीत गोविंद को डॉ. कुछ विद्वान भक्ति रचना मानते हैं तो कुछ विशुद्ध प्रेम-भाव को कृति मानते हैं।

राधा माधव को लेकर वाममागियों का अलग-अलग तत्व दर्शन है वे कृष्ण और राधा को भैरव और भैरवी की संज्ञा देते हैं। 'गीत गोविंद' ओडिशा की देन है। डॉ. कालीचरण चौधरी ने अपनी पुस्तक 'जगन्नाथ संस्कृति' में जगन्नाथ मंदिर को बौद्धों का पुराना मंदिर बताया है। स्वामी दयानंद और स्वामी विवेकानंद भी इस कथन का समर्थन करते हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक "हिंदी भाषा का इतिहास" में जगन्नाथ मंदिर में जगन्नाथ भगवान की मूर्ति के पीछे वाली दीवार में बुद्ध भगवान के दांत रखे जाने की बात कही है तो स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपने ग्रंथ "सत्यार्थ प्रकाश" में जगन्नाथ, बलभद्र के मध्य सुभद्रा

के बैठाए जाने की परिपाटी पर प्रश्नचिह्न खड़ा किया है कि यह भैरवी चक्र का द्योतक है। जो जगह माँ अथवा पत्नी की होनी चाहिए, वहाँ बहन को बैठाना भैरवी चक्र के प्रतीक के सिवाय और क्या हो सकता है?पाश्चात्य लेखक डॉ. हापकिन्स के मतानुसार भी जगन्नाथ से पूर्व वहाँ बुद्धदेव की पूजा होती थी। प्रसिद्ध ओड़िया साहित्यकार कृपासिंधु मिश्र के जैन और बौद्ध धर्म की मूर्तिपूजा का प्रचलन जबसे हुआ तभी से जगन्नाथ की पूजा प्रारंभ हुई। ओडिशा के पंचसखा भी जगन्नाथ को बुद्ध का अवतार मानते हैं। रामकृष्ण परमहंस ने इस ब्रह्म जगन्नाथ को कलियुग का देवता माना है। श्रेष्ठ पंडित जयदेव ने "गीत गोविंद" में जगन्नाथ के दशावतार का सजीवता से वर्णन किया है। उसे आज भी भारत के सारे लोगों ने अपनाया है, उसे पढ़कर हम मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। इसे अपनी नाट्य कला में स्थान देकर नाटककार रंगमंच के जरिए दर्शकों को अभिभूत करते हैं। इस प्रकार कई कवियों ने इस साहित्य के भव्य मंदिर निर्माण में सहयोग दिया है। इसी तरह "सत्यार्थ प्रकाश" के "एकादश समुल्लास" में स्वामी दयानंद ने "काली तंत्र" में

मद्य मांस व मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च,
एते पंच मकाराः स्युर्मोक्षदा हि युगे युगे।
कुलार्णव तंत्र में
प्रवृते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णा द्विजोतमः
निवृत्त भैरवीचक्रे सर्वे वर्णा पृथक पृथक।
'महानिर्वाण तंत्र' में
पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा यावतपतति भूतले
एवं ज्ञान संकलनी तंत्र में,
'मातृयोनि परित्यज्य विहरेत सर्वयोनिषु।'
'वेद शास्त्र पुराणनि सामान्य गणिका इव।
एकैव शांभवी मुद्रा गुप्ता कुलवधूरिव।'

आदि वाममार्गी पंथ का घोर विरोध करते हुए लिखा है कि राधा और कृष्ण को माध्यम बनाकर वाममार्गियों ने मद्य, मत्स्य, माँ मैथुन और मुद्रा को मोक्ष का साधन बनाया है। यहाँ तक कि शास्त्रों में रजस्वला आदि स्त्रियों के स्पर्श का निषेध है। उन्हें वाममार्गियों ने अति पवित्र माना है।

"रजस्वला पुष्कर तीर्थ चांडाली तु स्वयं
काशी चर्मकारी प्रयागः स्याद्रज ही की मथुरा मता।
अयोध्या पुक्कसी प्रोक्ता। रुद्रयामल तंत्र"

अर्थात् रजस्वला से समागम करने पर पुष्कर का स्नान, चांडाली से काशी की यात्रा, चमारी से प्रयाग स्नान, धोबिन से मथुरा यात्रा और कंजरी के साथ लीला करने से अयोध्या तीर्थ हो जाता है और वे लोग पंचमकारों का नाम भी सीक्रेट कोड में रखते हैं, जैसे मद्य का नाम तीर्थ, मांस का नाम 'पुष्प', मछली का नाम 'जलतुम्बिका', मुद्रा का नाम 'चतुर्थी', और मैथुन का नाम 'पंचमी' रखते हैं। हिंदी पाठकों को भैरवी चक्र की जानकारी होगी या नहीं, यह मुझे मालूम नहीं है। मगर उन्हें इस 'कोणार्क' कविता संग्रह के माध्यम से भी इसकी जानकारी अवश्य होनी चाहिए। जब भैरवी चक्र चलता है तब उसमें ब्राह्मण से लेकर चांडाल पर्यंत सभी द्विज हो जाते हैं और जब भैरवी चक्र समाप्त हो जाता है तो वे सभी वर्णस्थ हो जाते हैं।

आखिर में भैरवी चक्र होता है क्या?

भैरवी चक्र में वाममार्गी लोग भूमि या पट्टे पर एक बिंदु त्रिकोण चतुष्कोण वर्तुलाकार आकृति बनाकर उस पर मद्य का घड़ा रखकर पूजा करते हैं। फिर ऐसा मंत्र पढ़ते हैं "ब्रह्मशापं विमोच्यःष् अर्थात् हे मद्य! तू ब्रह्म आदि के शाप से रहित हो। एक गुप्त स्थान में जहां वाममार्गी के सिवाय दूसरे को नहीं आने देते, स्त्री और पुरुष इकट्ठे होते हैं। वहीं एक स्त्री को नंगी कर पूजते हैं और स्त्री लोग किसी पुरुष को नंगा कर पूजते हैं। पुनः कोई किसी की स्त्री, कोई अपनी या दूसरे की कन्या, कोई किसी की या अपनी माता, भगिनी, पुत्रवधू आदि आती है।

"पश्चात्य एक पात्र में मद्य भरके मांस और बड़े आदि एक थाली में रखते हैं। उस मद्य के प्याले को, उनका आचार्य हाथ में लेकर बोलता है कि "भैरवोहम्", " शिवोहम्", "मैं भैरव या शिव हूँ" कहकर पी जाता है। फिर उसी जूठे पात्र से सभी पीते हैं। और जब किसी की स्त्री या वैश्या नंगी करके अथवा किसी पुरुष को नंगा कर हाथ में तलवार दे कर उसका नाम देवी या पुरुष का नाम महादेव धरते हैं। उनके उपस्थ इंद्रिय की पूजा करते हैं फिर उसी देवी या शिव को मद्य का प्याला पिलाकर उसी जूठे पात्र से सब लोग

एक-एक प्याला पीते हैं।

उसी क्रम में पी-पीकर उन्मत्त होकर चाहे कोई किसी की बहिन, कन्या या माता क्यों न हो, जिसकी जिसके साथ इच्छा हो कुकर्म करते हैं। कभी-कभी बहुत नशा चढ़ने से जूते, लात, मुक्का-मुक्की, केशाकेशी आपस में लड़ते हैं। किसी-किसी को वहीं वमन होता है। उनमें जो अघोरी होता है, वह वमन हुई चीज को भी खा जाता है क्योंकि उनके अनुसार, पाशबद्धों भवेज्जीवः पाशमुक्तः सदाशिवः।

ऐसा तंत्र में कहते हैं कि जो लोक लज्जा, शास्त्र लज्जा, कुल लज्जा, देश आदि पाशों में बँधा है वह जीव और जो निर्लज्ज होकर बुरे काम करे वह सदाशिव होता है। उड्डीश तंत्र में एक प्रयोग लिखा है कि एक घर में चारों ओर आलय हो। उनमें मद्य के बोतल भरकर धर देवें। इस आलय से एक बोतल पीकर दूसरे आलय उसमें से पीकर तीसरे और तीसरे में से पीकर के चौथे आलय में जावें। फिर जब नशा उतरे तब उसी प्रकार पीकर गिर पड़े। पुनः तीसरी बार इसी प्रकार पीकर गिर पड़े तो उसका पुनर्जन्म न हो, अर्थात् ऐसे मनुष्यों का पुनः मनुष्य जन्म होना ही कठिन है। वाममार्गियों के तंत्र ग्रंथों में यह नियम है कि माता को छोड़कर किसी स्त्री को भी नहीं छोड़ना चाहिए, अर्थात् चाहे कन्या हो या भगिनी आदि क्यों न हो, सबके साथ संगम करना चाहिए। इन वाममार्गियों में दश महाविद्या प्रसिद्ध है। उनमें से एक मातंगी विद्या वाला कहता है कि "मातरपि न त्यजेत" अर्थात् माता को भी समागम किए बिना नहीं छोड़ना चाहिए और स्त्री पुरुष के समागम के समय मंत्र जपते हैं कि हमको सिद्धि प्राप्त हो जाए।

यही कारण था कि तत्कालीन राजा महाराजा भीड़भाड़ वाले नगरों से दूर कोणार्क, खजुराहो और अजंता एलोरा जैसी सुनसान वीरान जगहों में जाकर भैरवी चक्र में प्रवृत्त होते थे, जिसका वर्णन ओशो रजनीश ने अपनी पुस्तक 'संभोग से समाधि' में किया है। उनके अनुसार कोणार्क मंदिर की परिधि में बनी कामुक मूर्तियाँ यह दर्शाती है कि मनुष्य पहले अपनी काम वासना से ऊपर उठे, तभी तो उसे ईश्वर के सच्चे दर्शन हो सकते हैं, अन्यथा नहीं। उस समय ऐसा समाज केवल भारत में ही था, ऐसा भी नहीं है। प्राचीन मिस्र, सीरिया और बेबीलोन के आदिम आर्यों में ऐसे ही भाव थोड़े बहुत देखने को मिलते थे। एशिया के फ्रीजिया के वासियों में एक प्रथा प्रचलित थी कि पुरुष तेज शामूका सीपी की खोल से अपने लिंग काटकर देवी को अर्पण कर देते थे यह कहते हुए कि हे देवी माँ! इसे ग्रहण करो। मेक्सिको में भी ऐसी प्रथा देखने को मिलती थी। बाइबिल में जननेन्द्रिय को पवित्रता का प्रतीक मानते थे। यहाँ तक कि यहूदी स्त्रियाँ सोने-चांदी के लिंग बनाकर जीविकोपार्जन करती थीं। अरब के लोग अपने जननेन्द्रिय पर हाथ रखकर शपथ खाते थे या प्रतिज्ञा लेते थे। ग्रीस के प्रसिद्ध शिल्पी फ़िडीआस अश्लील मूर्तियाँ बनाते थे, लेकिन कोणार्क की मूर्तियों के सामने कुछ भी नहीं थी। अगर सही-सही कहा जाए तो कोणार्क 'थ्री डब्ल्यू' का केन्द्र है। थ्री डब्ल्यू अर्थात् वार, वर्शिप एंड वूमेन। कोणार्क के पहिए आज दुनिया भर में आकर्षण के केन्द्र है न केवल सूर्यदेवता के रथ के होने के कारण, बल्कि भवसागर के भी, जीवन के भी पहिए हैं। कोणार्क में कुछ भी शांत नहीं है, कुछ भी गतिविहीन नहीं है। कुछ भी अनुर्वर नहीं है। पत्थर गीत गाते हैं, प्रतिध्वनियाँ निकलती हैं, मृदंग और ढोल की थापों पर। पत्थर दौड़ते हैं, वेगवान घोड़ो की तरह, सूरज के रथ को तेजी से दौड़ाते हुए। यहाँ पत्थरों पर फूल खिलते हैं, सहस्र हाथों में चमक लिए। तभी तो कवि लिखता हैः

"कोणार्क तो
कला तीर्थ है
जो एक बार देख ले
तो वह शिल्प
जो पत्थर पर
उकेरा गया है
वह जीवन में
उतर ही आता है
वह अंगासनों की छवि
छा जाती है मन मस्तिष्क पर।
सच कहो विशु
यह तुम्हारी कल्पना थी
या तुम्हारे

अनुभव का प्रतिरूप
भग्नावशेषों में भी
आज तक शिथिल नहीं हुई हैं
वह रति मूर्तियाँ
परिकल्पना में
बस जाती है
वह जीवंत क्रियाशिल्प।।

इतिहास जो कुछ भी कहें, पौराणिक गाथाएँ जो कुछ भी कहें, लेकिन एक अभियंता होने के कारण मेरी निगाहों में कोणार्क का कुछ और ही महत्व है। 13वीं शताब्दी में इतने बड़े-बड़े पत्थर और आयरन बीम सौ फीट से ज्यादा ऊँचाई पर कैसे ले जाया गया होगा, उस समय न तो कोई स्टीम इंजिन था और न ही कोई सिविल इंजनियरिंग के आधुनिक उपकरण जैसे डैरिक या वायर रोप या पुली ब्लॉक सिस्टम। यह सोच से परे है कि बड़े-बड़े पत्थरों को कैसे उतनी ऊँचाई पर फिट किया होगा? यह अर्क प्रदेश समुद्री किनारे पर है, जहाँ चारों तरफ बालू ही बालू।

आस-पास न कोई पहाड़ या न ही पत्थरों की खदानें थी। अमरकंटक से निर्गत होने वाली महानदी की उपशाखाओं कुशभद्रा, चित्रोत्पला, प्राची और चंद्रभागा नदियों से मंदिर निर्माण की सामग्री यानि क्लोराइट, लेटेराइट और खोंडालाइट के बड़े-बड़े पत्थरों की चट्टानें, लोहा-लकड़ी ढोया होगा या फिर हाथियों या किसी और यंत्र कर द्वारा? इसका मतलब आस-पास पत्थरों की खदानें भी रही होगी, वहाँ से इतने विशाल पत्थरों को लाया गया होगा?

काजीरंगा नेशनल पार्क (असम), महाबोधी टेंपल कंपलेक्स (बोधगया), हुमायूं कंपलेक्स (दिल्ली) जंतर-मंतर (जयपुर), अजंता एलोरा (महाराष्ट्र), ताजमहल (आगरा), नालंदा विश्वविद्यालय (बिहार) की तरह ऐसी अवस्था में कोणार्क को विश्व धरोहर के रूप में शामिल किया जाना सारे विश्व कें लिए गौरव का विषय है। कितने कारीगर, राजमिस्त्री राजा की बर्बरता का शिकार हुए होंगे, कितने मंदिर बनाते समय ऊँचाई से गिरकर मौत के शिकार हुए होंगे और कितने धम्मपदों ने चंद्रभागा में कूदकर आत्मविजर्सन किया होगा? सारे दृश्य एक-एक कर आपकी आँखों से गुजरने लगे तो अवश्य आँखों के दोनों में आँसुओं की स्फिटक बूँदे साफ दिखाई देने लगेगी ओर आपके दोनों हाथ अपने आप जुड़कर उन अज्ञात कलाकारों की आत्मा को शांति सद्गति देने के लिए उतावले हो उठेंगे। अगर हम हमारी इस विश्व धरोहर को सही सम्मान नहीं देते हैं या उनकी कला की कद्र नहीं करते हैं तो यह अपने आप में डूबकर मर जाने जैसी घटना होगी। निस्संदेह कोणार्क का सूर्य मंदिर पत्थरों पर लिखा महाकाव्य है, वेदव्यास के 'महाभारत', वाल्मीकि की 'रामायण' कालिदास के 'रघुवंश', 'मेघदूत' 'कुमारसंभव' की तरह चिरंतन सत्य है मूल्य बोध के साथ, मगर भाषा पूरी तरह अलग है, जिसे एक नहीं, दो नहीं, बारह सौ कारीगरों ने तत्कालीन समाज की गतिशीलता को अंकित करने के लिए पत्थरों पर हथौड़ी चलाकर लिखा है। कोणार्क मंदिर यथार्थ में नग्नता का प्रतीक नहीं है, बल्कि समाजोपयोगी चेतना का प्रतीक है, नव निर्माण की कहानी है। कोणार्क में इतिहास हैं, किंवदंतियाँ हैं और कहानियाँ हैं।

इतिहास लिखता है केवल राजा-रानी और सेनापति की कहानी, मगर शिल्पियों की कौन लिखेगा? इस संदर्भ में हमारे जैसे साधारण लेखकों, कवियों, आलोचकों और पाठकों की जिम्मेदारी बनती है ताकि हम पूर्वजों की तरह एक और नया ऐसा कोणार्क तैयार करें, जिस पर आने वाली पीढ़ियाँ गर्व अनुभव कर सकें।

फिलहाल रांची से 39 किलोमीटर दूर कोणार्क की तरह एक सूर्य मंदिर विद्यमान है, जिसमें 18 पहिये यानि 9 एक्सेल और सात घोड़े जुते हुए हैं। इन सारे दृष्टिकोण से अगर देखा जाए तो डॉ. संजीव कुमार का कविता-संग्रह 'कोणार्क : एक प्रेम मंदिर' अत्यंत ही सराहनीय कदम है, उसकी जितनी तारीफ की जाए, उतनी कम है, क्योंकि विश्व धरोहर कोणार्क के उपेक्षित मंदिर के साथ-साथ पात्रों को जीवित रखने का प्रयास वंदनीय है। उम्मीद है, हिन्दी जगत में इस कविता संग्रह का भरपूर स्वागत होगा।

"मन बंजारा" समूह की वाराणसी यात्रा एवं साहित्यिक कार्यक्रम

रिपोर्ट : दीपा स्वामिनाथन

साहित्यिक भ्रमण एक नई पहल, एक अनूठी परिकल्पना है। देश के महत्वपूर्ण ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक, समृद्ध नगरों की यात्रा, गहन अध्ययन और उससे प्रेरित सृजनात्मकता को प्रोत्साहन देना इसका ध्येय है। मन बंजारा टीम की प्रथम यात्रा, विश्व की सबसे प्राचीन नगरी मानी जाने वाली वाराणसी से प्रारंभ हुई।

मन बंजारा एक साहित्यिक समूह है जिसमें सभी विधा के कलाकार और संगीत प्रेमी सम्मिलित हैं। इस समूह की संस्थापक दुबई की सुश्री स्नेहा देव, संयोजक बैंगलोर की सुश्री दीपा स्वामिनाथन सहित 12 यात्री शामिल हुए। प्रयाग राज से डॉ. विमला व्यास, रायपुर से के.पी. सक्सेना 'दूसरे', डॉ. महेंद्र ठाकुर, डॉ. मीनाक्षी वाजपेयी, छत्तीसगढ़ से शकुन्तला तिवारी, नई दिल्ली से श्यामा भारद्वाज, पूनम ग्रोवर, नागौर, राजस्थान से भंवरलाल जाट, ऋषिकेश से इन्दु सिंघल इस साहित्यिक भ्रमण में पूर्ण उत्साह के साथ सम्मिलित हुए। थोड़े समय के लिए रायपुर से पत्रकार रेणु तिवारी नंदी जी का साथ रहा। साहित्य, कला और संगीत का समन्वय, वो भी बनारस जैसी जीवंत पुण्य स्थल में सभी सहभागियों के लिए एक अद्भुत और अविस्मरणीय अनुभव बन गया।

दिनांक 13 मार्च को मन बंजारा टीम के सम्मान में काव्यगोष्ठी एवं साहित्यिक परिचर्चा का आयोजन नागरी प्रचारिणी सभा, मैदागिन, काशी में बौद्धायन सोसाइटी संस्था के द्वारा किया गया। इस अवसर पर पंडित जितेन्द्र नाथ मिश्र की अध्यक्षता में, मुख्य अतिथि स्नेहा देव रहीं, कार्यक्रम का संयोजन व संचालन संस्था की संस्थापक, सचिव डॉ. मंजरी पाण्डेय ने किया। विशिष्ट अतिथि डॉ. मुक्ता व प्रो. श्रद्धानंद जी का विशेष वक्तव्य रहा। सरस्वती वन्दना बैंगलोर से पधारी दीपा स्वामिनाथन ने किया। काव्यपाठ और साहित्यिक परिचर्चा में मन बंजारा टीम के साथ, काशी से सुरेन्द्र वाजपेयी, डॉ. रचना शर्मा, ब्रजेश पाण्डेय, डॉ. संगीता श्रीवास्तव, नवल किशोर गुप्त, श्रुति गुप्ता, डॉ. मुक्ता तथा डॉ. मंजरी पाण्डेय शामिल रहीं। के पी सक्सेना एवं विमला व्यास के पुस्तकों का मंच पर लोकार्पण भी हुआ। कार्यक्रम के समापन की ओर बढ़ते हुए पं. जितेन्द्र नाथ मिश्र ने अपने काव्यमय अध्यक्षीय उद्बोधन में हिंदी साहित्य की वर्तमान चुनौतियों पर भी प्रकाश डाला। नवल किशोर गुप्त के धन्यवाद ज्ञापन के साथ यह चिरस्मरणीय कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। मन बंजारा समूह की ओर से सहभागियों को सम्मान पत्र एवं स्मरणार्थक भेंट दिए गए।

बनारस के तीर्थस्थलों के दर्शन, सारनाथ की यात्रा जहाँ गौतम बुद्ध ने पहली बार धम्म को उपदेश दिया था, सामाजिक गाँठों और जीवन के ताने-बाने को कथाओं में बुनने वाले मुंशी प्रेमचंद की स्मृतियों से लैस लमही स्मारक का अवलोकन, गंगा घाट पर सूर्योदय के समक्ष लाइव पेंटिंग, नौका विहार सहित गायन, विचारों का सहज आदान प्रदान, गंगा स्नान, चटपटे चाट के साथ गप शप इत्यादि के आनंदमय स्मृतियों को संजोते हुए आनंद कानन यात्रा का यह अनूठा भ्रमण कार्यक्रम फलीभूत हुआ!

सृजित कविताएँ...

उत्सव

दीपा स्वामिनाथन

जिह्वा पर खुला हो जैसे
मीठे सुवास का दरीचा!
ठंडी बयार सी मुंह से
भीतर तक उतरती
गंगा घाट की सीढ़ियों सी
शीतल लहरों से जा मिलने को।
लगा हो जैसे मखमली शामियाना
आस्वादन का उत्सव मनाते
भिन्न प्रकार के स्वादों के लिए!
कि आओ! आकर ठहरो कुछ देर,

आराम दो जठराग्नि को!
कि ये पान है बनारसी
इसकी बात है कुछ और!!

विसर्जन

हे! जटाशंकरी, साध्वी गंगे!
विनति सुन मेरी, हे! शुभगे!
तेरे लिए क्या देह, क्या मृतिका
भगत, पर्यटक, किस कुल जात का
निर्धन या धनी, सुंदर या कुपजा
वृद्ध या नवजात, गोरा या काला
सुहागन या विधवा, मोटा या नाटा!
तेरे घाट उतर, हर कोई सुगति पाता!
हाड़मांस के शरीर से तुझको क्या!?
मन जैसा भी हो मृत या जीवित का!
तेरे अमल जल का जो स्पर्श पाता!
तुझमें हो विलीन, घुल, तर जाता!
जनम मरण के जंजाल में अटका,
मानव तुझे भी कर दूषित, भटका!
कोई तुझमें पाप धोने आ जाता!
कोई ढूँढता, ममत्व सी शीतलता!
स्वर्ग, पृथ्वी, पाताल की कर यात्रा!
जीवन वाहिनी तू, बहती त्रिधारा!
बह निकले जिधर से कर देती सब हरा!
कांतिमय तुझसे सूर्य, व्योम और धरा!
सब समान तेरे लिए, सबका मोल एक सा!
है तुझमें जीवन और मृत्यु की पारदर्शिता!
फिर भी क्यों नर बाँटने-काटने से न थकता!?
कौन मूरख कौन सयाना!? कैसी ये दुविधा!?
भर तुझे कलश पात्रों में व्यापारी फलता!
क्षण भर में मिटा सके तू नश्वर काया की माया!
अनंतकाल से न्याय परायणी, वंदनीय तू पुण्या!
कर निमग्न अपनी जलधारा में, ओ महाभद्रा!
हे! जान्हवी, कर विसर्जन हर कलह का!
...कर विसर्जन हर कलह का!

"बनारस का आदमी"

भँवरलाल जाट

पानीपुरी का ठेला हो...!
एक संतोष और ठहराव
लिए बनारस जहाँ खुद को
देख पाना कितना अहम
हो जाता है
इस भागदौड़ भरी जिंदगी में
सुकून के कुछ पलों के संग
नये-नये रंगों के संग!!
अंग-अंग पुलकित होने को आतुरय
होने को मुक्त उस आदमी से
जो है वर्षों से चिंतातुर
खुद के रंग में रंग जाने को और
अपने में समा जाने को!

(ऐ बबुआ!)

अपने पुश्तैनी घर में
बनारस का आदमी खुश है,
छोटी-सी दुकान के साथ
जिसमें उतना ही
सामान रखता है
जितना बिकता है,
वह आदमी उतना ही नहीं है
जितना दिखता है।
उससे कहीं बड़ी हैसियत का है,
मगर उसे मजा आता है
इन तंग गलियों में
रहकर विराट संस्कृति के संग
बनारस को बचाए रखने में
उत्तर आधुनिकता के इस दौर में
अपने निराले अंदाज के संग रंगे रहने में,
प्रेम से बबुआ कहने में!

नए संस्मरण

मेरी बनारस यात्रा

भँवरलाल जाट

जीवन में यात्राओं के महत्व को मैंने कभी नकारा नहीं। आमतौर पर लंबी-लंबी यात्राएँ मेरे जीवन को ऊर्जस्वित बनाकर नई राह प्रशस्त करती रही हैं। लगभग एक साल से विभिन्न साहित्यिक समूहों में अपने आपको समृद्ध करते हुए लेखन कार्य को भी गति प्रदान की है। क्रमशः अंतर्राष्ट्रीय जगत की एक साहित्यिक शख्सियत 'स्नेहा देव' ने एक साहित्यिक यात्रा की योजना बनाकर सभी साहित्यिक मित्रों को खुला निमंत्रण दिया। मैंने इस अनुपम यात्रा का हिस्सा बनना स्वीकार किया। स्थान तय हुआ। अवधि तय हुई। नामकरण संस्कार हुआ। साहित्यिक समूह 'मनबंजारा' की बनारस यात्रा दिनांक 11 मार्च से 14 मार्च तक। मरुधर एक्सप्रेस जोधपुर वाराणसी में आरक्षण करवाया गया। मन के बंजारेपन ने गतिशीलता प्रारंभ की। कुछ हल्के-फुल्के नियम निर्धारित किए गए। हम बचपन से अनुशासित, एक दिन पहले ही बनारस में स्थित होटल जानकी इंटरनेशनल में अपनी दस्तक देकर प्रथम आ गये। मुझे 2003 नंबर का कमरा दिया गया। झोला रखा, चाय पी और बाहर टहलने निकल गया। सबसे पहले बनारस के सिगरा इलाके में सड़क पर ठेला लगाये गन्ने का रस देने वाले एक महाशय से भेंट हुई। बिना बर्फ का गन्ने का जूस पिया। मात्र 20 रुपये में एक गिलास। बगल में एक ठेले पर अमरुद थे। मैंने एक अमरूद तुलवाया और मसाले के साथ ग्रहण किया। सौ कदम की दूरी पर ही एक पुलिस सब इंसपेक्टर से भेंट भई। रिकॉर्डिंग के लिए फोन का कैमरा ऑन देखकर उन्होंने पूछ ही लिया कि यह चालू क्यों है?

मैंने रुपम संस्थान मूंडवा के लिए सोदेश्य जानकारी एकत्रित करने का हवाला देते हुए यूपी की कानून व्यवस्था की तारीफ कर डाली। इस देश में किसी की तारीफ करके कुछ भी तरह की मूर्खता को संपादित किया जा सकता है। ख़ैर, महाशय ने अपनी पीड़ा प्रकट की और किंचित् खुले। आमजन को कोस रहे थे। मैंने समय की कीमत को पहचान कर बीस कदम आगे बढ़ाए तो एक युवक संतरे का रस निकाल कर बेच रहा था। मैंने नाम पूछा तो बोले—'कपीश' मुझे नाम अच्छा लगा और हनुमान चालीसा की चौपाइयों को दोहराने लगा। कपीश को अच्छा लगा। उसने एक संतरा दिया और फ्री में जूस पिलाना चाहा मगर मैंने सशुल्क रस लिया। वहीं से जे कृष्णमूर्ति फाउंडेशन के लिए ई-रिक्शा किया। जे कृष्णमूर्ति की पुस्तकें पढ रखी थीं, इसलिए उनके द्वारा स्थापित उत्तर भारत के बड़े केन्द्र को देखने की जिज्ञासा वर्षों से थी जो आज पूरी होने को थीं। केन्द्र से लगभग एक किलोमीटर दूर यू पी पुलिस के जवानों ने ई-रिक्शा को रुकवाया और वहाँ से पैदल जाने की हिदायत दी। मैंने पैदल चलना सहर्ष स्वीकार किया। शुभरात का दिन था। मुस्लिम धर्मावलंबियों का तांता लगा था। ज्यों-ज्यों कदम जे के फाउंडेशन की तरफ बढ़ रहे थे, मन पुलकित हो रहा था। सौन्दर्यबोध नवीन तो होता ही है, जिज्ञासा भी नए के

स्वागत में पलकें बिछा रहीं थी। केन्द्र के मुख्य द्वार पर पहुँचा। एक सज्जन लाठी हाथ में लिए कुर्सी पर जमे थे। हमारे जाते ही वे खड़े हुए। हमारे स्वागत में अथवा फाउंडेशन के नियम से? पता नहीं।

उन्होंने तीन बजे केन्द्र संचालक शुक्ला जी के आने की सूचना दी। दो बज चुके थे। मैंने शुभरात के श्रद्धालुओं के रेले में स्वयं को शामिल किया। प्राकृतिक सुषमा अवर्णनीय थी। यह केन्द्र 1934 में स्थापित हुआ था जो कि दोनों ओर से वरुणा और गंगा से आवृत्त है। 200 कदम चला ही था कि गंगा का घाट दिखाई दिया। मैंने घाट की ओर प्रस्थान किया। वहाँ पर कुछ लोग एक नाव का निर्माण कर रहे थे। भीड़ नहीं थी। गंगा के किनारे आठ-दस नावें खडी थीं। एक युवक आया और बोला बोटिंग करनी है साहेब।

मैंने युवक से पूछताछ प्रारंभ कर दी। गंगा पुत्र को आभास हो गया कि यह आदमी बोटिंग नहीं करने वाला। इसलिए वह वापिस तट की ओर चला गया। दरअसल मैं सामूहिक आनंद में सम्मिलित होने आया था और समूह के साथ ही बोटिंग करना चाहता था। हालांकि आनंद नितांत निजी विषय है, फिर भी समान स्तर की ऊर्जा हो तो आनंद संक्रमित होता है। ऐसी मेरी मान्यता है। वैसे मेरी मान्यता रोज बनती है और बिगड़ती है क्योंकि जीवन होता है गतिशील और हम गतिशीलता के साथ तालमेल बिठाने में हिचकिचाते हैं।

बहरहाल उपदेश देना मुझे रुचिकर नहीं। बनारस की गहनता से जानने की मंशा से नाव निर्माताओं से मैंने उनकी जीवन-चर्या और आजीविका के संदर्भ में किंचित् पूछताछ की। उन्होंने नवनिर्मित नाव की आयु सौ साल बताई। बेरोजगारी का रोना वे भी रो रहे थे जो कि बहुसंख्यक लोगों का बड़ा मुद्दा है। सरकार को लेकर एक माई ने अपनी खीझ उतारी। "कछु नाही भयो है" इस गंगा घाट की बातचीत में समय कब गुजरा पता ही नहीं चला।

तीन बजने को थे। मैं केन्द्र की तरफ गया। इस बार गेट कीपर महाशय ने और अधिक प्रेम भाव से बात की। घाट पर एक जनाब पानी वाले नारियल बेच रहे थे। वहाँ से एक नारियल क्रीत किया और थोड़ा सा खाते ही पेट भरा-भरा सा महसूस हुआ। सच तो यह है कि नवीनता की प्रतीक्षा में भूख-प्यास अप्रासंगिक हो जाया करती है। उसी नारियल के शेष भाग को गेट कीपर महोदय से साझा कर प्रसाद रुप में पाया। वे खुश हुए। शुक्ला जी अनुपस्थिति में भी मुझे प्रवेश दे दिया।

केन्द्र के अंदर प्रवेश करते ही मैंने अपने को अपने भीतर पाया। कल की चिंता और कल की योजना को विस्मृत हो गया। मैं उस दिव्यता में खो गया। परम शांति। आँखें बंद करके एक पेड़ के नीचे बैठ गया। वो पल शब्दों में समाविष्ट नहीं हो सकते। गूँगे का गुड-सा अहसास।

इतने में शुक्ला जी आए। मधुर मुस्कान और धीमा स्वर। केन्द्र के अंदर पढ़ने लिखने और जे कृष्ण मूर्ति के रहने वाले कक्ष की तरफ बढ़े। मैं और शुक्ला जी आमने-सामने बैठे। मैंने संस्थान की जानकारी लेनी आरंभ की। वे हर सवाल का जवाब धैर्य से दे रहे थे। चाय आई। चाय पर चर्चा फिर शुरु हुई। मैंने उनके निजी जीवन को लेकर सवाल किया कि आपको यहाँ क्या लाभ हुआ है?

उन्होंने एक ही पंक्ति में प्रत्युत्तर दे दिया जो कि सभी मुमुक्षुओं और जिज्ञासु जीवों के लिए आवश्यक है। वह था "मैं यहाँ अपने साथ जी रहा हूँ। अपने साथ रहना ही आनंदमय जीवन का संकेत है।"

मौन मस्ती के दौरान ही शुक्ला जी ने रसोई घर दिखाया। साफ-सुथरा अन्नपूर्णा की प्रतिमूर्ति-सा। हम बैठे। चने और हलवा संग चाय पान चला। इतने में डॉ. शैलेन्द्र पधारे। उनके साथ वेदांत पर चर्चा हुई। फोटो सेशन और पुनः मिलने की उत्कंठा के साथ मेरी रवानगी।

कृष्ण मूर्ति फाउंडेशन से लौटते हुए मैं भीड़ में भी अकेला था। मन अनुपस्थित था। एक दृश्य था और दृष्टा। ई-रिक्शा करके होटल जानकी इंटरनेशनल में आया।

संयोजक स्नेहा जी से प्रथम बार भेंट हुई। साथ में दीपा जी भी थीं। दोनों के साथ सामान्य बातचीत हुई। अब हमारी यात्रा आकार लेने लग गईं थीं।

सवेरे उषाकालीन गंगा का असी घाट। "सुबह-ए-बनारस" का मंचीय कार्यक्रम। शास्त्रीय संगीत की मधुर धुन। ऊगता हुआ सूरज। गंगा के पावन तट पर दीपा स्वामीनाथन द्वारा

लाजवाब पेंटिंग।

दीपा स्वामीनाथन! जी हाँ, एक बहुमुखी प्रतिभा जिसके बहुआयामी व्यक्तित्व (गायन, पठन, पेंटिंग, ज्वैलरी मेकिंग, प्रबंधन, आशु निर्णय, उदारहृदय और एक बच्चे सी नज़र) ने इस यात्रा का आनंद बहुगुणित कर दिया था। सुबह की गंगा लहरें हमें अपने में समाने को आतुर थीं। मन की चंचलता स्थिरता को प्राप्त हो रही थी। हम धीरे-धीरे अपने होटल की तरफ बढ़े। ऐसा लग रहा था जैसे भारतीय सांस्कृतिक विरासत ने बनारस में ही अपना घर बना लिया हो।

बहुभाषी लोग। संस्कृत के मंत्रों, वैदिक ऋचाओं के उद्घोष, कलाएँ, शौकीन मिजाज़ के लोग, स्वाद का लालित्य और मस्ती का वातावरण हमें भूत और भविष्य में से खींच कर वर्तमान कर रहा था। हम घर, नौकरी, संसार के प्रपंचादि को भूल चुके थे। प्रतीत हुआ जैसे मैं द्विज होता जा रहा हूँ। कुछ मिट रहा है तो कुछ बन रहा है। जो नहीं था, वो मौजूद होने लगा और जो मन में रचा था, वो धुल रहा था। देशकाल परिस्थिति और पावन परिवेश ने मानों मेरे भीतर नवनिर्माण का शिलान्यास कर दिया हो। मैं हर्षित था। पुलकित था।

अनुभवी और परिपक्व सुधिजनों के संग-सत्संग की अभीप्सा में मन मयूर नर्तन कर रहा था। सवेरे का नाश्ता और नये साथियों का आगमन, 11 मार्च को ऐतिहासिक बनाने की तैयारी में था। पूनम ग्रोवर, नई दिल्ली, इंदु सिंघल जी, ऋषिकेश, श्यामा भारद्वाज जी, नई दिल्ली और डॉ. विमला व्यास जी, प्रयागराज से मधुर भेंट, परिचय और संवाद के साथ-साथ नाश्ते का स्वाद ले रहे थे। सभी ने 'मन बंजारा' अंतर्राष्ट्रीय साहित्यिक समूह की संस्थापक आदरणीया स्नेहा देव जी, दुबई के आह्वान कि सभी साथी अपना पद, जाति, स्टेटस, पूर्वाग्रहों आदि को घर पर ही छोड़ कर पधारें और निपट बच्चा बनकर रहें का मानों अक्षरशः पालन कर, हम सभी साथी दूध में शक्कर की भाँति घुल-मिल रहे थे।

कोई पूर्व प्रधानमंत्री माननीय अटल जी की रिश्तेदार, तो कोई मदनमोहन मालवीय जी की रिश्तेदार। कोई आचार्य रामचंद्र शुक्ल का रिश्तेदार तो कोई देश के ख्यातनाम साहित्यकार होने के बावजूद बच्चों की तरह अहंकार शून्यता के सन्नाटे में सरगम बन सबको आह्लादित कर रहा था।

मैं आज गूगल से बड़े अनुभव से आवृत्त था। अद्भुत क्षणों का संवरण करने में लगा था। स्नेहा जी ने सांयकालीन सत्र में नौका विहार की योजना बनाई।

दोपहर के बेला, अल्पाहार के बाद सभी ने बनारसी साड़ी की निर्माण प्रक्रिया जानने के साथ ही परचेजिंग पॉवर को बाजार दर्शन के मनोविज्ञान में से गुजरने का निर्णय लिया। मैं तो मूक दर्शक बना बैठा था। परख और पसंद के चयन की साहित्यिक कसौटी पर बेचारी बनारसी साडियों ने अपना समर्पण किया। मैंने दुकान में बैठे-बैठे ही कुछ फोटो मेरी शाला परिवार के समूह में डाले और बनारसी साड़ी की तारीफ भी की। नीचे एक टिप्पणी भी लिख दी कि महंगी भी है। खरीदारी के बाद एक जगह बनारसी कचौड़ी खाने का निर्णय हुआ। उदरपूर्ति के पश्चात होटल जानकी इंटरनेशनल पहुँचे। कुछ विश्राम करके हम सभी चल पड़े गंगा की ओर। नारायण मंदिर मछोदरी रोड पर स्थित गाय घाट पर पहुँच गये। नाव पर बैठकर नौका विहार आरंभ किया। नौकायन के पल अद्भुत थे। एक-एक घाट के निर्माण और इतिहास की जानकारी देते हुए गंगापुत्र हमारी जिज्ञासा और बढ़ा रहा था। मणिकर्णिका घाट पर मुर्दे जलते देख नश्वरता का बोध हुआ। हरिश्चंद घाट की ओर दृष्टि के जाते ही मानों सारा अहंकार विगलित हो गया। आँखें सजल हो उठी। जीवन-मरण की यात्रा का नौकायन के साथ समन्वय स्थापित हो रहा था। गंगा पर धीरे-धीरे चलकर पूरे चौरासी घाटों के दर्शन किये। महाघाट की महा आरती और काशी विश्वनाथ की ज्योतित आभा में अवगाहन करने का अद्भुत संयोग। विचार थम से गये।

सारी नौकाएँ मानो एक जगह आकर आरती का आराधन कर रही हों। नीचे पानी ऊपर चाय नाश्ता और पानी। नावों का परस्पर प्रेम देखते ही बन रहा था। एक दूसरे से सटी नावें मानों समवेत स्वर में हो रही गंगा आरती में सम्मिलित थी।

इतने में कुछ गंगा पुत्र नावों पर ही पानी बेचने आ गये। पीछे पीछे नाश्ता भी और चाय कॉफी भी। छिद्रान्वेषी मन ने इस परिदृश्य को देखकर आलोचना आरंभ कर दी

और आत्मगत मंथन कि गंगा मैया भी हँसती होंगी।

श्रद्धालुओं की माँग और प्रेम जो भी हों, गंगा मैया स्वच्छता और निर्मलता को बनाये रखने की माँग अवश्य करती होंगी।

गंगा मैया की शीतलता तो देखिए अन्य होता तो गंदगी के कारण शापित कर देता लेकिन गंगा मैया सबको माफ किये जा रहीं थी। स्वच्छता अभियान को कसमसाहट करते देखा गया। बाहर आए। पानी पतासे और बनारस की समृद्ध संकरी गलियों वाली मिठाई का आनंद लेकर होटल जानकी इंटरनेशनल में पहुँच गए। रात्रिभोज हुआ। कुछ अन्य साथी भोलेनाथ के दर्शन करने चले गये थे जिनमें सक्सेना सर, कल्पना जी, महेंद्र ठाकुर साहब, डॉ. मीनाक्षी जी, रेणु जी व नंदी थे। शयन से पहले लिख कर अनुभव को अभिव्यक्त किया।

12 मार्च की अलसुबह...

पाँच बजे आँख खुली। मैंने मुँह धोया और अपने अंतः वस्त्र केरीबेग में डालकर अकेले ही असी घाट की ओर प्रस्थान किया। सिगरा चौराहे तक पैदल चलकर बनारस के जागने का अहसास कर रहा था। हालांकि बनारस में एक ठहराव है। कोई हड़बड़ी नहीं है। एक मादकता और मस्ती है। तो यही तो हुआ जागना। मैं खुद को जगाने का प्रयास कर रहा था। इतने में ई-रिक्शा वाला आया। किराया तय हुआ। हम बैठे। रिक्शा चल पड़ा। पाँच मिनट में घाट पर हाजिर। आरती चल रही थी। गंगा मैया मानो आरती के लिए अपनी गतिशीलता में ठहराव लाना चाह रही थी जैसे, और इधर वैदिक ऋचाओं के साथ संस्कृत का पदचाप मुझे मीरा के पगघुँघरुओं की याद दिला रहा था। मेरे मन मंदिर में इस समय दरिया, दादू, दूदा, कबीर, रैदास, मीरा, करमा, फूलां और दाता रुपा बाबा की छवियाँ उभर रही थीं। माँ-बापू और नाना-नानी के त्याग तप को गंगा आरती के समय नमन कर रहा था। शरीर उड़ने को आतुर था। रीवा घाट की तरफ धीरे-धीरे आगे बढ़ा। घाट पर भीड़ नहीं थी। दो चार जने गंगा स्नान कर रहे थे। मैं भी गंगा मैया को नमन करके सुबह की ठंडी लहरों में प्रविष्ट हुआ। अहा! धन्य हुआ। डुबकी एक, दो, चार नहीं दस लगाई। मुख से स्वयं मंत्रोच्चार होने लगा। उच्च स्वर में सुनकर पास में अर्घ्य दे रहे आचार्य कक्षा के विद्यार्थी चंद्रमणि शर्मा आकर्षित हुए। परिचय हुआ। मैंने संस्कृत में वार्तालाप आरंभ किया। चंद्रमणि शर्मा प्रसन्नचित्त लग रहे थे। देववाणी में वार्तालाप सुनकर अन्य श्रद्धालुओं के लिए हम आकर्षण का केन्द्र बन गये। कुछ समय के लिए हम जाट से पंडित भये। इधर असी घाट पर शास्त्रीय संगीत चल रहा था। आँख मूंद कर हम सुनने लगे। गंगा का तट हो। श्रद्धासमन्वित हृदय हो और फिर हो सुरों की सरगम... कौन है जो रोक पाएगा खुद में डूबने से। संगीत तरणीतटतरंगिनीवत छाने लगा। एकाएक अश्रुधारा में बहने लगी। उधर गंगा बह रही थीं और इधर हम बह रहे थे। इस बहाव में साम्य था पावनत्व का और शैतल्य का। इन क्षणों को समग्रतः शब्द दे पाने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है। मेरी बनारस यात्रा परवान पर थीं। हर अगला पल कुछ सृजनात्मक संदेश लेकर अवतरित हो रहा था। मैं कहाँ था? मैं तो बहुत पीछे छूट चुका था। बस कोई और था जो मेरे भीतर से आनंद ले रहा था।

ततपश्चात पुनः सिगरा स्थित होटल जानकी इंटरनेशनल में पहुँच गया। एक अनोखी ताजगी के साथ। पाँव धरती के ऊपर टिके थे मगर उड़ने का-सा अहसास था। अल्पाहार के लिए हॉल में सभी एकत्रित हुए। नये साथियों से परिचय हुआ। सक्सेना जी की चुहल और ठाकुर महेंद्र जी का शाब्दिक ऑपरेशन बेनजीर था। कोई भी बोले...इतने में तो एक अनोखा शब्दार्थ लेकर हाजिर। यथा संग्रह, बहुमत, बादाम, बेदाम, सम्भ्रान्त आदि-आदि।

ऐसी युक्त छोटी बस का आगमन और चल पड़े सारनाथ और लमही की यात्रा पर। रास्ते में सभी के आग्रह पर मुझे राजस्थानी भाषा में प्रस्तुत होना पड़ा। सभी ने सराहना की। एक-एक करके सभी अपनी प्रस्तुतियाँ देते रहे। कुछ ही देर में हम सब भगवान बुद्ध की धरती सारनाथ में पहुँच गये।

भगवान बुद्ध का उपदेशक स्थल। प्रवेश करते ही अद्भुत सौन्दर्य और शून्यता ने घेर लिया। बुद्धम् शरणम् गच्छामि की अनुभूति हो रही थी। फोटो लिए जा रहे थे। मन मौन होने को आतुर था। भगवान बुद्ध के द्वारा यहाँ

धम्म उपदेश दिया गया था। के.पी. सक्सेना सर और महेन्द्र ठाकुर सर के साथ एक जगह कुछ क्षण मौन-मादकता में मस्ती का वरण किया। अनुपम पलों का संवरण किया। अशोक चिह्न, भगवान बुद्ध के जन्म, युवा अवस्था, उपदेश मुद्रा और महापरिनिर्वाण की प्रतिमाओं के साथ-साथ हंसते बुद्धा की प्रतिमा के दर्शन किये। गाइड हमें इतिहास की जानकारी दे रहा था। इस समय मैं कालातीत था। वर्तमान और केवल वर्तमान। भगवान बुद्ध की तपश्चर्या और जीवन दर्शन आँखों के सामने तैर रहा था। धर्म चक्र, अशोक चिह्न, 80 फिट लंबी बुद्ध की प्रतिमा और हरियल परिसर की सुंदरता बरबस खींच रही थी। वहाँ से दूर जाने का मन ही नहीं कर रहा था। प्राकृतिक आभा और अद्‌भुत शिल्प कला के साथ यह स्थल अपने में अपार ऊर्जा लिए हुए था। बताया गया कि थाइलैंड सरकार की देखरेख में यह स्थल अपनी गरिमा लिए है। सुनकर आश्चर्य हुआ। हमारे महापुरुषों के प्रति विदेशी आस्था की जानकारी हमें सोचने के लिए विवश करती है। घर का जोगी जोगना, आनगाँव का सिद्ध... वाली कहावत को चरितार्थ करता सारनाथ।

वहाँ से कुछ ही कदम दूर खादी उद्योग हथकरघा आदि के साथ वस्त्रविपणन केन्द्र पर पहुँच गये। सभी साथियों ने ताना-बाना भरनी को महसूसते हुए अपनी-अपनी पसंद की कुछ चीजें क्रीत कीं। वहाँ से मुंशी प्रेमचंद जी की जन्मभूमि लमही के लिए प्रस्थान किया।

मुंशी प्रेमचंद का गाँव लमही। उतरते ही उस धरती को नमन किया। आजादी के पूर्व के प्रगतिशील चिंतक और ख्यातनाम महान् लेखक के गाँव में जाना, मेरे लिए जीवन की बड़ी उपलब्धि थीं। ठाकुर का कुआँ, हामिद का चिमटा, होरी धनियाँ गोबर... सब मानों जीवंत हो उठे। साम्राज्यवादी ताकतों से लड़ने वाला एक ऐसा साहसी लेखक जिसने न केवल समाज की विद्रूपताएँ खोलकर रख दी अपितु तमाम वर्जनाओं के ताने-बाने को तोड़ डाला। भले ही गाँव छोड़ कर बाहर जाना पड़ा मगर कलम के सिपाही ने कलम से तलवार का काम कर डाला। मुंशी प्रेमचंद शोध संस्थान लमही में स्थापित प्रेमचंद जी की प्रतिमा के सामने बैठकर प्रभारी दुबे जी के मुखारविंद से उपन्यास/कथा सम्राट की जीवन गाथा सुन रहे थे। सोजे वतन रचना के लिए कृत संघर्ष और प्रेमचंद जी की चुनौतियों का सजीव चित्रण करते हुए बीच-बीच में काव्यमय अंदाज से पांडेय जी ने हमको कुछ पलों के लिए बाँधकर रख दिया। वे एक्सप्रेस अंदाज में चित्रण किये जा रहे थे और हम बच्चों की तरह टकटकी लगाकर तन्मयता से श्रवण कर रहे थे।

तत्पश्चात शोध संस्थान के संग्रहालय का अवलोकन किया। नवाबराय जी की आबालवृद्ध फोटो, कुछ पांडुलिपियों और कुछ दुर्लभ चित्रों को संगृहीत किया। बगल में प्रेमचंद जी का घर था। पांडेय जी ने ताला खोलकर अंदर से उन सारी जगहों को दिखाया जहाँ पर बैठकर प्रेमचंद लिखते थे। रहते थे। सोते थे। हम बीसवीं सदी में तैर रहे थे। तब और अब की कलम की तुलना करने लगा मन। तन ठहर-सा गया। मन कल्पनालोक में था। उस दौर में विधवा से विवाह करके प्रेमचंद जी ने समाज के ढाँचे को चरमराने पर विवश किया। यही कारण था कि उनके वंशज आज लमही में नहीं रहते। उन्हें गाँव छोड़ना पड़ा था।

प्रेमचंद जी की जीवन-यात्रा को शोध संस्थान के प्रभारी पांडेय जी के मुँह से सुनकर बहुत अच्छा लगा। लमही से हम ऊर्जस्वित होकर लौटे। पांडेय जी बता रहे थे कि सरकार की ओर से कोई विशेष रुचि नहीं लिए जाने के कारण लमही के इस शोध संस्थान में कोई विशेष उपलब्धि वाला कार्य नहीं हो पा रहा है। मगर साहित्य जगत् प्रेमचंद साहित्य से न केवल गौरवान्वित है बल्कि देश-दुनिया में शोध कार्य जारी है।

कुछ समय विश्राम के बाद संध्या चार बजे चल दिये काशी विश्वनाथ के दर्शन करने। बारह ज्योतिर्लिंगों में एक ज्योतिर्लिंग काशी विश्वनाथ। मंदिर में दर्शन के लिए हम धीरे-धीरे सधे हुए कदमों से चल रहे थे। दोनों तरफ दुकानें सजी थीं। हमें मोबाइल को लॉकर में रखना था। सरकारी लॉकर पुलिस के आरक्षी ने बंद बताया जबकि लॉकर व्यवस्था चालू थीं। यहाँ पर एक अद्‌भुत गठजोड़ देखा गया। पंडितों और पुलिस आरक्षियों के बीच। भगवान के दर्शन करने के साधारण, विशेष और अति विशेष व्यवस्था देखी जा सकती है। हम ठहरे साधारण आदमी मगर बुद्धि से

असाधारण। इसलिए स्नेहा जी ने एक युवा पंडित जी को प्रबंधित कर यथासमय दर्शन करने का मानस बनाया। उस महाशय ने सरकारी लॉकर में सामान रखवाया और हमें लगा दिया दर्शनार्थियों की पंक्ति में। पंक्ति में लगाकर अपना शुल्क माँगा। मैंने सौ रुपये देने चाहे। वे माने नहीं। मैं इस पावन अवसर पर निर्विवाद निपटाना चाह रहा था। इसलिए दो सौ में पंडित जी माने मगर मुश्किल से। धनपशुता धार्मिकता पर हावी थी। कोई भी अवसर चूकना नहीं चाह रहे थे दर्शन अभिकर्ता। मुझमें भारतीय जनमानस पर क्रोधमिश्रित करुणा जाग उठी थी।

परमात्मा हमें बिना कुछ माँगे ही सबकुछ दे देते हैं। यह लेन-देन की आजकल की व्यवस्था हमें स्वीकार नहीं है। भगवान को देने की सामर्थ्य हमारे अंदर कैसे संभव हो सकती है?

हमारे शिवत्व को हमने महसूस किया। जल्दी ही दर्शन का क्षण आया। जैसे ही मैं ज्योतिर्लिंग के दर्शनार्थ पँहुचा...अहा! निःशब्द। बिजली-सी कौंधती हुई सिहरन पैदा हुई। पुजारी जी से आँखें मिली...उन्होंने एक अर्कपुष्प माला मेरे सर पर रख दी। मैं टकटकी लगाये तीन-चार मिनट तक काशी विश्वनाथ के दर्शन करता रहा। अनुपम कृपावृष्टि। अपनी मर्जी से थोड़ा-सा आगे जाकर पालती लगाकर एक जगह बैठ गया। कुंडलिनीकुलवल्लभ कृपा को बखानिए ना बखानिए। मन का विलयन हुआ। अहम् का विसर्जन और शून्य-सृजन। साथियों के संग हुए प्रसन्नता का पारावार था। पैदल चल रहे थे।

चलते-चलते बनारस चाट भंडार की सुप्रसिद्ध दुकान के नजदीक पँहुच गये। दुकान पर भीड़ ऐसी कि मानों सारा बनारस चाट पर टूट पड़ा है। अंदर से भरी हुई दुकान बाहर से भी सैंकडों लोगों से घिरी हुई। यहाँ पर ब्रॉंड का प्रभाव झलक रहा था। प्रतियोगी परीक्षाओं से अधिक कंपीटीशन महसूस हुआ। मैंने दुकान के गल्ले पर बैठे महाशय को मेरा सरकारी परिचय पत्र दिखाते हुए कहा कि हम सब अनोखे लोग हैं। बनारस के लिए हम मेहमान हैं। हमें वरीयता दी जाए। उन्होंने मुझे ध्यान से देखा। मुस्कुराये और कहा "दस मिनट रुको सर!" धैर्य की परीक्षा थी।

सभी साथी सहमत थे। चाट भंडार के बाहर जाट खड़ा था और फालुदा बनाने वाले मनीष यादव नामक जीव से बतियाने लगा। मैंने यादव जी की तारीफ करनी आरंभ की। भारतीय मनीषा सूत्र में तारीफ़ से वाजिब काम करवाना ठीक समझा है। आपकी आप जानों। हम तारीफ उसी की करते हैं जो तारीफ के काबिल होता है। कभी-कभी मूर्खों की तारीफ करके होने योग्य कार्य में आगत अवरोध का निवारण करके अपवाद को काम में लेते हैं मगर यदा-कदा आपातकाल में।

हम फालुदा पहले खाएँ या चाट! इस असमंजस में थे। तभी एक नंगधड़ंग बालक समीप आता है और भूखे होने की बात कहता है। मैंने उसे पूछा कि क्या खाओगे? वह बोला पैसे... मेरे लिए वह बालक चाट कंपीटीशन में सफल होने के लिए आवश्यक धैर्य का संबल बन रहा था। मैंने कहा चलो आपको बिस्किट खिला देते हैं। मैं जैसे ही उस बालक को चाट भंडार से तीन-चार दुकानें छोड़ कर आगे की दुकान पर ले जाने लगा... एक अजनबी महानुभाव ने मुझे पीछे से छूकर गुरु ज्ञान दिया कि बिस्किट का पैकेट खोलकर देना अन्यथा आप दस रुपये में खरीदकर इसे दे दोगे और यह बालक उसी पैकेट को आठ रुपये में उसी दुकान पर वापिस बेच देगा।

मैंने सविस्मय उस बालक को देखा और फोन को कान के पास ले जाते हुए दारोगा जी को सूचना देने का स्वांग किया। बालक छूमंतर हो गया।

बचपन में षडयंत्र का प्रशिक्षण देकर बच्चों की जिंदगी के साथ हो रहे अत्याचार पर मैं गहन चिंतन में डूब गया। मेरे भारत की भावी पीढ़ी की तस्वीर देखने लगा। तभी चाट भंडार के यादव जी ने हमें अंदर प्रवेश दिया। मुझमें यकीनन बनारस चाट भंडार में प्रवेश मिलने पर ठीक उसी तरह की खुशी की पुनरावृत्ति हो रही थी जितनी राजस्थान लोक सेवा आयोग के प्रवक्ता परीक्षा परिणाम में सफल होने पर।

हम सभी साथी एक ही बड़ी टेबल के दोनों ओर बैठ गये। तीन चार तरह की चाट का स्वाद लिया गया। भीड़ का कारण समझ में आ रहा था। गुणवत्ता का किसी से कोई कंपीटीशन नहीं होता। वह सदा प्रथम ही रहा करती है। पास

में भट्टी पर एक आदमी को काम करते हुए देखा तो हम सबने आश्चर्य किया। उस व्यक्ति की मेहनत का अंदाज लगा पाना मुश्किल था। पसीने से तर-बतर मगर प्रसन्नचित्त होकर काम इस तरह से कर रहा था मानों खुद ही काम बन गया। महाश्चर्य तो तब हुआ जब पूछने पर यादव जी ने बताया कि वह मालिक स्वयं भट्टी पर काम करते हैं। बेरोजगारी का रोना रोने वाले लोग इस घटना से बहुत कुछ सीख सकते हैं।

'खाली नहीं जाती मेहनत एक दिन रंग लाती है। लगन अगर सच्ची हो तो मंजिल खुद चली आती है।'

चाट के बाद बगल में बनारसी पान खाकर गंतव्य की ओर रवाना हुए। आज शाम को सभी साथी होटल के एक कक्ष में एकत्रित हुए। अपने अपने विस्तृत परिचय के साथ एक-दूसरे के संग जीवनानुभवों को साझा कर रहे थे। हर साथी का अनुभव अपने में बेजोड़ था।

बंजारा मन एक दूसरे से समृद्ध हो रहा था। सवेरे असी घाट पर जाकर गंगा स्नान करना तय हुआ।

दिनांक 13 मार्च 2023 की अल सुबह। पहुँच गये घाट असी पर जहाँ आरती का अंतिम छोर पकड़ सके। दीपा जी, स्नेहा जी, श्यामा जी, पूनम जी और इंदु जी ने उन क्षणों को कैमरे में संजोया। हमारे राम जी पहुँच गये फिर से रीवा घाट पर सुरसुरी स्नान के लिए जहाँ पर पहले से स्नान कर रहे थे काशी संस्कृत विद्यापीठ के विद्यार्थी चंद्रमणि शर्मा। आज उनके साथ एक नये साथी थे। उन्हें देखते ही हमने संस्कृत संभाषण आरंभ कर दिया। दोनों साथी गदगद हुए।

आज की सुबह-ए-बनारस खास होने जा रही थीं। गंगा स्नान के बाद हम तीनों साथी चाय की दुकान पर गये। चाय पर चर्चा चली लगभग बीस मिनट तक। सारी चर्चा संस्कृत में हो रही थी। कुछ श्रद्धालुओं के लिए हम आकर्षण का केन्द्र बन गये। मुझे महसूस हुआ कि बनारस में कितना रस है। कला, साहित्य, संगीत, संस्कृति और समरसता का अद्भुत संगम। शास्त्रीय संगीत, योगासन, प्राणायाम और हास्यासन के बाद दोनों मित्रों से संपर्क सूत्रों का आदान-प्रदान कर मैंने बीएचयू (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय) के लिए प्रस्थान किया।

ई-रिक्शा वाले के बगल में बैठकर मैं लाइव प्रसारण कर रहा था। रास्ते में पहलवान लस्सी भंडार देखा। काफी प्रसिद्ध जगह है। लोग दूर-दूर से लस्सी का स्वाद लेने आते हैं। ई-रिक्शा वाले ने बीएचयू स्थित (काशी विश्वनाथ मंदिर) के ठीक सामने उतारा। मंदिर भव्य था। यहाँ पर मूल मंदिर की नकल की गई है लेकिन परिसर की स्वच्छता, हरियाली और दूसरी मंजिल पर बना ध्यानालय अपने आपमें बेजोड़ है, जहाँ पर ओंकार की ध्वनि प्रतिध्वनित हुआ करती है। बीएचयू का ऊर्जा केन्द्र।

महामना मदनमोहन मालवीय जी के लिए मैं श्रद्धा से नतमस्तक हुआ। उनके प्रयास असाधारण रहे और उपलब्धियों का कहना ही क्या? समूचे भारत की प्रतिभाओं को तराशने का काम आज भी जारी है। मैंने प्रवेश किया। दर्शन किये और जैसे ही ज्योतिर्लिंग का स्पर्श किया, पंडित जी ने अर्कपुष्पमाला मस्तक पर धर दी। मैं धन्य हुआ। वहीं एक कोने में दस मिनट मौन होकर बैठा रहा। आनंदातिरेकानुभूति हुई। भित्ति चित्रों और वेदवाक्यों को संजोते हुए ऊपर के ओंकार ध्यान कक्ष में जाकर ऊर्जस्वित हुआ। इतने में कक्ष के बाहर लगे म्यूजिक सिस्टम पर एक तबला-वादक तबला बजाने लगा। मधुर आवाज ने आकर्षित किया। मैं समीप जाकर बैठ गया। अचानक विचार उठा कि क्यों नहीं एक भजन गाया जाए। मैंने तबला वादक से निवेदन किया। निवेदन स्वीकृत हुआ। कबीर साहब का भजन 'कर गुजरान गरीबी में तू मगरुरी क्यों करता है' गाना आरंभ किया। श्रद्धालुओं ने आकर आनंद लेना शुरु किया। तभी के पी सक्सेना सर, महेन्द्र ठाकुर सर कल्पना जी और डॉ. मीनाक्षी जी भी वहाँ आ गये। वे भी मेरे पास आकर बैठ गये। लाजवाब संगत जुड़ गई। पुजारी जी को भजन इतना अच्छा लगा कि मेरे पास आकर दो रुद्राक्ष की हस्तमालाएँ भेंट कर दी। बिन मांगे मोती मिले। मन का लोप हुआ। सन्नाटे में ही हम शनैः शनैः बाहर आए। माँ शकुन्तला जी और ठाकुर सर कह रहे थे कि आपको आज सुबह याद किया और हम मिल गये। इस तरह हमारा स्वस्थ संवाद हो रहा था। हमने जूस पीया। लस्सी पी और प्रस्थान किया देश के ख्यातनाम बीएचयू के संग्रहालय की तरफ।

टिकट लेकर अंदर प्रविष्ट हुए। आदिकाल से आधुनिक तक की साँस्कृतिक, ऐतिहासिक, शैक्षिक और शैल्पिक धरोहरों को करीने से सजा कर रखा था। यहाँ पर शोधकार्य के लिए आवश्यक सामग्री देखी गई। सिक्के, कला, संगीत, शैलियाँ, रागें, स्थापत्य और नानाविध पुरातात्विक महत्व की चीजें एक साथ देखी जा सकती हैं।

भारत कला भवन के नाम से विख्यात ऐतिहासिक धरोहर के रूप में यहाँ पर भारत के दर्शन किए जा सकते हैं। भारत कला भवन संग्रहालय की स्थापना 1 जनवरी सन 1920 में भारत कला परिषद के एक अंग के रूप में हुई। कविवर रविन्द्रनाथ टैगोर इस संस्थान के प्रथम एवं आजीवन सभापति हुए। वस्तुतः इस संस्थान का जन्म तथा विकास कला मर्मज्ञ राय कृष्ण दास की कल्पना का मूर्त रूप है जो कि आजीवन अवैतनिक निदेशक रहे।

सन 1929 में जब इसका स्थानांतरण काशी नगरी प्रचारिणी सभा में हुआ तो भारत कला परिषद् का नाम बदलकर भारत कला भवन रखा गया। संग्रह में निरंतर वृद्धि होने तथा संग्रह की देखरेख के लिए इसे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का स्थायी भाग बना दिया गया।

वर्तमान भवन का शिलान्यास सन् 1950 में एवं उद्घाटन 1962 में भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने किया।

इस संग्रहालय में लगभग एक लाख से अधिक कलाकृतियाँ संगृहीत हैं। जिसमें प्रस्तर मूर्तियाँ, सिक्के, चित्र, वसन, मृण्मूर्तियाँ, मनके, शाही फरमान, आभूषण, हाथी दाँत की कृतियाँ, धातु की वस्तुएँ, नक्काशीयुक्त काष्ठ, मुद्राएँ, प्रागैतिहासिक उपकरण, मृद्भांड, अस्त्र-शस्त्र, साहित्यिक सामग्री इत्यादि का समावेश है तथा उन्हें इनके लिए निर्धारित चौदह दीर्घाओं छवि (लघु चित्र), वसन, महामना मूर्ति निधि (अतिदुर्लभ विशिष्ट वास्तु विथी) तथा फ्रेड पिन भूमितल में मृणमूर्तियाँ, सिक्के, साहित्य, अलंकरण कला, बनारस एलिस बोनर तथा रोरिक प्रथम तल में प्रदर्शित किया गया है। यहाँ कतिपय उल्लेखनीय कृतियाँ हैं कांस्य युगीन मानवाकृतियाँ, अस्त्र, स्फुटिक का ताबीज, अकबर का राम सिया सिक्का, जहांगीर का प्याला, औरंगजेब का फरमान, मीनाकारीयुक्त चाँदी का हुक्का, कुषाणकालीन में वादक एवं पार्श्व नाथ, गुप्तकालीन मूर्तियों में शिव शीर्ष, माखनचोर कृष्ण, मध्यकालीन मूर्तियों में मुकुटधारी बुद्ध की मूर्ति, मृण्मूर्तियों में उदयन वासवदत्ता, झूला झूलती स्त्री आदि। लघु चित्रों में लौर चंदा, मृगावत, अनवार-ए-सुहेली के अतिरिक्त मालवा, मेवाड़, बसोहली, कांगडा और बूँदी के उत्कृष्ट चित्र हैं। पशमीने की शालें, पटका एवं जरी का चोगा सज्जा कला का प्रतिनिधित्व करते हैं।

मुझे मेरा विजिट ऊँट के मुँह में जीरा प्रतीत होता है। समग्रता से अवलोकन करने और चीजों को समझने के लिए एक माह की अवधि भी न्यून होती है।

अत्यधिक प्रसन्नचित्त होकर हम कला भवन से विदा हुए। समय को मध्यनजर रखते हुए हम हमारे अस्थायी ठिकाने होटल जानकी इंटरनेशनल की तरफ बढ़े। बीच रास्ते में हमने पहलवान लस्सी भंडार से दो-दो लस्सी गटकाई और पहुँचे अपने आशियाने में। आज दिनांक 13 मार्च 2023 को सायं चार बजे से सात बजे तक काशी नागरी प्रचारिणी सभा के अतिथि कक्ष (पंडित सुधाकर पांडेय स्मृति भवन) में काव्य गोष्ठी का आयोजन होना था।

'काव्य गोष्ठी का आयोजन'

हम निर्धारित समय पर ठीक चार बचे आयोजन स्थल पर पहुँच गये। कक्ष में प्रवेश करते ही तन-मन काव्यमय होने लगा। आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक की हिंदी जगत की सभी महान हस्तियों की दुर्लभ छवियों को देखकर हृदय पुलकित हुआ जा रहा था। मानों प्रतिमाओं से संवाद स्थापित होने लगा था। कार्यक्रम आयोजक बौद्धायन संस्थान के सदस्य और पदाधिकारी पधारे। स्वागत हुआ। परिचय हुआ। आज मेरी प्रस्तुति देश की प्रतिष्ठित संस्था के सजीव कक्ष में होनी थी। 'मनबंजारा' समूह की संस्थापक स्नेहा देव जी दुबई कार्यक्रम की मुख्य अतिथि और पंडित जितेन्द्र नाथ गुप्त को कार्यक्रम अध्यक्ष बनाया गया। संचालन का दायित्व डॉ. मंजरी पांडेय को दिया गया। मंगलाचरण के साथ ही समूह संयोजक दीपा स्वामीनाथन बैंगलोर ने शास्त्रीय स्वर में 'जय जय हे भगवति सुरभारती' नामक वंदना से अभिनव आगाज किया। कार्यक्रम के

विशिष्ट अतिथि 'प्रोफेसर श्रद्धा नंद ने स्वागत उद्‌बोधन में 'मनबंजारा' समूह के सभी सदस्यों का अनुरागपूर्ण अभिनंदन करते हुए साहित्य की दशा और दिशा पर प्रकाश डाला। उन्होंने साहित्य में शिवत्व के साथ-साथ सत्यम् और सुन्दरम् की तलाश करके साहित्य को दर्पण नहीं मानने की बात कही। साहित्य को दीपक बताकर समाज की राह प्रशस्त करने वाला बताया।

क्रमशः 'सुरेन्द्र वाजपेयी' ने काशी के शिवत्व और पावनत्व को साहित्य के माध्यम से जीवंत रखने पर जोर दिया और तीर्थ स्थानों पर हो रहे सांस्कृतिक प्रदूषण से बचने की बात कही। उन्होंने मौज मस्ती की चमक आँखों में छाई है। धूप निकले तो लगे गंगा में नहाई है। रचना ने समां बाँध दिया। 'ब्रजेश पांडेय' ने जन्म-जन्म के प्यार को क्षणजीवी प्यार में बदलती तस्वीर को अपनी काव्य रचना से प्रस्तुत किया।

'डॉ. विमला व्यास ने 'क्षितिज के उस पार' नामक कविता के साथ ही "अनहद बाजे" पुस्तक का विमोचन करवाया। अद्वैत दर्शन की झलक और महादेवी जी के साधनात्मक रहस्यवाद को बिंबित होते हुए देखा गया। 'वरिष्ठ साहित्यकार महेन्द्र ठाकुर सर' ने पति-पत्नी के रिश्तों को लेकर हास्य-व्यंग्य से आरंभ किया और ऐतिहासिक तथ्यों में हो रहे संक्रमण पर गहरी चिंता जताई। उन्होंने शब्दों की श्लिष्टता को नवोन्मेषी दृष्टि देते हुए छोटे-छोटे शब्दों के अर्थगौरव को रोचकता प्रदान की।

'डॉ मीनाक्षी वाजपेयी' देशभक्ति की भावना से ओतप्रोत 'कर्मभूमि' कविता का पाठ किया। सैनिक की बेटी हूँ... कविता से सबके भीतर राष्ट्र प्रेम की भावना के साथ उत्साह का संचार कर दिया। कार्यक्रम अपने परवान पर था। एक से बढ़कर एक रचना प्रस्तुत की जा रही थी।

रायपुर के सुप्रसिद्ध लेखक 'के पी सक्सेना' ने गागर में सागर भरने वाले मुक्तक सुनाकर सदन को मंत्रमुग्ध कर दिया। दिल्ली से पधारी 'श्यामा भारद्वाज' ने और 'पूनम ग्रोवर' ने भावसंवेदन में आलौकिक करने वाली रचनाओं के आलोक में सबको बाँधे रखा। रायपुर से पधारी 'वरिष्ठ साहित्यकार शकुन्तला वाजपेयी' ने आशु रचना के साथ ही हास्य-व्यंग्य से भरपूर चुहल के साथ शादी के बाद अपना बना लेती है। शौहर को इंसान बना देती पत्नियाँ। रचना प्रस्तुत करके सभी को लोट-पोट कर दिया। श्रुति गुप्ता, डॉ. रचना शर्मा, डॉ. मुक्ता, डॉ. संगीता श्रीवास्तव के साथ-साथ बैंगलोर से पधारी 'दीपा स्वामीनाथन' ने बनारसी पान के काव्य से बनारस की कला प्रियता और रसप्रियता को रेखांकित करके आशु रचना पाठ किया। मुख्य अतिथि 'स्नेहा देव जी' दुबई ने यात्रा का मूलोद्देश्य सृजन बताया। सत्यम् शिवम् सुंदरम् को काव्य तत्व के रुप में तलाशने की महती आवश्यकता जताते हुए "कैसे कह दूँ कौन हो तुम! मेरे हृदय का मौन हो तुम" पंक्तियों से आरंभ करते हुए बेहतरीन रचना पाठ किया। अपने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में 'पंडित जितेन्द्र नाथ गुप्त' ने सभी साथियों को सतत् लेखन की बात कहते हुए सस्वर रचना पाठ किया जिसकी शुरुआत कुछ यूँ थी 'जिंदगी में रुदन है तो हास भी है। आज पतझड़ है तो कल मधुमास भी है।'

अंत में नवलकिशोर गुप्त ने धन्यवाद ज्ञापित किया। सामूहिक फोटो सेशन हुआ। सभी को प्रमाण पत्र देकर सम्मानित किया गया। इस काव्य गोष्ठी में मैंने अपनी पुस्तक 'दो दूनी पाँच' की प्रथम रचना 'अपनी बात में तू असर पैदा कर' का पाठ किया तो पहली बार महसूस हुआ कि "किस तरह दाद देने पर शायर पैदा हो जाते हैं।" मैं हर एक पंक्ति के साथ समृद्ध हो रहा था। वरिष्ठ सुधिजनों का संग हमारा नवनिर्माण करता है। संगोष्ठी के उपरांत होटल जानकी इंटरनेशनल में भोजन और हुआ फिर से संगीत संध्या का आयोजन। मैंने कबीर साहब का भजन सुनाया 'मन लागो मेरो यार फकीरी में' इस संगीत संध्या का मुख्य आकर्षण रही दीपा स्वामीनाथन। उन्होंने एक से बढ़कर एक प्रस्तुति दी। समूह की स्वरकोकिला कहूँ तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस तरह एक सफल साहित्यिक यात्रा अपने सुंदर पड़ाव पर थी।

दिनांक 14 मार्च 2023 का उषाकालीन वातावरण और फिर वही असी घाट पर गंगा स्नान। गंगा स्नान के बाद स्नेहा जी, पूनम जी, श्यामा जी, दीपा जी और इंदु जी के साथ पुनः बीएचयू के काशी विश्वनाथ मंदिर में धोक। आज फिर

से सकारात्मक ऊर्जा से लबालब होने को मानो साक्षात् शिव ने आमंत्रित किया हो। जलाभिषेक, दुग्धाभिषेक के बाद ओंकार नाद और फिर दीपा जी का भजन प्रस्तुत करना, पुनरावृत्ति के औचित्य को सिद्ध कर रहा था। आज सबको घर वापसी करनी थी। सबके अपने-अपने टिकट आरक्षित थे। किसी की फ्लाइट तो किसी की ट्रेन थीं। एक दूसरे से विदा हो रहे थे। मन कर रहा था कि यात्रा को विस्तार दे दिया जाये मगर गत चार दिनों में एक साहित्यिक परिवार का गठन हो चुका था। समग्रतः बनारस यात्रा ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर के एक वैश्विक साहित्य मैत्री को जन्म दिया है जिसके सुखद फल भविष्य में फलित होने हैं।

मरुधरा की ओर प्रस्थान मरुधर एक्सप्रेस के साथ।

यादों के झरोखे से झाँक रहा हूँ, साइड लोअर पर शरीर को ढीला छोड़कर और स्मृति पटल को आप सब की ओर मोड़ कर। आपके साथ की गई 'मन बनजारा' साहित्यिक यात्रा में सहयात्री होना, मेरे जीवन की अनुपम उपलब्धि रहेगी। लब्धप्रतिष्ठ साधकों की सत्संग ने मुझे न केवल ऊर्जस्वित किया है वरन् आंतरिक समृद्धि के लिए आवश्यक सूत्रों से ओतप्रोत होकर अपनी कर्मभूमि की ओर गद्गद् हृदय के साथ लौट रहा हूँ। संयोजक महोदया के लिए आभार के अलावा अन्य शब्द नहीं है।

सक्सेना सर की ऊर्जा, ठाकुर साहब सक्रियता, माँ कल्पना जी का अनुराग, दीदी का मौन अवलोकन, पूनम जी का बेबाक अंदाज, श्यामा जी की बाल सुलभ चंचलता समन्वित समरस स्वभाव, शकुन्तला जी की जीवटता, विमला जी का गहन चिंतन, दीपा जी का बहुआयामी प्रकाशमान व्यक्तित्व और स्नेहा जी की सहजता, सरलता और निष्कामताजन्य बेशर्त प्यार व समदृष्टि को बारंबार प्रणाम।

आशा है कि आप इस अकिंचन भँवरलाल के निवेदन को भविष्य में स्वीकार करेंगे और मारवाड़ की शुष्क धरा को साहित्य सुरसरी से हरा-भरा करेंगे।

संस्मरण

एक छोटा सा संस्मरण जो देया गया नसीहत

श्याम भारद्वाज 'श्यामा'

अभी 10 मार्च की ही बात है मुझे बनारस जाना था, मेरे साथ दो बहनें और थीं जिनका टिकट मैंने ही कराया था।

समय पर मैं पहुँच गयी स्टेशन और चढ़ते समय मेरे आगे दोनों बहनें जो इन्दिरा पुरम से आई थीं मिल गयीं। हम खुशी से अपनी-अपनी सीटों पर बैठ गये।

शिवगंगा एक्सप्रेस 9बी में सीट नंबर 41, 42, 44 थी।

इतने में ही एक महाशय जी अपनी बुजुर्ग माँ, पत्नी और गोद में छोटा बच्चा लिए आ धमके और हम तीनों को उठाने लगे और टिकट दिखाते हुए बोले कि ये तीनों सीटें हमारी हैं।

हमने समझाने की कोशिश की तो बोले टीटी ही बतायेगा। माँ और पत्नी को हमने अपने साथ बैठने दिया क्योंकि पत्नी की गोद में बच्चा था और माता जी काफी बुजुर्ग थीं। अभी ट्रेन चलने में 10 मिनट शेष थे।

इतने में किसी ने कहा कि एक बार सब अपनी ट्रेन का नंबर चैक कर लें, बस मेरी दूसरी साथी ने प्रिंट निकाला तो उन महाशय ने हाथ में से ले लिया और नंबर पढ़ते ही अपनी पत्नी, माँ से बोले जल्दी उतरो हम गलत ट्रेन में चढ़ गये हैं। इतना सुनते ही हम सब हरकत में आ गये जल्दी-जल्दी उनका सामान सीटों के नीचे से निकाला, सबने इधर उधर हट कर उन्हें रास्ता दिया और नीचे उतारने में सहायता की।

हम सबकी हृदय गति बढ़ी हुई थी और मन में एक ही दुआ कि जल्दी से वो अपनी ट्रेन में चढ़ जायें क्योंकि उसका समय भी हमारे समय से मेल खाता था।

ख़ैर भगवान का लाख-लाख शुक्रिया कि सामने वाले प्लेटफार्म पर ही थी वो ट्रेन और बी 9 बोगी बिल्कुल हमारे सामने ही थी, सो उन्हें चढ़ते देख कर मन में तसल्ली हो गयी। उस गाड़ी का नाम था दूरन्तो एक्स्प्रेस और प्लेट फार्म नं 13, हमारी गाड़ी प्लेट फार्म नं 12 पर थी। दोनों आमने सामने और फिर उस गाड़ी को हमने अपने सामने ही स्टेशन छोड़ते देखा।

हमारी गाड़ी भी चल चुकी थी और एक बार हम सब यही सोच कर हृदय की गति को बढ़ा रहे थे कि यदि हमारे साथ ऐसा होता तो क्या होता...!

इसलिए सावधान! यात्रा से पहले पूरी तरह टिकट पढ़ें और घर में भी किसी अन्य से पढ़वायें और रट लें सब कुछ सही-सही।

संस्मरण-2

अनुभव एक सच्चाई ये भी बनारस की।

आज के संस्मरण में आपको एक अजीबोगरीब बात बताने वाली हूँ जिसे पढ़ कर अवश्य ही मन में कहीं न कहीं हलचल या आश्चर्य होगा।

जैसे जैसे बनारस जाने की तिथि पास आती गयी, आरक्षण की चिंता होने लगी, चूंकि मैं अकेली ही थी दिल्ली से। फिर कुछ सदस्यों के नाम याद आये तो सम्पर्क किया और तसल्ली हो गयी कि सब स्टेशन पर मिल जायेंगी। ख़ैर 8 अक्टूबर का दिन भी आ गया।

छः बजे ठीक निकलने के वक्त बारिश ने जोर पकड़ लिया किन्तु स्टेशन दूर था और जाम से बचने के लिए जल्दी ही निकली। बेटा गाड़ी चला रहा था। समय पर पहुँचने ही वाले थे कि तेज बारिश और फिर बिल्कुल स्टेशन के नजदीक वाली लालबत्ती पर इधर-उधर से गाड़ियों का आना, बस दिल घबराने लगा कि कैसे ट्रेन तक जायेंगे।

बारिश में जैसे-तैसे 10 मिनट पहले पार्किंग में गाड़ी लगाई, और भीगते-भीगते स्टेशन तक भागे। सात नंबर बोगी के पास जाकर दम लिया, बेटे ने फटाफट बैग मुझे पकड़ाया और मैं फिर स्वयं ही अपनी सीट तक गयी।

गाड़ी ने सही समय प्रस्थान किया और दूसरे दिन सही समय 6 बजे बनारस स्टेशन पर पहुँचा दिया।

इस बीच लखनऊ से चलने वाली ट्रेन 5 घंटे देरी से चली जिसमें दीदी थीं। सो ट्रेन सुबह 4 की बजाय 10 बजे बनारस पहुँची यानि मैं जब आयोजन स्थल पर जा रही थी तो उनको स्टेशन से लिया और उसी गाड़ी में वो गेस्ट हाउस चली गयीं। उनका आयोजन रह ही गया। आयोजन के उपरांत अस्सी घाट हम लोग सीधे ही पहुँचे। भीड़ और शारीरिक थकान के कारण वह काव्य सम्मेलन में नहीं उपस्थित हुई जिसका अफसोस रहा।

दूसरे दिन जब दशाश्वमेध घाट पर गयी तो स्नान आदि करके जब काशी विश्वनाथ के दर्शन किये तब वहीं से ललिता घाट की ओर सारा परिसर घूमा। वहीं से एक गैलरी में धुआँ उठता देख किसी से पूछने पर पता चला कि नीचे मणिकर्णिका घाट है सो मैं और दीदी उस गैलरी की बड़ी बड़ी खिड़कियों से नीचे देखने लगे। तभी दीदी की नजर नीचे एक व्यक्ति पर पड़ी जो अर्थी पर से उतरी मालाओं को गंगा में डुबो कर निकाल रहा था।

मैंने विस्मित् सा दीदी की ओर देखा और दीदी ने मेरी ओर क्यों कि दीदी ने वैसी ही गेंदे की माला गले में पहनी हुई थी जो वहीं प्रसाद स्वरूप मिली थी। मैंने जैसे ही माला को छूकर देखा तो दीदी ने पूछा कि क्या माला गीली है तो मैं निरुत्तर हो गयी...!

बनारस संस्मरण और कविताएँ

स्नेहा देव

मनबंजारा, साहित्यिक भ्रमण, चलो बनारस...

हर दिन भागती दौड़ती ज़िन्दगी में अक्सर लगता है कि ठीक से देखने, महसूस करने और अपने ही जीवन को जीने का अवसर नहीं मिल पा रहा है।

कभी ध्यान दें पाएँ तो हमारे आस-पास अथाह सुंदरता का आभास होना निश्चित है।

अपनी ही बनाई हुई व्यवस्थाओं के मकड़जाल में फंसे हम मनुष्य अक्सर स्वयं और हमारे आसपास की अन्य चीज़ों पर ध्यान ही नहीं दे पाते हैं। इस कठपुतली नाच से निकल कुछ यथार्थ में, गहनता से जीवन को अनुभव करने की लालसा से जन्म हुआ मनबंजारा साहित्य समूह का।

किसी भी चीज़ को जब गहनता से अनुभव किया जाता है तो ये व्यक्तिगत रूप से हमें समृद्ध करता है, हमारी समझ को व्यापक और हृदय को अनुभूति प्रदान करता है। यही सच्ची अनुभूति हमें श्रेष्ठ सच्चे सृजन में सहायक सिद्ध होती है। भ्रमण कोई नई बात नहीं थी, पर एक अच्छी नियत और सार्थक उद्देश्य से "साहित्यिक भ्रमण" की स्थापना बहुत महत्वपूर्ण हो गयी।

देश-विदेश और सभी प्रान्तों से साहित्यकार जुड़ कर

मनबंजारा समूह के साथ निकल पड़े हैं इस अनूठे भ्रमण के लिए। नव अनुभूति, नव सृजन के लिए।

इसका पहला पड़ाव और शुभारम्भ हुआ है शिव नगरी बनारस से, जिसे अब वाराणसी कहा जाता है।

सही समय आने पर एक स्वप्न ने आकार लिया। दुबई में रहते हुए अपने देश से कुछ अधिक प्रेम होना स्वाभाविक है। साहित्यिक भ्रमण के बनने में कुछ समदृष्टि, कुछ समान विचारों वाले लोगों के साथ जुड़कर एक राह होकर, एक ही लक्ष्य को साध यह सुहाना सफ़र तय हुआ। आमंत्रण प्रचार के बाद काफ़ी लोग इस ग्रुप से जुड़े हैं। ११ मार्च से १४ मार्च, 2023 में होने वाली इस यात्रा वृतांत को शब्दों में सहेजना आसान तो नहीं पर मेरा प्रयास रहेगा कि अपने इस संस्मरण में यथासंभव समेट लिया जाए।

साहित्यिक भ्रमण की इस परिकल्पना और संयोजन में मेरे साथ रही मेरी अभिन्न मित्र दीपा स्वामिनाथान और मेधा झा। दोनों ही मेधावी रचनाकार और कलाकार हैं। किसी बात को उच्चता के स्तर तक सोचना और फिर उसके कार्यान्वित करने तक इस बार सबसे ज़्यादा सहयोग रहा दीपा स्वामिनाथान जी का।

लगभग तीन महीने इसकी तैयारी में व्यतीत हुए।

यात्रा आरम्भ (अग्रिम दिन)

पहली बार की उत्सुकता और रोमांच के वशीभूत, संयोजक और संस्थापक के रूप में मैं बाक़ी ग्रुप से एक दिन पहले ही बनारस पहुँच गयी थी। लोकल आवागमन के विकल्प चेक किए, उन्हें बुक करके निर्धारित समय सीमा पर यह कार्यक्रम शुरू हुआ। उस अग्रिम दिन दीपा जी बैंगलोर और नागौर से प्राचार्य भँवर लाल जाट भी आ पहुँचे। रात्रि भोजन के बाद होटल के आसपास थोड़ा टहलते हुए, हम तीन लोग पहुँचे नुक्कड़ के पास स्थित बनारसी पान वाले की दुकान पर। बस आरम्भ हो गया हमारे भ्रमण के पहले स्वादिष्ट खुशबूदार, ज़ायकेदार सफ़र का। पान तैयार होने की पूरी प्रक्रिया देखने के बाद मुँह में भर लिया ज़ायके से लबरेज़ बनारसी पान। अहा! क्या स्वादिष्ट अनुभूति।

अगले दिन तक बारह लोगों का समूह भी हमसे आ मिला।

प्रथम दिन

पहले ही दिन भोर के बेला में अस्सीघाट जा पहुँचे। सूर्योदय की अनूठी छाया, जल में उसका प्रतिबिंब सब जादुई। दीपा जी ने अपना रंगों का बस्ता खोल चित्रकारी शुरू कर दी। अस्सीघाट के प्रांगण में बजता शास्त्रीय संगीत पर मीठा भजन, जैसे कानों और आँखों दोनों की तृप्ति उस घाट पर निहित थी।

अस्सीघाट पर जगह जगह वितरित हो रही, नींबू वाली स्वादिष्ट चाय का आनंद भी नया था।

दोपहर के भोजन के लिए बनारस की गलियों में घूमते कचौड़ी-आलू की सब्ज़ी और रबड़ी के स्वाद से स्वयं को आनंदित किया। संध्या समय नौका विहार द्वारा बनारस के घाटों के दर्शन किए। नाव से संध्या आरती का अद्भुत नज़ारा आज भी मस्तिष्क में अंकित है। गंगा की विराटता का वर्णन करती आरती, लयबद्ध घण्टियों की आवाज़, दीपों की प्रज्ज्वलित अग्नि का नृत्य जैसे किसी अन्य लोक में आ बैठे हो। रात का भोजन होटल में ही था। सबसे मेल-मिलाप, और साक्षात परिचय, हँसते, खिलखिलाते नए चेहरों से मिलना और क्षणभर में मित्र बन जाना एक अनुपम अनुभूति। फेसबुक, व्हाट्सएप समूहों से जुड़े हुए साहित्यकारों से मानवीय रूबरू मिलन हुआ।

दूसरा दिन

अगले दिन सुबह होटल से नाश्ते के बाद सब एक मिनी बस में निकल पड़े सारनाथ की ओर।

पिकनिक की तरह गाते, हँसते और रास्ते भर दुकानों, ठेलों, राहगीरों, वाहनों, इमारतों, और पुराने घरों को निहारते हम गौतम बुद्ध के मंदिर में पहुँचे। पहुँचते ही प्रभु कृपा से गाइड अवतरित हुए जिन्होंने हमें पूरे स्थान का इतिहास और महत्वपूर्ण जानकारी देकर प्रत्येक मूर्ति और हमारी यात्रा को सफ़ल किया। बीच-बीच में वह हमारे सहर्ष फोटोग्राफर भी बनें।। वहीं स्थित बनारसी कपड़ों के शोरुम भी ले गए। जहाँ हमने बुनकर और रंग बिरंगे धागों से बुनाई की प्रक्रिया को देखा। सभी ने कुछ अपना मनपसंद खरीद लिया। अब बस ने प्रस्थान किया "लमही" गाँव की ओर। आख़िर लेखकगण साहित्य के पितामह प्रेमचंद से मिले बिना कैसे

लौट सकते थे? उनके निवास स्थल पर लाइब्रेरी में उनकी हस्तलिपि और लिखी किताबों को देखा। कुछ पुस्तकें खरीदी। उनकी मूर्ति के साथ फ़ोटो खींच कर हमेशा के लिए उनकी याद को कैमरे में कैद किया। उनके घर की परिक्रमा कर प्रेमचंद जी की निराकार उपस्थिति को आत्मसात किया।

दोपहर भोजन के लिए सबने पॉपुलर बाटी चोखा ग्रहण किया। शाम को सब मिलकर काशी विश्वनाथ मंदिर गए। रविवार का दिन, मंदिर में अतिरिक्त भीड़ की संभावना थी। अपनी सब शंकाएँ शिवजी पर छोड़ हम हर्ष के साथ मंदिर की ओर गए। ई-रिक्शा द्वारा सब काशी विश्वनाथ मंदिर के पास तक पहुँचे। रास्ते में दुकानों को निहारते पैदल द्वार तक पहुँचे। लॉकर में फ़ोन और पर्स रख हम लाइन में लग गए। मंदिर की भव्यता से मोहित हम सब भोले बाबा के दर्शन कर वापिस बाज़ार से निकले।

मौसम अच्छा था तो भीड़ भी जीवन उत्सव मनाती लगी। अगला स्टॉप हुआ रास्ते में ही पड़ने वाले काशी चाट भंडार। भीड़ देखकर लगा पूरा बनारस वही आता है। अब इसे चखे बिना जाना कठिन था।

इसलिए थोड़ा मनुहार और विशेष भ्रमणियों के लिए बीस मिनट की प्रतीक्षा के बाद जगह मिली। सबने अपने मनपसंद का ऑर्डर कर खाया। टोली पहुँची होटल। रात नौ से फिर शुरू हुई हमारी संगीत सभा। सबने सुर बेसुर की परवाह करे बिना मस्ती मिलन के साथ भागीदारी की और हँसते गाते कब रात का एक बजा, आभास ही नहीं हुआ।

तीसरा दिन

यात्रा का अंतिम चरण था, और क्यूँकि पूरी सब्ज़ी का स्वाद हमें निमंत्रण दे रहा था, तो मैं और दीपा सुबह सुबह मॉर्निंग वॉक पर निकल गए। फलों की रेड़िओं पर ताज़ी चमकदार 'सभरी' ख़रीदी, उसके बाद हलवाई के यहाँ से पूरी सब्ज़ी जलेबी खा हम वापिस होटल आ गए। अकेले चटोरपना कर आए थे तो किसी को बताया भी नहीं आकर। नहीं तो डांट भी पड़ सकती थी। होटल आ कर तैयार हो चुपचाप फिर से समूह में सम्मिलित हो गए। हम सभी यात्री एक बार फिर से निकल पड़े नगर भ्रमण पर। इस बार भंवर लाल जी हमारे मार्गदर्शक बनें। लक्ष्य था बनारस यूनिवर्सिटी और दूसरा विराट काशी विश्वनाथ मंदिर। विशाल यूनिवर्सिटी को निहारते हम मंदिर पहुँचे। यहाँ भीड़ नहीं थी, इसलिए निर्विघ्न हो निश्चित हो भोले बाबा को मन, तन, ध्यान और जल अर्पण कर पाएँ। शांति से मंदिर के चिकने मार्बल के फर्श पर बैठ एकाग्र हो उस जगह की ऊर्जा को आत्मसात किया। भजन गुनगुनाए। वहाँ से निकल हम पहुँचे पहलवान हलवाई के यहाँ। दही रबड़ी मलाई वाली लस्सी। आ हा! शब्दों में स्वाद कैसे बयां करें अब। ख़ैर खा पीकर हम थोड़ा समय से वापिस होटल पहुँच गए। आज शाम हम सभी आमंत्रित थे वहाँ की नागरी प्रचारिणी सभागार में। चार बजे तक तैयार होकर पहुँचना था।

थोड़े विश्राम और चाय के बाद झटपट सब तैयार हो, पहुँच गए सभा स्थल पर। काव्यसंध्या और साहित्य विमर्श का उत्तम अवसर। गोष्ठी का विषय बौद्धायन सोसाइटी संस्था द्वारा साहित्यिक भ्रमण पर आए साहित्यकारों का सम्मान व काव्य गोष्ठी। साथी साहित्यकारों द्वारा लिखित दो पुस्तकों का लोकार्पण।

बौद्धायन सोसाइटी संस्था की ओर से, दिनांक तेरह मार्च, 2023 को देश विदेश से साहित्यिक भ्रमण पर आए साहित्यकारों का सम्मान व काव्यगोष्ठी का आयोजन नागरी प्रचारिणी सभा, मैदागिन, वाराणसी में किया गया। इस अवसर पर अध्यक्ष अपने शहर के पं.जितेन्द्र नाथ मिश्र, मुख्य अतिथि दुबई से पधारी व अतिथि दल का नेतृत्व कर रही लेखिका स्नेहा देव रही। प्रारंभ में माँ सरस्वती के चित्र पर माल्यार्पण करके अतिथियों को माल्यार्पित किया गया। सरस्वती वंदना बैंगलोर से पधारी दीपा स्वामिनाथन ने किया। कार्यक्रम का संयोजन, संचालन संस्था की संस्थापक सचिव डॉ. मंजरी पाण्डेय ने किया। विशिष्ट अतिथि डॉ. मुक्ता व प्रो. श्रद्धानंद जी का विशेष वक्तव्य रहा।

इस अवसर पर काव्यपाठ में हमारे साथी प्रयागराज से डॉ. विमला व्यास, नयी दिल्ली से श्यामा भारद्वाज, पूनम ग्रोवर, नागौर, राजस्थान से भंवर लाल जाट, रायपुर से के पी सक्सेना, डॉ. मीनाक्षी वाजपेयी और डॉ. महेंद्र के ठाकुर,

बैंगलोर से दीपा स्वामिनाथन, छत्तीसगढ़ से शकुन्तला तिवारी, ऋषिकेश से इन्दु सिंघल तथा काशी से सुरेन्द्र वाजपेयी, डॉ. रचना शर्मा, ब्रजेश पाण्डेय, डॉ. संगीता श्रीवास्तव, नवल किशोर गुप्त, श्रुति गुप्ता डॉ. मुक्ता तथा डॉ. मंजरी पाण्डेय शामिल रहीं।

इस अवसर पर अतिथि दल की दो सदस्याओं की पुस्तकों का काशी में लोकार्पण हुआ। अध्यक्षीय उद्‌बोधन अद्‌भुत काव्यमय रहा। धन्यवाद ज्ञापन संस्था के मीडिया प्रभारी नवल किशोर गुप्त ने किया। जलपान संग गोष्ठी का समापन हुआ।

इस साहित्यिक गोष्ठी ने इस भ्रमण को अनूठी संपन्नता से भर दिया।

वापिस होटल आए, रात्रि के भोजन के बाद एक बार फिर सब लोग इक्कट्ठे हुए। देर रात तक संगीत, अंताक्षरी और चुटीली बातें करते हुए मित्रता का आनंदभरा वातावरण रहा। अगली सुबह यात्रा का अंतिम चरण था और तय हुआ कि होटल के चेक आउट तक सब अपने हिसाब से समय का उपयोग करेंगे।

चौथा दिन

आज यात्रा का अंतिम दिन था। आज कोई विशेष एजेंडा नहीं था। सब स्वतंत्र थे। हम में से कुछ गंगाघाट के निर्मल सूर्योदय की छवि को हृदय में समाहित करने की तीव्र लालसा और गंगा स्नान की अभिलाषा में सुबह जल्दी उठ कर फिर से जा पहुँचे गंगा के अस्सीघाट पर। भीड़ से दूर एकांत में स्नान हेतु नौका लेकर गंगा को पार करते हुए, दीपा जी द्वारा मधुर गंगा स्तुति सुन भावों की अद्‌भुत अनुभूति लिए दूसरे किनारे पहुँचे। हम सभी महिलाएँ नदी के जल को एक दूसरे पर उलीचती खिलखिलाती खेलती जैसे छोटी बच्चियाँ बन गयीं थी, स्नान करके नाव पर ही कपड़े बदले। वीडियो, फ़ोटो खींचते और एक दूसरे से हँसते बोलते वापिस होटल आए।

जो जो सोचा था सब कर लिया थाए परन्तु बनारसी साड़ी का लालच था जो मन से गया नहीं था। दीपा जी भैरों मंदिर चली गयी, और मैं दो अन्य सदस्यों के साथ ख़रीददारी करने। शॉपिंग के बाद होटल वापिस आए, फ़टाफ़ट पैकिंग किया। सब लोग अपनी रेल, टैक्सी और हवाई जहाज़ के समय अनुसार एक एक कर इस यादगार यात्रा को और नए बने मित्रों से फिर मिलने का वादा कर विदा हुए।

संयोजक के नाते कुछ अतिरिक्त जिम्मेदारियाँ अवश्य रहीं, पर मैंने इस यात्रा को अपनी कल्पना से कही बेहतर पाया। इस यात्रा ने मुझे नए मित्र, नए अनुभव, नई दृष्टि के साथ ही फिर से भर दिया है मुझमें एक नया आत्मविश्वास। इस यात्रा का श्रेय पूर्ण रूप से शिव कृपा को देना चाहूँगी, जिन्होंने मेरे मौन में प्रवेश कर मुझे इस अनुभव के लिए प्रेरित किया।

स्नेहा देव

कविता

"गंगा"

काल चक्र में प्रवाहित हर क्षण,
तोड़ बाँध सबए बहती अविरल,
जीवन तुममें बहता प्रतिपल,
चंचल धारा, छल छल, कल कल,
ठहरो क्यों!, तुम ये समझाती,
अग्र अग्रसर चलती जाती,
समय की टिक टिक संग निरंतर
निर्मल, शीतल, धार तुम प्रबल,
कितने ही तुम रूप में दिखाती,
गिरिधर से सागर तक आती,
मिली जो जल में शून्य बनी हो,
सागर से उठ, शीश चढ़ी हो,
समय की वीणा, मधुर मृदंगा
कालचक्र सी बहती गंगा...
कालचक्र सी बहती गंगा...

अंततः

हिंदी साहित्य में जुड़ने जा रहा है नया अध्याय

प्रेम जनमेजय

अंततः अगस्त का महीना आ गया जिसका मुझे इंतजार था। अगस्त के महीने का इंतजार पूरा देश करता है, पर इस बार मेरे इंतजार में व्यक्तिगत कारण है। 2023 का अगस्त मेरे लिए और मेरी सोच के अनेक रचना/र्मियों के लिए विशेष होने जा रहा है। 2023 का अगस्त हिंदी साहित्य के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ने जा रहा है। यह अध्याय हरिशंकर परसाई और रामदरश मिश्र जी को लेकर लिखा जाने वाला है। परसाई जन्म शताब्दी वर्ष का आरम्भ होने जा रहा है।

15 अगस्त को रामदरश मिश्र जी का 100 वां जन्मदिन मनाया जाएगा। रामदरश मिश्र जी का जन्म देश की स्वतंत्रता से पूर्व हुआ है पर उनका जन्मदिन भारत की स्वतंत्रता का जन्मदिन है। यह दिन रामदरश मिश्र जी के यहाँ साहित्यिक उत्सव का दिन भी होता है। पिछले अनेक वर्षों से, एकाध वर्ष को छोड़कर, उनके निवास पर, मुझ जैसे उनके अनेक शुभचिंतक एकत्रित होते हैं। यह मिलन उन्हीं की तरह सादगी और आत्मीयता से भरा रहता है। इस विशेष दिन के लिए कोई विशेष निंमत्रण नहीं होता, जाकि रही भावना जैसा कुछ होता है। लगभग हर वर्ष रामदरश मिश्र जी की कोई कृति आती है और उसका लोकार्पण भी होता है। वैसे तो लोकार्पण किसी वरिष्ठ-गरिष्ठ साहित्यकार द्वारा कराने का साहित्यिक प्रोटोकाल है, पर मिश्र जी के यहाँ की सादगी में हर तरह के प्रोटोकाल का प्रवेश निषिद्ध है। यही कारण है कि लोकार्पण स्वनामधन्य नहीं करता है अपितु उनका कनिष्ठ या कनिष्ठतम सहयात्री करता है। मुझे उनकी ऐसी कृति का लोकापर्ण करने का गर्व प्राप्त है जिसे साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। अगस्त 2012 में उन्होंने मुझसे 'आग की हंसी' को लोकार्पण करवाया था। अपना अठ्ठासीवाँ जन्मदिन मनाने वाले वरिष्ठ साहित्यकार ने तरेसठ वर्ष के अपने शिष्य से, पुस्तक लोकार्पित करने को कहा था। मिश्र जी और मेरा लोकार्पणीय चित्र अगले दिन 'दैनिक हिंदुस्तान' में समाचार के साथ प्रकाशित भी हुआ था। इसी कृति पर उन्हें 2014 का साहित्य अकादमी सम्मान मिला था।

'आग की हंसी' जब साहित्य अकादमी पुरस्कार से पुरस्कृत हुई तो मुझे इसलिए भी अच्छा लगा कि मिश्र जी के लेखन के माध्यम से व्यंग्य चेतना संपन्न कविता भी रेखांकित हो रही है। मिश्र जी में व्यंग्य की प्रखर चेतना है। यदि कोई रामदरश जी की व्यंग्य चेतना से साक्षात्कार करना चहता है तो उसे 'आग की हँसी' अवश्य पढ़नी चाहिए। मैं कहूंगा कि व्यंग्य की आग में जिस हँसी की हम बात करते हैं वह ऐसी ही हँसी होती है। व्यंग्य को हास्य का पर्याय मान नाक भौं मत सिकोड़ें, इस संग्रह की महत्वपूर्ण कविता 'विश्वग्राम' से एक अंश साझा कर रहा हूँ—

"हमारे देश में भी
आर्थिक विकास का रथ शान से आगे बढता
जा रहा है
मदभरा कोलाहल करता हुआ
उस पर सवार है
राजनीति, धर्म, व्यवसाय, मीडिया, प्रशासन आदि
के चमकीले चेहरे,
नीचे गिरे हुए तमाम लोग
उसे अचरच से देचर रहे हैं एक टक
और आपस में पूछ रहे हैं
यह किसका रथ है और कहाँ जा रहा है।"

एक और बानगी साझा करने का मन है, देखें:

"डाक्टर हड़ताल पर हैं
और पुलिस ड्यूटी पर
देखिये, इस अस्पताल का क्या होता है!"

कभी मैंने 'अपने' रामदरश मिश्र पर लिखा था,

"वे गंवई गुलाब हैं पर वैसे नहीं जिसके बारे में बिहारी ने चिंता व्यक्त की थी कि जिसका कोई आदर नहीं और जिसकी नियति फूल्यो अनपफूल्यो भली वाली है। वे निराला के शहरी गुलाब भी नहीं हैं जो खाद का खून चूसने वाला अशिष्ट है डाल पर इतराते कैपटिलिस्ट ने कितनो को गुलाम बना लिया है। वे भावनी प्रसाद मिश्र का भी गुलाब नहीं हैं जो राजनीतिक गुलाब है और केवल शांतिवन में खिलता है। रामदरश मिश्र का विविध मुखी साहित्य गुलाब की एक-एक पंखुड़ी है जो अकेले और समूह में एक जैसी गंध देती है। ये वह गुलाब है जिसके बारे में शेक्सपियर ने कभी रोमियो जूलियट में कहा था कि गुलाब को किसी नाम से पुकारें वे वैसा ही मधुर और सुंगधित होगा जैसा वह है। रामदरश मिश्र नामक इस गंवई गुलाब में उनके जैसे सहज लोगों के लिए मधुरता है तो मानवीय मूल्यों के विरोधियों के लिए कांटे भी हैं।

चाल ढाल भी मामूली है
रहन सहन भी है देहाती
नहीं घूमता महफिल महफिल
ताने नजर फुलाए छाती
लोगों में ही गुम होकर
लोगों सा ही हँसता जाता है
कोई नहीं राह में कहता—
वह देखो लेखक जाता है।

मेरी इच्छा है कि रामदरश मिश्र जी जैसा हर 'आलेखक' शतायु हो और हिंदी साहित्य को बरसों बरस समृद्ध करता रहे।

परसाई कबीर की राह के रचनाकार हैं। हरिशंकर परसाई प्रगतिशील चेतना के नैसर्गिक रचनाकार हैं। वे किसी के प्रभाव या लालच में 'प्रगतिशील विचाररारा संपन्न' नहीं हुए। प्रारंभ से ही उनका लेखन प्रगतिशील सोच, चिंतन और चेतना से युक्त रहा है। किसी व्यक्ति के अनुकरण और प्रभाव में न तो वे प्रगतिशील विचारधारा से 'संपन्न' हुए और न ही उन्होंने किसी के अनुकरण और प्रभाव में 'तय' करके व्यंग्य लेखन किया। यह उनके सहज स्वाभाविक नैसर्गिक चिंतनशील व्यक्तित्व एवं उनके जीवन में घटित संघर्षशील दुर्घटनाओं का प्रतिपफल है। परसाई से मैंने सार्थक व्यंग्य के संस्कार ग्रहण किए हैं। व्यंग्य को समझने की दृष्टि प्राप्त की है। परसाई के लिखे के कारण, जिस हिंदी व्यंग्य पर बात करने से 'गंभीर आलोचक' किनारा करते थे, उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे, अब परसाई के बहाने से उसके स्वरूप पर चर्चा करने की कृपा कर रहे हैं। हरिशंकर परसाई भारतीय साहित्य का एक ऐसा ऐतिहासिक चेहरा है जिसने मानव समाज की बेहतरी के लिए न केवल विसंगतिपूर्ण चुनौतियों का निरंतर सामना किया, उनके विरुद्ध साहित्यिक हथियार उठाए अपितु उनके विरुद्ध दिशापूर्ण संघर्ष के संस्कार भी दिए। परसाई का जीवन निरंतर चुनौतीपूर्ण रहा। और जिसने साहित्यिक स्तर पर चुनौतियों के विरुद्ध संघर्ष किया हो, साहित्यिक चुनौतियाँ प्रस्तुत की हो तथा व्यक्तिगत जीवन में अनेक चुनौतियों का समाना किया हो उसका मूल्यांकन करना भी एक चुनौतिपूर्ण कार्य होता है।

मैंने परसाई को एक संघर्षशील रचनाकार से एक धार्मिक पुस्तक बनते देखा है। जैसे किसी धर्म की और विशेषतः अल्पसंख्यक धर्म की धार्मिक पुस्तक का विरोध उपद्रव का कारण बनता है वैसा ही कुछ परसाई का विरोध बन सकता है। परसाई का विरोध उनके विरोधियों के भी शायद गले न उतरे। परसाई निश्चित ही हिंदी व्यंग्य की एक धार्मिक पुस्तक हैं। परसाई का देखने का एक दृष्टिकोण श्रद्धा से लबालब भरा हुआ है। श्रद्धेय बनाने वालो के भय से आक्रांत परसाई ने कभी लिखा था। मेरे श्रद्धालु मुझे पक्का श्रद्धेय बनाने पर तुले हैं। पक्के सिद्ध श्रद्धेय मैंने देखे हैं। सिद्ध/मक/ध्वज होते हैं। श्रद्धेय बनने का मतलब है 'नान परसन' 'अव्यक्ति' हो जाना। श्रद्धेय वह होता है जो चीजों को हो जाने दे। किसी चीज का विरोध न करें जबकि व्यक्ति की, चरित्र की पहचान यह है कि वह किन चीजों का विरोध करता है। मुझे लगता है, लोग मुझसे कह

रहे हैं तुम अब कोने में बैठो। तुम दयनीय हो। तुम्हारे लिए सबकुछ हो जाया करेगा। तुम कारण नहीं बनोगे। मक्खी भी हम उड़ायेंगे। अपने श्रद्धालुओ से मैं कहना चाहता हूँ "यह चरण छूने का मौसम नहीं है, लात मारने का मौसम है। मारो एक लात हो और क्रांतिकारी हो जाओ।" आज परसाई की महिमा ढोई जा रही है, परसाई नाम की माला अधिक जपी जा रही है, उसका चंदन घिसा जा रहा है, अपने माथे लागया जा रहा।

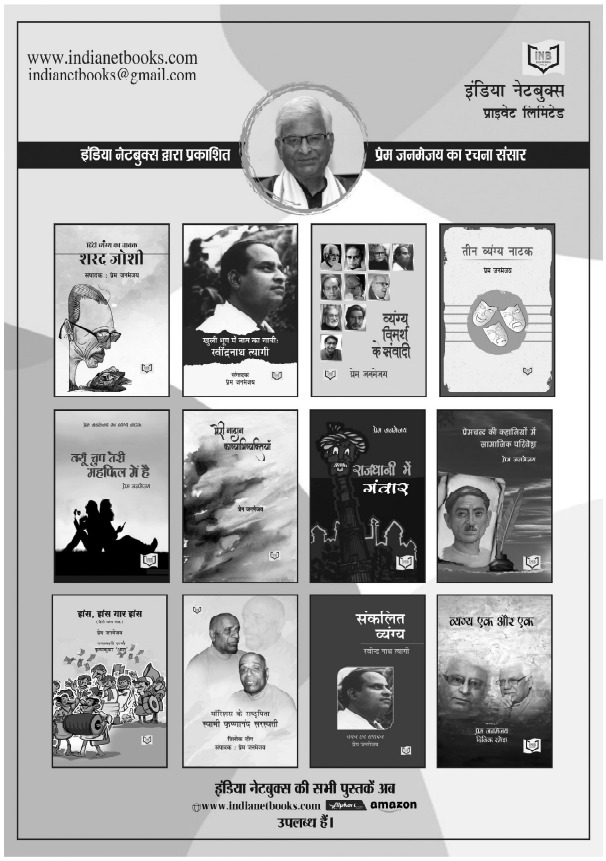

मैं कभी सोचता हूँ। 1922 में जन्मे परसाई यदि आज सशरीर होते तो कैसे दिखते! टूटी हुई टांग, झुर्रीदार चेहरा और विसंगतियों को भेदने को आतुर बूढ़ी आंखें। चेहरा कितना भी झुर्रीदार होता, दृष्टि कितनी भी मद्धम होती पर प्रखर मस्तिष्क के साथ विकलांग श्रद्धा के दौर को बेधाती वैचारिक दूरदृष्टि हमारे आज के यथार्थ को नए अर्थ में व्याख्याति कर रही होती। आज के समय की अनेक राजनैतिक, धर्मिक, आर्थिक, सामाजिक विसंगतियों पर दिशायुक्त वैचारिक आक्रमण कर रही होती।

गिरीश पंकज परसाई परंपरा के व्यंग्यकार हैं। वे केवल व्यंग्यकार नही हैं। पत्रकारिता से लेकर कहानी, संस्मरण, गजल, बाल साहित्य, आलोचना आदि विधाओं में उनकी सजग सक्रियता देखी जा सकती है। पर इन विधाओं में उनकी सोच और दृष्टि वही है जो व्यंग्य लेखन में है। गिरीश की अत्यधिक रचनात्मक सक्रियता सार्थक लेखन की है न कि 'एंवे ही, कुछ भी' टाईप लेखन की। मैंने उनसे जब-जब लिखने का आग्रह किया उन्होंने तत्काल इसे आदेश मान सहयोग दिया। बदले में कभी कोई मांग नहीं की। जमाना तो यह है कि राई भर कोई काम कहे तो पहले उसे पहाड़ के भुगतान का वायदा ले लो। कुछ अग्रिम मिल जाए तो मत चूके चौहान। कहते हैं कि दीपक तले अंधेरा होता, यहाँ दीपक तले एक और दीपक था और उस दीपक ने अपनी ध्यान रखा कि जब भी लौ मंद होने लगे तो उसे अपनी लौ से और रौशन किया जाए। 'व्यंग्य यात्रा' के दीपक को सदा गिरीश पंकज का ऐसा ही साथ मिला है। पर वह दीपक कभी दिखाई नहीं दिया और न ही इस दीपक ने कहा कि मैं तो यह कर रहा हूँ और तुम। व्यंग्य यात्रा के दीपक को निरन्तर अपनी लौ देने वाला दीपक गिरीश पंकज शायद इसलिए नहीं दिखा। यही कारण है कि उसके अंक 4 में 'माफिया' उपन्यास पर त्रिकोणीय रचा गया था, पर उसके बाद खाली-खाली तंबू है। संजीव कुमार की सोच को सलाम कि उन्होंने इस अंक में गिरीश पंकज के लिखे को 'विशिष्ट व्यक्तित्व' के अंतर्गत रेखांकित किया है। उनको इसलिए भी सलाम कि वे व्यंग्य के शुभचिंतक के रूप में व्यंग्यकोष तैयार करने जा रहे हैं। अंततः यह महत्वपूर्ण काम भी हो जाए तो...।

फार्म-5

समाचार पत्र के स्वामित्व एवं अन्य विवरणों सम्बन्धी उद्घोषणा, जिसे प्रत्येक वर्ष के प्रथम अंक में फरवरी के अन्तिम दिवस के बाद प्रकाशित किया जाना है।

1. **प्रकाशन का स्थान** : सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301, गौतमबुद्ध नगर, (दिल्ली एनसीआर)

2. **प्रकाशन का समय काल** : त्रैमासिक

3. **मुद्रक का नाम** : बालाजी ऑफसेट,
   राष्ट्रीयता : भारतीय
   एड्रेस : (न्यू-एम-28), 1/11844, उल्धनपुर, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

4. **प्रकाशक का नाम** : डॉ. संजीव कुमार
   राष्ट्रीयता : भारतीय
   एड्रेस : सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301, गौतमबुद्ध नगर, (दिल्ली एनसीआर)

5. **सम्पादक का नाम** : डॉ. संजीव कुमार
   राष्ट्रीयता : भारतीय
   एड्रेस : सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301, गौतमबुद्ध नगर, (दिल्ली एनसीआर)

6. समाचार पत्र का स्वामित्व रखने वाले व्यक्ति ओर साझेदार या अंशधारक जो कुल पूंजी का 1 प्रतिशत से अधिक धारित करते हों, का नाम और पता (100 प्रतिशत), डॉ. संजीव कुमार

मैं डॉ. संजीव कुमार, एतद्वारा घोषित करता हूँ कि उपरोक्त विवरण मेरे संज्ञान एवं विश्वास में सत्य है।